श्रीश्रीगौरगदाधरौ विजयेताम्

श्रीरासप्रबन्धः

श्रीपाद प्रबोधानन्दसरस्वतीविरचितः

श्रीहरिदासशास्त्री

प्रकाशक :—

श्रीहरिदासशास्त्री

श्रीहरिदास निवास।
पुराणा कालीदह।
पो०—वृन्दावन।
जिला—मथुरा।
(उत्तर प्रदेश)

सर्वस्वत्वं सुरक्षितम्।

प्रकाशनतिथि
श्रीराधाष्टमी
१४।६।१९८३
गौराङ्गाब्द—४९७

द्वितीयसंस्करणम्

प्रकाशनसहायता—

मुद्रक:—

श्रीहरिदास शास्त्री
श्रीगदाधरगौरहरि प्रेस,
श्रीहरिदास निवास, कालीदह,
पो० वृन्दावन, जिला—मथुरा,
(उत्तर प्रदेश) पिन—२८११२१

श्रीश्रीगौरगदाधरौ विजयेताम्

श्रीरासप्रबन्धः

श्रीपाद प्रबोधानन्दसरस्वतीविरचितः

सच

श्रीवृन्दावनधामवास्तव्येन

न्याय-वैशेषिकशास्त्रिन्यायाचार्य्यकाव्यव्याकरण
साङ्ख्यमीमांसावेदान्ततर्कतर्कवैष्णवदर्शनतीर्थ
विद्यारत्नाद्युपाध्यलङ्कृतेन **श्रीहरिदासशास्त्रिणा**
सम्पादितः ।

सद्ग्रन्थ प्रकाशक :—

श्रीगदाधरगौरहरि प्रेस,

श्रीहरिदासनिवास, कालीदह, वृन्दावन,

जिला—मथुरा, उत्तर प्रदेश ।

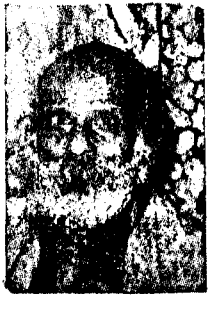

(क)

* श्रीश्रीगौरगदाधरौ विजयेताम् *

*—**—*

विज्ञप्तिः

श्रीरास प्रबन्ध नामक ग्रन्थ—मुद्रित हुआ, यह ग्रन्थ आश्चर्यरास प्रबन्ध, अद्भुतरासप्रबन्ध नाम से प्रसिद्ध है. ग्रन्थ रचयिता श्रीपाद प्रबोधानन्दसरस्वती हैं। श्रीमद् भागवतीयरासलीला के अनुसरण से यह ग्रन्थ लिखित होने पर भी गुम्फन वैचित्री से यह एक अनुपम आस्वादनीय ग्रन्थ में परिणत हुआ है प्रथमत ३, २५, ३४, ४६, ६१, ७०, १२३, १५६, १७०, २०४, २१६, २३२, २४०, २५२,

२६६,२८०, श्लोक विभिन्न छन्दों में रचित होकर यह सूत्र स्थानीय है, एवं २८० श्लोक सम्पूर्ण रास प्रबन्धका निष्कर्ष प्रतिपादक है, सूत्र स्थानीय श्लोक के अवलम्बन से विवृत्ति रूप श्लोक समूह पज्झटिका छन्द से ग्रथित हुआ है। उसका लक्षण—प्रतिपद यमकित षोड़श मात्रा नवमगुरुत्व विभूषित गाथा, पज्झटिका पुनरत्र विवेक:क्वापि न मध्य गुरुगणएक:।

अन्यान्य ग्रन्थ में श्रीसरस्वतीपाद प्रेमोन्मत्त होकर धारावाहिक रचना में असमर्थ थे, किन्तु प्रस्तुत ग्रन्थ में आप की धारा वाहिक रचना सफल हुई है, आप की भाषा में पुष्पित वृन्दावन का दृश्य इस प्रकार है—

कुसुमितपल्लवितद्रुमवल्लिस्फुटितकदम्बककिंशुकमल्लि
स्मेरकुमुदकरवीरविराजि, प्रहसितकेतकचम्पकराजि ॥१०॥
विकसित कूटज कुन्द मन्दार सुफलितपनसपूगसहकारं
हरिचरणप्रिय तुलसी विपिनैः शोभमानमुरुपरिमलमसृणैः॥११॥
विलसज्जातीयूथिकमतुलं विकचस्थलपङ्कजवकमञ्जुलं
सन्ततमन्तानकसन्तानवरहरिचन्दनचन्दनविपिनं ॥१२॥
पारिजातवनपरमामोदं राधाकृष्णजनितबहुमोदम्
कुरुवकमरुवकमाधविकाभि र्दमनकदाड़िममालतिकाभिः ॥१३॥
शेफालिकया नवमालिकया शोभितमपि बहुविधझिण्टिकया
ललितलवङ्गवनैरतिमधुरं नवपुन्नागरुचिरुचिरम् ॥१४॥
स्तवकितनवकाशोकवनालि स्मेरशिरीषपरिस्फुटपाटलि।
बन्धुरमभिनवबन्धुकविपिनैः शोभितमभितस्तिलकाम्लानैः॥१५॥

ग्रन्थ नाम करण में आश्चर्य एवं अद्भुत शब्द प्रयोग से इसमें यथेष्ट वैलक्षण्य एवं अद्भुतत्व है, श्रीपादने प्रथमतः ३-२४ श्रीवृन्दावन की वर्णना भी की है, यह भी वृन्दावन शतक के अनुरूप है, २५-३२ में श्रीकृष्ण के रास विलासी रूप की वर्णना है, ३४, में कदम्ब तरुतल में त्रिभङ्ग भङ्गिमरूप में श्रीराधा नाम से मोहन वंशी वादन

करने पर ३५-४८ विपर्यस्त वेशभूषा से गोपियों का अभिसार, ५० श्यामानुराग से श्रीराधा का भाव की विवृति, ५९ मुरलीनिनाद श्रवण से अभिसारोद्यता राधा के प्रति सखियों का निषेध वचनवर्णित ६०।६१ श्रीराधा का अदर्शन से श्रीकृष्ण की विरह वेदना, ६२-६९ गोपीगण की रस लालसा को देखकर ७०-७१ श्रीकृष्ण द्वारा निज विधुरताज्ञापन, ७२ श्रीराधा से मिलने के लिए गोपीगणके परामर्श से दूतीप्रेरण, ७३-दूती के मुख से श्रीकृष्ण की राधातन्मयता, राधा निष्ठा, एवं गोपीजन लाम्पट्य की वर्णना, ९३-९६ स्वप्न में श्रीकृष्ण का श्रीराधा दर्शन, एवं रसमय वाक्यालाप श्रवण, ९७-९९- राधानाम जपकारी श्रीकृष्ण की राधा प्राप्तिहेतु वेणुध्वनि, १०० १०३ श्रीराधा विहारी श्रीकृष्ण का विलाप, गोपीगण की उपेक्षा, १०४-१०९ श्रीकृष्ण के विलाप से वृन्दावनीय स्थावर जङ्गम के रोदनादि, १११-१२० ललिता द्वारा श्रीराधा के अभिसार में बाधा प्रदान, १२२, १२४, दूती के मुख से श्रीराधा की निरोध वार्ताको सुनकर गोपी वेश से कृष्ण का अभिसार, १२५-१३७ उनके मुख से श्रीराधा की प्रशंसा एवं श्रीहरि का निर्दोषत्वख्यापन, १३८-१४८ श्रीराधा मिलन हेतु श्रीहरि की तीव्रतर उत्कण्ठा का प्रतिपादन १५१-१५५-श्रीकृष्ण के रूप सादृश्य को देखकर उनके प्रति श्रीराधा की परम प्रीति एवं आलिङ्गन दान। १५६-१५९ इस परिरम्भण से परिचय प्राप्तकर श्रीराधा का कुञ्जगृह में प्रवेश एवं अङ्ग सङ्ग दान १६२-१६७ युगलकिशोर के रासोपयोगी पुनर्वेशधारण, १६७-१७२ निखिल कलावित् सखीगण के साथ वृन्दावन में प्रवेश, १७३-१८२ सखी गण की सेवादि, १८३-१९० बहुमूर्त्ति प्रकटन द्वारा निज काय व्यूह रूपा सखीगणके साथ रासोपभोग हेतु श्रीराधा का प्रेरणा प्रदान १९१-२०२ विविध रसास्वादन, २०३--२०४ सखीगण के अभिमान प्रशमन हेतु श्रीराधा के साथ श्रीकृष्ण का अन्तर्धान। २०५-२१२ गोपीगण का सर्वज्ञ कृष्णान्वेषण एवं जिज्ञासा। २१३-२१४ श्रीहरि

पदाङ्क २१५ एवं श्रीराधा पदचिह्न दर्शन से २१६-२२४ उनका विलापानुमान, २२५--२२६ सखीगण के लिए श्रीराधा का खेद प्रकाश, एवं चलनेमें असम्मति, २२७ श्रीकृष्णका पलायन, २२०-२३० श्रीराधा की मूर्च्छा, सखी समागम ।२३२ श्रीकृष्णाविर्भाव २३३-२३६ गोपियों की भावविह्वलता २३७-२६८ व्रजाङ्गनागण के साथ रासोत्सव, २६६-२७६ श्रीराधाकृष्ण का युगपत एवं क्रम नृत्य, गोपियों के गान वाद्य प्रभृति रसमय एवं काममय उत्सव, २७७-२७८ जलकेलि, २७६ वसन भूषणादि का परिधान एवं कुञ्ज में शयन इस प्रकार २८१ प्रबन्ध का निष्कर्ष यह है —

परम रस समुद्रोज्जृम्भणस्यातिकाष्ठा
परमपुरुषलीलारूपशोभातिकाष्ठा
परमविलसदाद्यप्रेमसौभाग्यसीमा
जयति परपुमर्थोत्कर्षसीमा स रासः ।

वह राम परमरम सागर की प्रकाशशील चरमावधिपरम पुरुष लीला, रूप शोभा की चरमावधि, परम विलासमय आद्य शृङ्गार प्रेम एवं सौभाग्यातिशय व्यञ्जक एवं परमपुरुषार्थशिरोमणि की सीमा रूप में जय युक्त हो ।

श्रीराम प्रबन्ध शब्द से भी भगवत् प्रेयसी रूपा लक्ष्मी गण, कवित्व सङ्गीतादि स्वरूपा सरस्वती गण, मेधा सत्प्रतिभादिरूप बुद्धि वृत्ति समूह, धर्म, अर्थ, काम, एवं सम्पद् रूपा विभूतिगण, शोभा स्वरूप, चामर व्यजनादि श्रीकृष्ण सेवाके उपकरण एवं वेशरचनादि बहुल क्रीड़ारसास्वादन ही, रास है, उक्त सामग्री समूह ही श्रीराधा है, एवं श्रीराधा ही मूल भक्ति स्वरूपिणी है । गौतमीय तन्त्र में श्रीराधा का स्वरूप वर्णन में लिखित है—

देवी कृष्णमयी प्रोक्ता राधिका परदेवता
सर्वलक्ष्मीमयी सर्वकान्तिः सम्मोहिनी परा ॥

श्रीकृष्ण जिस प्रकार मूल भगवान हैं, अतएव उनके अंश समूह भी उनमें अन्तर्भुक्त हैं, उस प्रकार श्रीराधा भी उनकी प्रधाना प्रेयसी होने के कारण आप मूल लक्ष्मी हैं, एवं उनमें ही उनकी अंश भूता यावतीय लक्ष्मी गण के सुस्पष्ट समावेश हैं। अतएव आप सर्वलक्ष्मी मयी हैं, पाशाक्रीड़ा एवं वाकोवाक्य में अयेच्छु होने के कारण आप देवी हैं, अतएव आप में सरस्वती शालिनत्व एवं बुद्धि शालिनत्व विद्यमान है, परदेवता शब्द से धर्म, अर्थ, काम सम्पद्युक्तता का बोध होता है, कृष्णमयी—कृष्ण स्वरूपा, अतएव विभूति युक्तता है सर्वकान्ति—शोभा शालिनीत्व है, राधिका आराधिका, अतएव सर्वविध कृष्ण सेवा के उपकरण सम्पन्नात्व है। परा सम्मोहिनी शब्द से वेश रचना शालिनीत्व का बोध होता है। इस प्रकार राधा प्रधान क्रीड़ा ही रास है और यह भक्ति का चरम दृष्टान्त स्थल है। उसका प्रकार ४६ श्लोक में आपने कहा है,

न लोक वेद व्यवहार मात्रं न गेह देह द्रविणात्मजादि।
यत्राविदं स्तां न पथोऽपथो वा स कोऽपि जीयादिह कृष्ण भावः॥

गोपीगण जिसभावसे समाक्रान्त चित्त होकर लोक व्यवहार वेद मर्यादा प्रभृति को भूलगई थीं, जो भाव—गृह, देह, धन, पुत्रादि को भी विस्मृत करा देता है, जिससे गोपीगण सुपथ विपथ कुछ भी जान न सकीं, वह अनिर्वाच्य कृष्णभाव ही इस जगत् में अमरत्व को प्राप्त करे॥

आप की रचितग्रन्थावली में सर्वत्र भाव एवं भाषा की एकता अक्षुण्ण है, परकीया भावका वर्णन आपके ग्रन्थ में सुस्पष्ट है, चैतन्य चन्द्रामृत श्रीराधारससुधानिधि, श्रीवृन्दावनमहिमामृत श्रीसङ्गीत माधव, आश्चर्यरासप्रबन्ध, श्रीश्रुतिस्तुतिव्याख्या, श्रीगोतगोविन्द व्याख्या, कामगायत्रीव्याख्या, गोपाल तापनी व्याख्या ग्रन्थसमूह के रचयिता श्रीप्रबोधानन्दसरस्वतीपाद हैं।

श्रीहरिदासशास्त्री

॥ श्रीश्रीगौरगदाधरौ जयतः ॥

—॥॥—

श्रीरासप्रबन्धः

—॥॥—

जयति जयति राधापाङ्ग सङ्गीभुजङ्गी
कवलित उरुबाधा मूर्च्छितोऽनन्यसाध्यः ।
तदधर सुधयोच्चैर्जीवितः श्यामधामा
तदति विषविषङ्गेणैव कश्चित् किशोरः ॥१
जयति जयति वृन्दारण्यचन्द्रोऽतिचित्रो
न्मदरसमयरामोल्लाससंभ्रान्तमूर्त्तिः ।
प्रमदमदनलीलामोहनश्यामधामा
निरुपमसुखसीमाभीररामाभिरामः ॥२

—॥॥—

राधागदाधरं नत्वा कृष्णचैतन्यसंयुतं
श्रीरासस्यप्रबन्धानां व्याख्याग्रन्थो विधीयते ॥

श्रीराधा की अपाङ्ग सङ्गिनी भ्रूसर्पिणी द्वारा दष्ट एवं अनेक प्रकार पीड़ा से मूर्च्छित, अन्यान्य उपायों से दुश्चिकित्स्य होने पर भी श्रीराधा के अधर सुधा आस्वादनसे महाविष विनष्ट होने पर पुररुज्जीवित श्याम वर्ण के किसी अनिर्वचनीय किशोर की जय हो जय हो ॥१॥ अतिशय विचित्र उन्मद रसमयरास के उल्लास से विभोर मूर्त्ति, उन्मद मदन लीलाके आवेश से मोहन स्वरूप निरुपम सुख की सीमाप्राप्त गोप रमणीयों से वेष्टित परमरमणीय श्रीवृन्दावन चन्द्र श्याम सुन्दर की जय हो जय हो ॥२॥ वृन्दावन नामक एक महा

अस्तिमहाद्भुतवृन्दारण्यं सन्तत वाहि महारसवन्यम् ।
परम मनोहर परम सुपुण्यं रसमय सकलधाममूर्धन्यम् ।।३
सकल गुणानां स्फुरदति भूमि, प्रोज्ज्वल चिन्तामणिमयभूमि
श्रुतिदुर्गम तृणमात्रा विभूति स्फीतमहासुखसिन्धवनुभूति ।।४
प्रकृति परे परिपूर्णानन्दे महसि महाद्भुत हरिरसकन्दे ।
भ्राजमानमखिलोज्ज्वलरम्यं मधुरविशदहरिभावसुगम्यम् ।।५
मुख्य रसात्मकपरमाकारं विमलमनोज बीजरुचिसारम् ।
मायाविद्यापारमपारं राधामाधव नित्यविहारम् ।।६
राधामधुपतिचारुपदाङ्के रङ्कितमतुलसुधारसपङ्कैः ।
स्वच्छ सुशीतल मृदुल सुवासं विभ्रदवनितलमद्भुतभासम् ।।७
क्वचन परागपुञ्जकमनीयक्वचमकरन्दपूररमणीयम् ।
क्वचनगलितकुसुमैः कृतशोभक्वच मणिकर्पूररज रुचिराभम्

अद्भुत धाम है, जिससे शृङ्गार नामक महारस की वन्या निरन्तर प्रवाहित हो रही है, जो परम मनोहर एवं परम पवित्र है, सकल रसमय धाम की शिरोमणि स्वरूप है ।।३।। निखिल गुणों के आकर स्वरूप उक्त धाम की भूमि अतिउज्ज्वल चिन्तामणिमय है, उस भूमि के एक तृण की विभूति भी श्रुति समूह के अगोचर व दुर्बोध्य है, उस में उच्छलित महासमुद्र की अनुभूति होती रहती है ।।४।। उक्तधाम प्रकृति से अतीत परिपूर्णानन्द, महा अद्भुत हरि रस कन्द(बीज) स्वरूप ज्योति में विराजमान है। तत्रत्य निखिल वस्तु ही उज्ज्वल रम्य, अथवा उज्ज्वल शृङ्गाररस से रम्य एवं मधुर, विशुद्ध होने पर भी श्रीहरि भक्ति से ही गम्य व सुलभ है, मुख्य शृङ्गार रसात्मक सुन्दराकृति विशुद्ध कामबीज की कान्ति से अत्युत्कृष्ट होकर माया अविद्या के अतीत में स्थित है एवं श्रीराधा माधव के अपार नित्यविहार स्थल है ।।६।७।। श्रीराधा मधुपति के सुचारु पदाङ्क से एवं अतुलनीय

सन्ततफलकुसुमादिविचित्रैः कोटिमहासुरपादपजैत्रैः ।
गुल्मलतातरुभिः सुपवित्रैर्मण्डितमीशजुषामपिचित्रैः ॥९॥

कुसुमितपल्लवितद्रुमवल्लिस्फुटितकदम्बकर्किशुकमल्लि ।
स्मेर कुमुदकरवीरविराजि प्रहसितकेतकचम्पकराजि ॥१०॥

विकसितकूटजकुन्दमन्दारं सुफलितपनसपूगसहकारम् ।
हरिचरणप्रियतुलसीविपिनैः शोभमानमुरुपरिमलमसृणैः॥११

विलसज्जातियूथिकमतुलं विकचस्थलपङ्कजवकवञ्जुलम् ।
सन्ततसन्तानकसन्तान वरहरिचन्दनचन्दनविपिनम् ॥१२॥

पारिजातवनपरमामोदं राधाकृष्णजनितबहुमोदम् ।
कुरुवकमरुवकमाधविकाभिर्दमनकदाड़िममालतिकाभिः ॥१३

शेफालिकया नवमालिकया शोभितमपिबहुविधश्लिष्टिकया ।
ललितलवङ्गवनैरतिमधुरं नवपुन्नागरुचिरुचिरम् ॥१४॥

सुधारस पङ्क द्वारा अङ्कित है, स्वच्छ सुशीतल मृदुल, सुवासित एवं अद्भुत कान्तिपूर्ण भूमिखण्ड से शोभित है ॥७॥ कहीं पर पराग पुञ्ज से परम कमनीय, कहीं पर मणि कर्पूर रज की आभा से मण्डित है ॥८॥ निरन्तर फल कुसुमादि सम्भार से विचित्र कोटि कोटि महाकल्पवृक्ष समूह भी जय शील परम पवित्र एवं ईश्वर सेवीगण के लिए विस्मय हेतु बनकर लता गुल्म तरुगण द्वारा उक्त धाम सुशोभित है ॥९॥ उसके प्रति वृक्ष प्रति लता कुसुमित पल्लवित हैं, कदम्ब पलाश मल्लिका वृक्षगण प्रस्फुटित हुए हैं। उसमें ईषत् विकसित कुमुद करवीर पुष्प विराजित है, एव केतकी चम्पक राशि हँस रहे हैं ॥१०॥ कुटज, कुन्द, मन्दार पुष्पसमूह विकसित हैं, पनस गुवाक, आम्रवृक्ष समूह में सुन्दर सुन्दर फल लगे हुए हैं। महापरिमल से सुस्निग्ध हरिचरण प्रिय तुलसी कानन द्वारा सुशोभित है ॥११॥ उसमें अतुलनीय जाति, युथिका प्रभृति विलसित हैं, स्थलपद्म, वक वञ्जुल (अशोक, वेतस) प्रस्फुटित हैं, निरन्तर सन्तानक (कल्पवृक्ष) समूह वंशविस्तार कर रहे हैं ॥१२-१३॥

स्तवकितनवकाशोकवनालिरमेरशिरीषपरिस्फुटपाटलि ।
बन्धुरमभिनवबन्धुकविपिनैः शोभितमभितस्तिलकाम्लानैः ॥
निज निजविभवैः प्रतिपदमधिकं विलसदनन्तजातिलतलतिकम्
निरवधिवधि मधुरगुणसिन्धुसुविच्चिरनिन्दितकोटि रवीन्दु ॥
वापीकूपतड़ागैर्ललितं मणिमयकेलिमहीधरमहितम् ।
रासोचितमणिकुट्टिमराजरञ्ज्ञयदेक विमलरसराजम् ॥१७॥
रक्तकनक कर्पूरपरागविभ्रद् रविजापुलिनसुभागम् ।
राधामाधवकेलिनिकुञ्जं दधदतिमञ्जुगुञ्जदलिपुञ्जम् ॥१८॥
मदकलकोकिलपञ्चमरागं स्थिरचर निकरमूर्च्छदनुरागम् ।
मदशिखण्डकृततण्डवरङ्गं चकितचकितपरिलोलकुरङ्गम ॥

पारिजात वन की परम सुगन्ध श्रीराधाकृष्ण को,आनन्द प्रदान कर रही है। कुरुवक, मरुवक, माधविकादि द्वारा दमनक दाड़िम मालतिकादि द्वारा एवं सेफालिका नवमल्लिका, बहुविध झिण्टिकादि द्वारा वह सुशोभित है, ललित लवङ्ग वनराजि से वह अतिमधुर एवं पुन्नाग नागकेशर प्रभृति की कान्ति से अतिमनोहर है ॥१४॥ नव नव अशोक वनराजि स्तवकित हैं, शिरीष, कुसुम समूह ईषद् हास्य कर रहे हैं, एवं पाटल पुष्पराशि परिस्फुट हैं। अभिनव बन्धुक (बान्धुलि)पुष्पवन समूह के द्वारा मनोहर है, एवं चतुर्दिक में प्रस्फुटित अम्लान पुष्प वृक्षराजि से सुन्दर शोभित है ॥१५॥ अनन्त प्रकार तरु लतादि क्षण क्षण में अधिकतर निज निज शोभासमृद्धि प्रकटित कर रहे हैं। उसमें निरन्तर मधुर गुण सिन्धु वृद्धि प्राप्त हो रहे हैं एवं उसकी ज्योति से कोटि कोटि सूर्यचन्द्रादि भी अनादि काल तक म्लान होकर रहते हैं ॥१६॥ वापी, कूप, तड़ागसमूह से सुशोभित मणिमय केलि पर्वतसमूह व्याप्त रासोचित मणि कुट्टिमसमूह विराजित वृन्दावन रसराज श्रीकृष्ण को सुखी करता है ॥१७॥

यमुना पुलिन के सुन्दर सुन्दर भूखण्ड (स्थल विशेष) रक्त, स्वर्ण, एव

परमविचित्रतराकृतिरावैः खगपशुभिर्बहुभिर्बहुभावैः ।
शोभितमपि शुकसारीनिचयैः वरदम्पत्योः स्वपदविनेयैः ॥२०

अत्यद्भुततम ऋतुषट्कश्रिश्रासितनैः श्रेयसि विपिनश्रि ।
मन्दसुगन्ध सुशीतलमरुता जुष्टममृतयमुनाम्भसिविशता ॥२१

आद्य विशुद्ध महारस रूपं खेलदेकवरमन्मथभूपम् ।
सान्द्रानन्दपरमरसकाष्ठं राधानागरभावगरिष्ठम्॥ २२॥

अधिललितादिक सुललितभावं प्रकटितसहजरसवदनुभावम्
निखिलनिगमगणदुर्गममहिमप्रेमानन्दचमत्कृतिसीम ॥२३॥

शारदचन्द्रकरखचितं स्फीतरसाम्बुधिवीचीनिचितम् ।
अधिरजनीमुखमुज्ज्वल वेशः कोऽपि किशोरस्तत्र प्रविवेश ॥

कर्पूर परागवर्ण के हैं, वह अति मनोज्ञ है। भ्रमर समूह द्वारा गुञ्जरित श्रीराधामाधव के केलि निकुञ्ज से सुशोभित भी है ॥१८। उसमें मदकल कोकिलों का पञ्चम राग श्रुत होता है, वहाँ के स्थावर जङ्गमात्मक जीव नित्य अनुराग की प्रबलता से मूच्छित होते हैं मदमत्त मयूरगण भी ताण्डव नृत्य से सब के कौतूहल विस्तार करते रहते हैं, एवं भयभीत महाचञ्चल हरिणगण इतस्ततः विचरण कर रहे हैं ॥१९॥ परम विचित्र आकृति धारी एवं काकलि ध्वनि युक्त बहुभाव युक्त अनेकानेक पशु पक्षि समूह द्वारा श्रीयुगल किशोर के चरण प्रान्त में उपनीत शुक सारी समूह से भी शोभित है ॥२०॥ महाअद्भुततमषट् ऋतु की शोभा समन्वित वहाँ के कानन-श्रीमहा मङ्गल के निदान स्वरूप हैं। अतिसुन्दर यमुना के जलस्पर्शी मन्द सुगन्ध एवं सुशीतल पवन द्वारा उक्त वृन्दावन शोभित है ॥२१॥ श्रीवृन्दावन, आद्य विशुद्ध महारस शृङ्गार स्वरूप एक मात्र महा मन्मथ राज की क्रीड़ा भूमि है, उसमें राधा एवं तदीय नागर के भाव में [illegible] आनन्द परम की काष्ठा चरमसीमा

[illegible] ललितादि सखीगण के सुललित

भाव माधुर्य का वहन करता है, उसमें सहज रसमय अनुभाव

महाचमत्कारनिधानरूपविलासभूषादिभिरत्यपूर्वः ।
रासोत्सवायप्रविशन् प्रदोषे वृन्दावनं नन्दतिकृष्णचन्द्रः ॥२५॥
रसमयलीलः कुवलयनीलः सकलयुवतिमोहनगुणशीलः ।
कुञ्चितकेशः सकलकलेशःपीतपटाञ्चितपृथुकटिदेशः ॥२६॥
मकराकृतिमणिकुण्डलदोलस्फुरदतिरुचिकल्लोलकपोलः ।
मुक्तारत्नविचित्रनिचोलः स्मररसमधुरविलोचन खेलः ॥२७॥
रत्नतिलकरुचिरञ्जितभालः स्निग्धचपलकुटिलालकजालः ।
कलितललिततरबहुविधमालः केलिकलारभसातिरसालः ॥२८
प्रमुदितवदनमनोहरहासः कम्बुकण्ठतटपदकविलासः ।

रत्नादि सुवर्ण गुण क्रियादि प्रकटित हैं, उनकी महिमा समूह वेद के लिए भी दुर्बोध है, एवं परम प्रेमानन्द चमत्कार की परम सीमा में वह अवस्थित है ॥२३॥ शारदीय चन्द्र किरण माला से खचित सुशोभित एवं उद्वेलित रस सिन्धु की तरङ्ग माला से परिव्याप्त है, ऐसे वृन्दावन में प्रदोष काल के समय में उज्ज्वल वेशधारी विभु किशोर का प्रवेश हुआ ।२४॥ महाचमत्कार के स्वरूप विलास भूषादि के द्वारा अति अपूर्व मण्डित कृष्णचन्द्र प्रदोष के समय रासोत्सव करने के लिए वृन्दावन में प्रविष्ट होकर आनन्दित हुए ॥२५॥ आपकी रसमयी लीला है, आप कुवलय के (नीलपद्म के समान) समान नील वर्ण के हैं, एवं उनके गुण चरित्र सब कुछ ही सकल युवति को मुग्ध करनेवाले है । कुञ्चित केश कलाप चतुःषष्टि कला के अधीश्वर एवं निष्कलङ्क पूर्णचन्द्र हैं । उनके विपुल कटितट में पीतवसन शोभित है ॥२६॥ कर्णद्वय में मकराकृति कुण्डलद्वय दोदुल्यमान है, महाज्योति तरङ्ग मालामय सुन्दर कपोल गण्डदेश है । मुक्तादि रत्न खचित उत्तरीय वसन हैं, आप स्मर रस से मधुर लोचन द्वय को नृत्य करा रहे हैं ॥२७॥ रत्न एवं तिलक से कपाल रञ्जित है, कुञ्चितकेशदाम स्निग्ध चञ्चल एवं कुटिल है । सुन्दर सुन्दर अनेक

विरचितयुवतिविमोहनचूड़ श्चित्रमाल्यवृतबर्हापीड़ ॥२९॥
पीनोरसिलसदुरुमणिहार स्फुटदङ्गदकङ्कणरुचिधारः ।
सुभगनितम्ब रणमणिरसनः परिहितरासोचितवरवसनः॥३०
मणि मञ्जीर मञ्जुरुत चरणः प्रसृमर पादाङ्गद मणि किरणः ।
श्रवण विराजित रत्न वतंसकरधृत मणिमय मोहनवंशः ॥३१
राधानुस्मृति मुहुरुत्पुलकः सकलरसिकवरनागरतिलकः ।
प्रत्यङ्गाद्भुत सुषमासिन्धुः प्रतिपदवर्धिमदनरससिन्धुः ॥३२
प्रोद्वेलाद्भुतमधुरिमसिन्धुः प्रकटमहारसमयगुणसिन्धु ।
मत्तमतङ्गजलङ्घितगमनः परमरसैकनिमज्जितभुवनः ।
काश्मीरागुरुचन्दनलिप्तः श्यामतनुर्मणिभूषणदीप्तः ॥३३
त्रिभङ्गी विन्यासस्थिततनुकदम्बद्रुमतले
यदा राधा नामाङ्कित मधुर सङ्केतमुरलीम् ।

शृङ्गारमाल्य धारण कर केलिकलारम्भ से अति रसमय हुए हैं ॥२८॥ महा आनन्दमय वदन में मनोहर हास्य है, कम्बु (रेखात्रययुक्त शङ्खवत) कण्ठदेश में पदक का विलास नृत्य हो रहा है' चूड़ा युवतियों को मुग्ध कर रहा है ॥२९॥ विशाल वक्ष में बहुविध मणिमय हार विन्यस्त है, अङ्गद, कङ्कण, की कान्तिमाला प्रकाशित है, सुन्दर नितम्ब में मणिमय रसना मधुरध्वनि कर रही है, एवं आप रासोचित अत्युत्तम वसन से शोभित हैं ॥३०॥ चरणों में मणिमय नूपुर की ध्वनि हो रही है, नूपुरों की मणि किरण चतुर्दिक में व्याप्त है कर्णों में रत्नकुण्डल, हाथ में मणिमय मोहनवंशी विराजित है ॥३१॥ श्रीराधा के स्मरण से अङ्ग में मुहुर्मुहु उच्च पुलक हो रहा है, आप सकल रसिकगण के श्रेष्ठ व नागर चूड़ामणि हैं' इनके प्रति अङ्ग में अद्भुत सुषमा सिन्धु है, एवं प्रतिक्षण में इनका मदन रस की वृद्धि होति रहती है ॥३२॥ इनसे अद्भुत माधुर्यसिन्धु उच्छलित हो रहा है आप प्रकट महारसमय गुणसिन्धु हैं, इनकी गतिभङ्गि मत्तमातङ्ग की भाँति अतिसुन्दर हैं, आप परमरस (शृङ्गार) के द्वारा सकल भुवन

निधाय श्रीविम्बाधर वरपुटे नागर गुरु
जंगो गोप्योऽधावन्निकममितह्यविविवशाः ॥३४॥
अथ नीप कल्पतरु मूलगतः कलित त्रिभङ्ग ललिताङ्गयुतः ।
अरुणाधरे निहितवेणुवरः कलकुजगो स रसिकप्रवरः॥३५॥
श्रुत्वा माधवमुरलीनादं तत्क्षण मुज्झित गुरुजनवादम् ।
ध्वन्यनिनुकमनुधावितवत्यः प्रतिदिशमभिनवगोपयुवत्यः ॥३६॥
काश्चिद् व्यत्ययस्ताम्बरभरणाः काश्चननूपुरक युतचरणाः ।
अपरा अञ्जितैकदृग्नयनाः का अपि परिहृतनिजपतिशयनाः ॥३७
स्नानोद्वर्तनमनुलेपं नीविनिबन्धनमार्जनलेपम् ।
कुर्वत्योऽतिजवात् पपुरपराः काश्चिदर्धप्रसाधिताचिकुरा॥३८॥
काश्चिद् गुर्वादिषु कुञ्जामिष्वपि परिवेशं हित्वा याने ।
चक्रमति मतिखण्डितलज्जाः केवल वंशिकसङ्गमसज्जाः ॥३९॥

को निमज्जित कर रहे हैं। आप कुङ्कुम, अगुरु चन्दन द्वारा लिप्त देह है और मणिमय भूषणों से श्रीअङ्ग समुज्ज्वल है ॥३३॥ त्रिभङ्गि भङ्गिम रूप में खड़े होकर श्रीराधानाम का संकेत युक्त मुरली को सुन्दर विम्बाधर में रखकर नागरेन्द्र कृष्णने जब कलध्वनि की, तब ही गोपीगण विवश होकर लम्पटचूडामणि के निकट आने के लिए अभिसार किए थे ॥३४॥ अनन्तर आपने कदम्ब के नीचे जाकर त्रिभङ्ग सुन्दर भङ्गी का अङ्गीकार किया, अरुणवर्ण अधर पल्लव में वेणुवर को स्थापन कर वह रसिक चूडामणि कलध्वनि (अव्यक्त मधुर निनाद) करने लगे ॥३५॥ माधव की मुरलीध्वनि को सुनकर तत्क्षणात् गुरुजनगणों के परिवादादि का परिहार करके अभिनव गोप ललनागण उक्त ध्वनि को लक्ष्यकर दौड़ने लगीं ॥३६॥ किसी के वस्त्रभूषादि विपर्यय हुआ, किसी ने एक चरण में नूपुर पहना, किसीने एक नेत्र में कज्जल लगाया, और किसीने तो निज पति की शय्या को छोड़कर ही दौड़ी ॥३७॥ अपरापर गोपीगण स्नान, उवटन, अनुलेपन नीविबन्धन एवं गृह देह मार्जन लेपादि करते करते उसका समाधान न करके ही प्रबल वेग से घर को छोड़ दिये, कोई तो केश प्रसाधन को असम्पूर्ण करके ही अभिसार किया ॥३८॥ किसीने गुरुजन को

काश्चन हारग्रथने सक्ताः सूत्रकरा प्रययुरत्यनुरक्ताः ।
मुग्धाः दुग्धावर्तनानिरता ययुरपरा अपिहरिरसभरिताः ॥४०॥
लोकवदार्यधिकृतसमुल्लंघा दूरदलितगृहदेहापेक्षाः ।
प्रेममहाग्रहगाढगृहीता हरिमभिसस्रुर्व्रजपुरवनिताः ॥४१॥
गण्डलोलमणिकुण्डलसुषमाः मुक्तकचभरविगलित कुसुमाः ।
विपुलनितम्बस्तनभरगुरुकलान्तगुरुचि प्रकटीकृतबहुचपलाः ॥४२॥
उपरि विनिर्मित शतशत चन्द्रा मध्यरचितचलहेमगिरीन्द्राः ।
भुविविहितस्थलपङ्कजवलनारेजुर्दिशि दिशि ता व्रजललनाः ॥४३॥
नूपुरकाञ्चीवलयघटानां झङ्कृतमुखरित सकलदिशानाम् ।
जङ्गमकनकलतायितवपुषां रेजे राजिः सा व्रजसुदृशाम् ॥४४॥

भोजन परोसने के समय ही परोसना छोड़ कर ही अभिसार कर दिया, अहो ! ये सब हो महालज्जाशीला होने पर भी केवल वंशीधारी के साथ सङ्गम के लिए ही निर्णय कर लिए थे ॥३९॥ किसी ने तो माला निर्माण करते समय डोरी को हाथ में लेकर ही चल दिया, अन्यान्य गोपीगण दूध तपाने में रत होने पर भी मुग्ध एवं हरि रस से पूर्णान्वित होकर अभिसार कर दिये ॥४०॥ व्रजाङ्गनाओं ने लोकमर्यादा वेदमर्यादा का सम्यक् प्रकार से उल्लङ्घन किया था। उन्होंने देह गेहादि की अपेक्षा को भी विसर्जन कर दिया था केवल प्रेम रूप महाग्राह से आक्रान्त होकर उन्होंने हरिप्राप्ति के उद्देश्य से ही अभिसार किया ॥४१॥ उस समय उनके गण्डदेश स्थित चञ्चल मणि कुण्डल की सुषमा प्रसून हुई, उन्मुक्त केश कलाप से कुसुम समूह विगलित होने लगे। विपुल नितम्ब व स्तन युगल के भार से विकल हो गये, एवं देह कान्ति के प्रकाश से जैसे अनेकानेक विद्युन्माला को ही प्रकट किए थे ॥४२॥ व्रजाङ्गनागण उपरि भाग में (मुख में) शत शत चन्द्रमा का निर्माण कर मध्यदेश में (छाती में) चञ्चलायमान सुवर्ण गिरीन्द्र (स्तन युगल) की रचना कर पृथिवी में चरण विन्यास से स्थल पद्म को प्रकाश कर विराजित थे ॥४३॥ नूपुर, काञ्ची, वलय समूह के झनत्कार से दिग् वलय मुखरित हो उठे थे और व्रज सुन्दरीगण गतिशील स्वर्णलता के सदृश प्रतिभात होकर यूथ यूथ में

युवतीषु या निजपति संभुक्ता दैवान्तर्गृहमयाता स्ता: ।
गोपै र्दृढतरपिहिते द्वारे प्रतिहत गतय: पेतुरगारे ॥४५॥
अशुभं पुरुषान्तर सङ्गकृतं कृत्वा विरहार्त्या निहतम् ।
परममहामङ्गलमुनिदानं चक्रु र्मधुपति मधुरध्यानम् ॥४६॥
शुद्धमहारसचिद्घनदेहा हरिपरबहिरन्तरसकलेहा: ।
सपदि प्राप्ता: प्रेष्ठ पदान्त ताश्च तदाश्चिरास्तु नितान्तम् ॥४७॥
एवं व्रजवर युवतीवृन्दै: श्यामकिशोरमदान्धै: ।
हरिगतिरिन्दिरयापि न दृष्टाप्रान्त मदनरसमात्रनिविष्टा ॥४८॥

न लोक वेद व्यवहारमात्रं न गेह देह द्रविणात्मजादि ।
यत्राविदं स्ता न पथोऽपथो वा स कोऽपिजीयादिह कृष्णभाव:

श्रीवृषभानो निष्कुट याता तद् दुहिता त्रिभुवन विख्याता
राधेत्यनुपम रसमयमहिमाशुद्ध महारति मधुरिमसीमा ॥५०॥

शोभित थे ॥४४॥ गोप युवतियों में से जो निज निज पति के द्वारा संभुक्ता रही, वह दैवात् घर में घुस गई थी' उस समय गोपों ने जोर से द्वार रुद्ध कर दिया इससे निरुद्ध गति होकर वह घर में गिर गई ॥४५॥ अन्य पुरुष के सङ्ग जनित अशुभ सकल हरि की आर्त्ति से विनष्ट हो जाने पर वह परम मङ्गल के सुन्दर निदान स्वरूप माधव का ध्यान करने में प्रवृत्त हो गई ॥४६ उस समय शुद्ध महारास चिद्घन देह को प्राप्त कर अन्तर बाहर सब कार्य में हरि परायण हो गई एवं सद्य ही प्रियतम के चरण के समीप में उपनीत होकर रुचिरता प्राप्त हुई, अर्थात् उनके निखिल मनोभिलाषा पूर्ण हो गई ॥४७॥ श्यामल किशोर इस प्रकार प्रेम मदान्ध व्रज युवतीगण के साथ शोभित हुये। अहो श्रीहरि का भाव का दर्शन साक्षात लक्ष्मी ने भी नहीं किया अथच केवल कामरस निविष्ट गोपीगणों ने उसको प्राप्त किया ॥४८॥ जिसभाव से वश होकर गोपीगण लोक व्यवहार को भूल ही गई थीं, जिस भाव ने गेह देह धन पुत्रादि को विस्मृत करा दिया, जिससे उनसब ने सुपथ विपथ कुछ भी नहीं जाना है उस अनिर्वचनीय कृष्ण भाव की जय हो, अमरत्व को प्राप्त करे ॥४९॥ अतुलनीय

यत्र स्व विभव सुचमत्कृततनुभिः पुरुषोत्तम शक्तिभिरमिताभिः ।
दूरतरादपि कृतदास्याशा सकल परमसुखकृत परिहासा ॥५१॥
आशैशवमतिमुग्धप्राया श्यामिकादि कलनाकुलकाया ।
सहज महाद्भुत हरिनरागा संव्यवहारमात्र सविरागा ॥५२॥
स्वप्नेक्षित रमणात्मसमाधिः प्रलापित संजनितात्युपलब्धिः ।
क्षणमति कम्पा क्षणमति पुलका जड़वत् क्षणमाश्रितसखिका॥५३॥
विलसति नवघन आगतमूर्च्छा सनय सभयवीक्षितशिखिपिच्छा ।
क्षणमत्यर्त्या सुस्वर रुदिता क्षणमपि बहुतः क्षितितललुठिता ॥५४॥
क्षणमुत् सृजति सकलाभरणं क्षणमति गृह्णत्यालीचरणम् ।
क्षण मभिधाय यामि यमुनामितिनिगदति वाच्योऽसौ मम नम इति॥५५॥

रसमय महिमा विशिष्टा, शुद्ध महारति एवं माधुरी की सीमा त्रिभुवन प्रसिद्धा श्रीवृषभानु नन्दिनी राधा अपने उपवन में पधार चुकी हैं ॥५०॥ निज निज वैभव ऐश्वर्य द्वारा चमत्कार कारि देह धारिणी पुरुषोत्तम के निखिल शक्तिगण दूरतर प्रदेश से ही दास्य रस की आशा करते हैं, अहो ! उन्होंने इस भाव में लुब्ध होकर परम सुख राशि का परिहास किया ॥५१॥ श्रीराधा शैशव से मुग्ध स्वभाव की थी श्याम वस्तु को देखकर ही उनके देह व्याकुल हो जाता था, श्रीहरि के प्रति स्वाभाविक महाद्भुत अनुराग एवं व्यवहारिक वस्तु के प्रति सम्यक् वैराग्य अनासक्ति उनकी थी ॥५२॥ आपने स्वप्न में रमण श्रीकृष्ण के साथ निज मिलन स्वभाव एवं समाधि (मिलन) को दर्शन किया प्रलाप से अतिशय उपलब्धि प्रकट हुई, छन में अतिकम्प क्षण में अतिपुलक कभी तो जड़ के समान सखी को पकड़ कर रह गई ॥५३॥ नवीन जलधर को देखकर मूर्च्छित होती हैं, भीत सन्त्रस्त होकर मयूरपुच्छ को देखती है, क्षण में ही अतिशय आर्ति से उच्चैःस्वर से रोती रहती है, क्षण के बाद ही पृथ्वी में गिरकर लौट लगाती रहती है ॥५४॥ क्षण क्षण में आभरणों को खोलकर फेंक देती हैं, छन में सखियों के चरण पकड़ती है, क्षण क्षण में मैं यमुना को जा रही हूँ, श्रीकृष्ण, उनको मेरा नमस्कार कहना, यह कहती हैं ॥५५॥

क्षणमुल्लसिता सहसोच्चहसिता वितत भुजच्छायाश्लेषरता ।
क्षण मभिदधतिकृतकाकुतति धृष्टोपालि न लज्जय मेति ॥५६॥
माधव नाम रूप गुण गानैश्चित्रपटादिष्वाकृतिलिङ्गैः ।
प्रतिमुहुरपि चाश्वासवचोभिः कथमपि यापितसमयालीभिः ॥५७॥
साध्वभिमत हरि मुरली सुकला त्रिकलाऽधावदुपेक्षित सकला ।
श्याम मिलन रस संभ्रम वलिता प्रति मुहुरुद्यत् पुलकनिचिता ॥५८॥
रस गरिमोज्ज्वल गौरवरक्षाकार विरचित बहुतर शिक्षा ।
वारितवत्यपि मन्मथविवशामालिस्तां धृतपाणिः सहसा ॥५९॥
तासु सकल गोकुल वनितासु प्रणय महासंभ्रम मिलितासु ।
प्रेक्षा न जीवौषध निज कान्ता प्रायहरिर्विरहा तुलचिन्ता ॥६०॥

श्रुत्वापि वेणुनिनद स्वसखीजनेन

सम्मान रक्षण कृते बहुदत्त शिक्षा ।

छन छन में उल्लसित हो उठती है, सहसा जोर से हंस पड़ती है, अपनी छाया को, भुजाओं को बढ़ा कर दृढ़तर आलिङ्गन करती है क्षण क्षण में काकुवाद प्रणति कर कहती है, हे धृष्ट ! सखीजन के समक्ष में मुझे लज्जित न करो ॥५६॥ माधव के नाम, रूप एवं गुण गान से चित्रपटादि में उनकी आकृति अङ्कन में प्रति मुहुर्त्त में सखी गण के द्वारा प्रदत्त आश्वास वाणी को सुनकर ही काल यापन करती रहती है ॥५७॥ श्रीहरि की मुरली की कलध्वनि कर्णरन्ध्र में प्रविष्ट होते ही अधीर होकर सब बाधा की उपेक्षा करके ही आपने अभिसार किया, श्याम के साथ मिलन रस से सम्भ्रम युक्त होकर प्रति मुहूर्त्त में ही उनके अङ्ग में पुलकावलि विकसित हो रही थी ॥५८॥ रस का गुरुत्व एवं स्वकीय उज्ज्वल कुलगौरव रक्षा के लिए सखियों ने उनको अनेक प्रकार शिक्षा भी दी, किन्तु सहसा ही उनको अभिसार में प्रवृत्त देखकर सखि ने उस काम विह्वल राधा का हाथ पकड़ लिया ॥५९॥ यहाँ पर प्रणय सम्भ्रम से मिलित गोपी समाज में निज जीवातु रूपा कान्ता को न देखकर श्रीहरि विरह से अतुलनीय चिन्तान्वित हो गये ॥६०॥ वेणुध्वनि को सुनकर भी

राधासमागतवती न यदा तदेक
प्राणस्तदा हरिरभूद्गुरुदुःखचिन्तः ॥६१॥

दर्शित लोकवेद बहुभीतिः प्रिय विनिवर्तित युवतीविततिः ।
समवददत्यनुराग रसान्धा हरिपद कृत दृढजीव निबन्धा ॥६२॥
विषमिव सकल विषय मपहाय त्वत्पदमाश्रितमतुलसुखाय ।
प्रेष्ठ मा भिन्धि मर्म कृपाणीं मावद मावद निष्ठुरवाणीं ॥६३॥
सकलेन्द्रिय मनसामनिवृत्तिः प्रिय ! भवतैक हृताखिल वृत्तिः ।
कोऽन्विह लोकः कः परलोकः क्व तदा स्मरणं क्वनु वा करणम् ॥६४
यदनिवृत्ति प्रविशति लोकः परमासह्य नरकमनिकरौकम् ।
कोऽपि तदपि किमु तव चरणाशां प्रत्यपि कुरुतेहन्त जिहासाम् ॥६५॥
तच्चरणाम्बुज मकरन्दाशा यद्धृदि सनभूत् सहज विलासा ।
दर्शय परम महामय लोकाजहहस्वात्मनि भवति विशोभा ॥६६॥

निज मान रक्षा के लिए सखीजन के द्वारा उपदेश प्राप्त करके भी जब श्रीराधा संकेत स्थल मे नही आई, तब राधागत प्राण श्रीहरि अतिशय दुःख मे निमग्न हो गये ॥६१॥ प्रियतम श्रीकृष्ण ने लोक वेद मर्यादा लंघन से उत्पन्न भय का प्रदर्शन किया, और उनके साथ मिलित होने को मना कर दिया तब अनुराग से अन्ध प्राय, एवं श्रीहरि चरणों मे निविड़ रूप से प्राण समर्पण कारिणी युवतीगण श्रीकृष्ण को कहने लगीं ॥६२॥ हे प्रेष्ठतम ! हमने सब विषयों को विष के समान त्यागकर निरुपम सुख के लिए तुम्हारे चरणाश्रय किया है, इस प्रकार मर्म घातक निष्ठुर वाक्य मत बोलो ॥६३॥ हे प्रिय हमारे इन्द्रिय एवं मन की निवृत्ति किसी से नहीं होती है, कारण तुमने सबके मन को हरण कर लिया है। हमारे इहलोक और परलोक क्या है, अब कहाँ किस का स्मरण, और वहाँ किसका करण, अर्थात् इन्द्रियादि की चेष्टा नहीं होगी ॥६४॥ यदि कोई व्यक्ति परम असह्य नरक समूह मे निवृत्ति रहित होकर प्रवेश करता है, हाय ! तथापि क्या वह तुम्हारे चरण प्राप्ति की आशा को छोड़ सकेगा ॥६५॥ तुम्हारे चरण पद्म मधु प्राप्ति की आशा स्वाभाविक रूपसे हमारे हृदय

पति सुत गेह स्वजन धनाद्यं त्यक्तं वान्तवदखिलमवद्यम् ।
पुनरपि दुःसहमपि तत् स्मरणं तव यदि न कृपा वरमिह मरणम् ॥६७॥
त्वत्पद पङ्कज रजसा धन्ये त्यक्त्वा तनुमिह वृन्दारण्ये ।
प्राप्स्याम स्त्वां ध्रुवमभिरामं त्यज दुरवग्रहनागर कामम् ॥६८॥
प्रेमोत्कण्ठय सगद् गदमित्थं व्रजतरुणीमुख चन्द्रसमुत्थम् ।
पीत्वा वचनसुधारससारं राधापतिरिदमवदुदारम् ॥६९॥

चन्द्रावली प्रभृति सर्व विदग्ध गोपी
वृन्देऽपि सम्मिलितवत्यति मन्मथान्धे ।
श्रीराधिका विरहदीन उपेक्ष्य पूर्वम्
पश्चादनन्य विषयान्ययुनक् प्रियार्थे ॥७०॥

अति निर्भरतर मद्भाववतीनोहमुपेक्षे कथमविनवती. ।

परिराजित है, अब तुम महाभय एवं लोभ दिखला रहे हो। अहो! तुम्हारे निज, स्वभाव में यह आचरण बहुत ही विसदृश मालूम पड़ रहा है ॥६६॥ हमने पति पुत्र गृह स्वजन धनादि घृणित वस्तु को वान्तवत् (वमन के समान) ही त्याग किया है, पुनर्वार उनकी बातों का स्मरण करने पर भी दुःख होता है। यदि तुम्हारी कृपा नहीं मिलती तब हमारे लिए मृत्यु ही श्रेयस्कर है ॥६७॥ तुम्हारे चरण रज से धन्य इस वृन्दावन में देहत्याग करके निश्चय ही अभिराम रमण तुमको हम सब प्राप्त करेंगे। हे नागर हे दुराग्रह! 'मनोरथ परिपूरण में प्रतिबन्ध दाता' तुम इसको छोड़ो ॥६८॥ व्रजाङ्गना के मुखचन्द्र निर्गलित इस प्रकार प्रेमोत्कण्ठा जनित गद्गद् वाणी रूप मनोरम सुधारस निर्यास को पानकर श्रीराधा नायक कहने लगे ॥६९॥ चन्द्रावली प्रभृति सर्व विदग्ध गोपीवृन्द सम्मिलित होने पर भी श्रीराधिका के विरह कामरस से अतिशय अन्ध दीनचित्त श्रीकृष्ण ने पहले उन सब की उपेक्षा की पीछे उन सब को अनन्य जानकर प्रियतमा के लिए विनियोग किया ॥७०॥

तुम सब ने मेरे साथ दृढ़तम प्रेम किया है, अतएव मैं किसी प्रकार से

किन्तु विना मम जीवन राधां कृन्तति किमपि च नान्तर बाधाम् ॥७१॥
तदवहिता रचयत यत्नं सा मम कण्ठविभूषणरत्नम् ।
मिलति यथा न चिरेण भवत्यः साधु यथा विदधन्त्वतिमत्यः ॥७२॥
अथ स विचार्य व्रजजनिताभिः कामिनिकुलमानमुदिताभिः ।
प्रहिता द्रुतमुपवनगत राधां समेत्याह बलत्स्मरबाधाम् ॥७३॥
श्रीवृषभानु भवन मणिमञ्जरि राधे ! जन नयनामृत लहरि !
क्वापि न लोके क्वापि तुला ते व्रजजन भाग्यात् परमिह जाते ॥७४॥
अयि मयि कृपयापाङ्गं मुञ्चय सेश्वर विश्वं मद्वशतां नय ।
स्नेहावेश गलज्जल नयने ! क्षणमवधानं कुरु मम वचने ॥७५॥
परमरसे तव यदपि निमग्नं क्वचिदपि भवति मनो न हि लग्नम् ।
तदपि महाकरुणार्द्र प्रकृते ! श्रवणं देहि मनाङ्ममगदिते ॥७६॥

भी नाप सब की उपेक्षा नहीं कर सकता हूँ । किन्तु मेरा जीवन स्वरूप राधा को छोड़कर मेरी हृदय पीड़ा की शान्ति किसी प्रकार से नहीं हो रही है ॥७१॥ अतएव ! हे वनितागण ! तुम सब महामति हो, वह विध प्रयत्न करो, जिस से अचिरकाल में ही वह राधा मेरे कण्ठ की भूषणमणि हो जाय ॥७२॥ अनन्तर श्रीकृष्ण ने अति आनन्दित व्रज बालागण के साथ परामर्श करके एक सुनिपुणा गोपी को दूती बनाकर राधा के पास भेज दिया, वह गोपी द्रुतगति से उपवन स्थित राधा के समीप में आकर, उनको काम पीड़ा से अधीरा देखकर कहने लगी ॥७३॥ हे वृषभानु राज भवन की मणि मञ्जरि ! हे श्रीराधे ! हे जनगण नयनामृत लहरि ! चतुर्दश भुवन में कहीं पर तुम्हारी उपमा नहीं है किन्तु व्रजजन के भाग्य से ही तुमने यहाँ पर जन्म लिया है ॥७४॥ अयि राधे ! कृपा करके मेरे प्रति एकबार अपाङ्ग दृष्टि करो । एवं उस अपाङ्ग के साथ समग्र विश्व को वाध्य करो ! स्नेहावेश से तुम्हारे नयन से अश्रुधारा विगलित हो रही है, हे राधे । क्षणकाल के लिए मेरा वाक्य में मनोनिवेश करो ॥७५॥ हे परम रस रूप । यद्यपि तुम्हारा मन कहीं पर नहीं लग रहा है, किसी परम रस में निमज्जित नहीं होता है तथापि हे महा करुण द्रवचित्ते !

एकः श्यामलदिव्यकिशोरः श्रीशप्रमुख मनोमणिचोरः ।
अस्ति व्रजवृन्दावन सेवी तं लभते काऽपि न देवी ॥७७॥
कमलादिक वरतरुणीवृन्दैः सतत विमृग्यः कृतनिरबन्धैः ।
स तव पदाम्बुज परिमल लुब्धः षट्पदइव विभ्राम्यति मुग्धः ॥७८॥
राधे ! तस्य तु तत्त्वरहस्यं त्वच्छ्रुति मूलेशंस्यमवश्यम् ।
यत् केनापि कदापि महतापि नो दृश्यत पराभवदृशापि ॥७९॥
केवल काम रसात्मक एव केवल मधुरकिशोरक वेषः ।
केवल गोप युवति रति तृष्णः परममधुरिम्णा नाम्ना कृष्णः ॥८०॥
कामपि गोपीमपि कामयते न खलु रमाद्यारमणीर्गणते ।
गोकुल मण्डल मसौ दिन रजनी विचिनोति क्वनु का नव रमणी ॥८१॥
बलाच्छलतोरन्यैरपि योगैः साधितगोपवधूसंभोगैः ।
निरवधि कामाम्भोधेः पारं गच्छन्नस्ति कश्च एवारम् ॥८२॥

एकबार मेरी बात को सुनो ॥७६॥ लक्ष्मी पति प्रभृति सब के मन मणि चोर एक श्यामल दिव्य किशोर है, आप व्रज विपिन का सेवक है कोई भी देवी उनको प्राप्त करने में समर्थ नहीं है ॥७७॥ लक्ष्मी प्रभृति महातरुणी वृन्द, निर्बन्ध के साथ सतत उनका सङ्ग को ढूंढती रहती हैं, किन्तु प्राप्त नहीं होते है। वह किशोर मणि तुम्हारे पादपद्म के परिमल लुब्ध भ्रमर की भाँति अति मुग्धचित्त से इधर उधर भ्रमण कर रहे हैं अथवा विभ्रम ग्रस्त हैं ॥७८॥ हे राधे! उनका तत्त्व तुम्हारे कर्णमूल में अवश्य ही निवेदनीय है, अहा! परभाव दर्शनकारी कैवल्य अथवा मुक्ति धामनिरक्षक, अत्युत्कृष्ट भाव पर्यवेक्षक कोई भी महाजन कभी बिन्दु मात्र भी उस तत्त्व का अनुभव नहीं कर पाये है ॥७९॥ आप केवल काम रस स्वभाव, केवल मधुर किशोर वेश, एवं केवल गोपीगण की रति तृष्ण रति लम्पट है उनका परम मधुर नाम ही श्रीकृष्ण हैं ॥८०॥ आप जिस किसी गोपी को चाहते हैं, किन्तु लक्ष्मी प्रभृति सुन्दरीगण को कभी भी मन में स्थान ही नहीं देते है दिनरात समग्र गोकुल में घुमघुम कर देखते हैं, कहाँ पर कौन नव युवति है ॥८१॥
बल से और छल से एवं अन्यान्य उपायों से कौन व्यक्ति ऐसा है जो

तत्र तु स्निग्धजनानुग्रहहेतोस्तस्या करान्तरमपि दधतः ।
प्राप्य रहसि नव तरुणी निकटं तन्निजरूपमुदीरितकृतम् ॥८३॥
किं बहुनागरीतिः स तस्यापि शिशुत्वानुकृतेः ।
गोप्योत्सङ्गेऽधररसलौल्यं कुचकोरकमनु करचाञ्चल्यम् ॥८४॥
स हि नव किशोरीदर्शी व्रजवीथ्यादिष्वकृतविमर्शम् ।
लुञ्चित कञ्चुक कुचयुगलः श्लिष्यति चुम्बति सहसामत्तः ॥८५॥
सुतयामिलति स्नुषयापि वध्वामिलति भगिन्यापि चाप्यविरुद्धा ।
तदपि महामोहन वदनेक्षा स्थगिततस्थु वल्लवमुख्याः ॥८६॥
काश्चिद् वशयति कामकलाभिः का अपि नृत्यगीत विद्याभिः
काश्चन तरलीकुरुते मुरली वादनखुरलीभिर्वनमाली ॥८७॥

गोपवधूगण के साथ निरन्तर सम्भोग क्रीड़ा करके काम समुद्र का पार में यथेच्छगमन करने में समर्थ हुआ है ?॥८२॥ स्निग्ध सखीजन की कृपा प्राप्त करने के लिए, एवं कभी तो अन्य रूप धारण कर निर्जन में नव तरुणी के समक्ष में आकर निज रूप प्रकट करने के लिए भी इन को देखा गया है ॥८३॥ अधिक क्या कहें ? शिशुत्व का अनुकरण कर (अर्थात स्वभाव में किशोर होकर भी वयस में लघु रूप धारण कर) बहुविध नागर कलाविद कृष्ण गोपीजन गण के क्रोड़देश में अवस्थान करते हैं, एवं उनके अधर सुधापान के लिए चाञ्चल्य प्रकट करते हैं। एवं कुच कोरक स्पर्श के लिए भी हाथ को चञ्चल करते हैं ॥८४॥ व्रज के पथ में नव किशोरी को देखकर ही कुछ भी न सोचकर कञ्चुक अपसारण प्रभृति करते रहते हैं, सहसा मत्त होकर आलिङ्गन चुम्बनादि करते रहते हैं ॥८५॥ किसी की कन्या के साथ बधू के साथ भगिनी के साथ मिलन लीला करते रहते हैं श्रेष्ठ गोपीगण इनका पथरोध करने पर भी इनका महामोहन वदन को देखकर सब मुग्ध हो जाते हैं ॥८६॥ वनमाली किसी को काम कलादि के द्वारा किसी को नृत्यगीतादि के द्वारा वशीभूत करते हैं, और किसी को मुरलीवादन रूप शराघात से चञ्चलायित करते हैं ॥८७॥

काश्चन तत्पति वेशविनोदैः काश्चिद्ग्रहभीत्याद्यपनोदैः ।
काश्चन दूतिकया बहुदानैः काश्चिद् वंशीवादन धरणैः ॥८८॥
काश्चित् स्वयमनुनयनैर्धन्याद्युत जितास्तत् पतिव स्ववन्याः ।
आकर्षति काश्चन मन्त्राद्यैः काश्चन चीरहार हरणाद्यैः ॥८९॥
वनभूमि पुष्पावचयन सक्ता काश्चन चौर्यारोपाद् भुक्ताः ।
अन्याश्चित्रेक्षण कुतुकेन भीषण जन्तुरूप भजनेन ॥९०॥
देवनटी रूपाचरणेन मोहयतीन्द्र जाल रचनेन ।
अन्या स नयन् यमुनापारं रतिमेवातरमात्तोदारम् ॥९१॥
गोकुल वधूटि कया न कया सङ्गतिरस्यबभूव ह ।
उन्मद मदन रसैक प्रकृते स्तदपि मनोऽस्य न निर्वृतिमयते ॥९२॥
स कदाचिच्छव वृन्दाविपिनं प्राविशेदेकः स्मररसः सदनम् ।
क्वापि कदम्बतले स्मरखिन्नः सुप्तस्तत् प्रशमन निर्विण्णः। ॥९३॥

किसी किसी रमणी को पतिवेशधारण कर आनन्द देते हैं, किसी का ग्रहभय विदूरित करते हैं, किसी को दूती द्वारा दान मान प्रदान करते है, एवम्प्रकार गोपीगण को वंशी वादन द्वारा वशीभूत करते हैं ॥८८॥ किसी को अनुनय करके, किसी को द्युत क्रीड़ा से किसी को मन्त्रादि के द्वारा वश कर, किसी के वस्त्र हार प्रभृति की चोरी करके सम्भोग करते हैं ॥८९॥ बन प्रदेश में किसी गोपी को पुष्प चयन में आसक्त देख कर कृष्ण उसको चोर अपवाद देकर और किसी को विचित्र जन्तु दिखलाकर भय उत्पन्न करके सम्भोग करते हैं ॥९०॥ कभी तो देव नटी का, रूप धारण करइन्द्रजाल विद्या से किसी को मुग्ध करते हैं, किसी को यमुना पार करने के लिए नाव और नाविक बनकर किराया भाड़ा मांगते हैं ॥९१॥ किस गोकुल वाला के साथ कृष्ण का सङ्गम नहीं हुआ है ? किन्तु उन्मद मदन रस स्वभाव कृष्ण का मन परम शान्ति प्राप्त नहीं किया है ॥९२॥ किसी एक समय मेंश्रीकृष्ण अकेला ही स्मररस मन्दिर नव वृन्दावन में प्रवेश किये थे, कामशर से खेदान्वित एवं उसका प्रशमन के लिए निर्वेद युक्त होकर किसी कदम के नीचे सो गयेथे ॥९३

स्वप्ने दर्शनमस्य त्वम्गा लीलाखेल परादभुतग्सदा।
किमपि च लज्जानत वदना सा गदित वतीमधुरसविलासा ॥६४
किं कथये त्वां जीवितनाथ ! राधात्वत् प्रेमैव ननाथ।
त्वन्तु ब्रजयुवतिभि विहरसि मां निजकान्तां नैव स्मरसि ॥६५॥
इत्याकर्ण्य परम रससारं त्वद् वचनामृतमसमोवारम्।
यावत् पुरुद र् पदयोः पतित तावज्जागरितोभुविलुठति ॥६६॥
तदवधि परमाविष्टः स युवा व्रजमथ वृन्दा न मन्यद्वा।
राधाराधेत्यविरत जापः प्राटति राधाध्यायुरुतापः ॥६७॥
प्रथमोद्देशं तव सुसखीतः श्रुत्वातन्भाव च प्रतीतः।
अन्योपायं मिलनमपश्यन् वेणुरवं स्त्वाह्वयदति हृष्यन् ॥६८॥
तास्तु महामोहनमुरलीध्वनि माकर्ण्यैव लोकनिगमाध्वनि।
दृढ़तर हृयधियो व्रजवनिता आयपुरस्यान्तिकमपि न मताः ॥६९

लीला विलास परायण, अद्भुत रसदायिक तुमने उनके स्वप्नके मध्य में उदित होकर लज्जा नम्रवदन और विलास भङ्गी से सुमधुर स्वर मे उनको कहा था ॥६४॥ हे प्राणनाथ ! मैं और क्या कहूँगी ? राधा तुम्हारे पास प्रेमभिक्षा कर रही है। तुम व्रज युवतिगण के साथ विलास कर रहे हो, निज प्रेयसी मुझ को स्मरण ही नहीं करते हो ।६५॥ परम रस निर्यास रूप तुम्हारे इस अतुलनीय मनोहर वाक्यामृत को श्रवण द्वारा पानकरके जब श्रीकृष्ण जोर जोर से रो रो कर तुम्हारे पैर में गिर गये थे, उसी समय नींद टूट जाने पर जागकर भूमि में लौट लगाने लग गए॥६६॥ उसी समय से ही वह युवा किशोर परमाविष्ट होकर व्रज में वृन्दावन में एवं अन्यत्र 'राधा राधा' नाम अविरत जप करते करते घूम रहे हैं ॥६७॥ तुम्हारी किसी प्राण प्रिया सखी के समीप में तुम्हारा प्रथमोद्देश प्राप्त कर एवं भाव को अनुभव कर आपने निश्चय किया कि अन्य उपाय से मिलन होना असम्भव हैं, अतएव आनन्द चित्त से वेणु ध्वनि से ही तुम्हें बुलाने का प्रयत्न वह कर रहें हैं ॥६८॥ वह मनो मोहन की मुरली ध्वनि को सुनकर ही लोक मार्ग में और

अपि न कटाक्ष निरीक्षण मासु त्वत् प्रणयो कुरुतेऽनुरतास् ।
अनिशयंवाद्भुत रसभावं खिन्न स्त्वत् पदनूपुररावम् ॥१००
पश्यन्नपि स न पश्यति किञ्चित् शृण्वन्नपि न शृणोति स किञ्चित्
त्वामनु चिन्तयते व्रजनाथः सन्तत विहित त्वद्‌गुणनाथ ॥१०१
क्वासि प्रेयसि ! हा हा राधे ! मय्यनु कम्पां कुरुगुरुबाधे ।
स्मृत्वा मामुपयाहि त्वारत वृन्दाविपिनं कुरुसुखभरितम् ॥१०२
अथवा सहज सख वत्सल हृदये नायास्यसि कथमनुगत सदये ।
तिष्ठसि कुञ्ज क्वापि निलीना रीतिरियं तव सुरस धुरीणा १०३
एवं प्रलपति बहुधा कृष्णस्त्वत् सङ्गम रसमात्र सतृष्णः ।
त्वामुपनीय ध्यानात् पुरतः, स भवति रसमयचेष्टातिरतः ॥१०४

वेद मार्ग में दृढ़तर हेय बुद्धि स्थापन कर ब्रजबालागण उनके निकट आगई है, किन्तु श्रीकृष्ण ने तो उन सब को कुछ भी आदर नहीं किया ॥९९॥ तुम्हारे प्रणयी ने उस अनुरक्त ब्रजबालागण के प्रति कटाक्षपात भी नहीं किया। कारण वह अद्‌भुत रसभाव जनक तुम्हारे पद नूपुर की ध्वनि को न सुनकर खिन्न हुआ है ॥१००॥ आप कुछ देखकर भी नहीं देख रहे हैं, सुनकर भी नहीं सुन रहे हैं अर्थात् उस विषयों में मनोनिवेश नहीं करते हैं, वह व्रजनाथ केवल आपकी चिन्ता में मग्न हैं, और निरन्तर आपकी गुणगाथा का कीर्त्तन करते रहते हैं ॥१०१॥ हे प्रेयसि ! राधे ! तुम कहाँ हो ? तुम्हारी बहुत बाधा विपत्ति है, मैं जानता हूँ, तथापि कृपाकरो ! मुझे स्मरण कर एकबार शीघ्र वृन्दावन में आकर सबको सुख पूर्ण करो ॥१०२॥ अथवा तुम तो सदा ही स्निग्ध हृदय बे हो, तुम तो मादृश्य अनुगत जन के प्रति सदा ही सदय हो, व्रज विपिन में क्यों नहीं आओगी ? मैं समझ गया हूँ, तुम किसी कुञ्ज में छिपकर हो, तुम्हारी रीति सुन्दर तो है ही, रसमयी भी है ॥१०३॥ इस प्रकार तुम्हारे सहित सङ्गम रस में तृष्णाशील कृष्णचन्द्र बहुशः प्रलाप करते रहते हैं, ध्यान से तुम्हें सम्मुखीन कर आप रसमय चेष्टा में डूबे हुये हैं ॥१०४॥

चन्द्रावल्याद्यखिलमनोज्ञ व्रजवर रामा अपि स रसज्ञः ।
कृतचाटूक्तीः पश्यति न दृशा श्वसिति परं तव रतिरससुतृषा ॥१०५
नान्य तरुण्या वार्त्ताः कुरुते नान्य दत्तं पिबति न भुङ्क्ते ।
अन्या स्पर्शन दर्शन विरुचि स्त्वदनुपरतायामास्ते स शुचिः ॥१०६
विलपत्यति करुणं तव बन्धु र्घृतबाष्पौघो युवति मलेन्दुः ।
स्थिरचर सत्वान्यपि चक्रन्दु र्वृन्दा विपिनमभूजल सिन्धुः ॥१०७
शोषं नेष्यति हरिवपुरुष्मा तवकृन्व वनमथरुचिराश्मा ।
केलिगिरि स्ते द्रवतां यायात् प्लावितमखिलं बाष्पैर्भूयात् ॥१०८
सकलं श्रीमद् वृन्दाविपिनं सकलं गोकुलमपि च व्यसनं ।
परम दुरन्तमद्य समुपैति सकल प्राणधने परिषीदति ॥१०९
तदुरुनित वे न कुरु विलम्बं चल सखि ! कृतमत्पाण्यवलम्बम् ।

चन्द्रावली प्रभृति निखिल मनोज्ञ युवतिगण अनेकानेक प्रिय वचन कहनेपर भी रसज्ञ कृष्ण उनसब को आँख उठाकर भी नहीं देख रहें हैं। वरं तुम्हारे रति पिपासु होकर लम्बी श्वास ले रहे हैं ॥१०५॥ अन्य किसी भी रमणी की बात नहीं सुनते हैं दूसरे से दी हुई भोजन पान सामग्री का ग्रहण नहीं कर रहे हैं। अन्यान्य गोपीयों के दर्शन, स्पर्शन, में उनकी बड़ी अरुचि हो गई है, किन्तु तुम्हारे प्रति एकान्त निष्ठा को प्रकटकर परम पवित्र हो गये हैं ॥१०६॥ तुम्हारे बन्धु, अति करुण स्वर से विलाप कर रहे हैं, हे युवति राधे ! उनका मुख बाष्प धारा से नहा रहा है, स्थावर, जङ्गम, प्राणी निचयों के रोदन से वृन्दावन आँसूयों का सागर बन गया है ॥१०७॥ श्रीहरि का देह ताप सब वृन्दावन को सुखा देगा, और मनोज्ञ प्रस्तर खण्ड शोभित तुम्हारे केली गिरिगोवर्द्धन पर्वत भी पिघल जायेगा, अतः सब व्रजमण्डल आँसुयों की बाढ़ के चपेट में आ जायेगा ॥१०८॥ सबके प्राणधन श्रीकृष्ण विषण्ण होने पर आज समग्र वृन्दावन समग्र गोकुल परम दुरन्त विपदा क्रान्त है ॥१०९॥ अतएव हे गुरु नितम्बिनि और देरी मत करो हे सखी मेरा हात पकड़ कर अभी चलो। तुम्हारी गति भङ्गी को देखकर मदकल

नवकल कादम्बक निकुरम्बं तव गति भङ्ग्या भजतु विडम्बन् ।।११०
अथ दुर्धरतरमन्मथ बाधा किमपि गदितुमशकन्नहि राधा ।
तद्दयितालि र्बहुरस ललिता गिरमति ललिता नवदल्ल लता ।।१११
चल सुन्दरि ! किं बहुवचनेन वयमति तृप्ताः कृष्णगुणेन ।
यैरनुभूतं तस्य न चरितं तच्छ्रवणं कुरु तद्गुणभारतम् ।।११२
वक्रिमशालि श्यामल वपुषः काऽऽस्था ऋजुशुचितायांमनसः ।
कृत्रिम एव प्रेमविकार स्तस्यमृषा वा त्वद् व्याहारः ।।११३
पश्य दूति ! बहु वल्लभ एष व्रज पुरतः तरुणी मोहनवेशः ।
वेणु ध्वनि हृतगोपावृन्दः कथमिह सख्या मम सुखगन्धः ।।११४
मनुते यदि दयिता गणमुख्यां स मम सखीं निज परमाभिख्याम् ।
तत् कथमादौ न तया मिलितः प्राप्तानुज्ञोऽन्याभिर्न युतः ।।११५

कलहँस निचय विड़म्बना को प्राप्त करके लज्जित हो जाय ।।११०।। अनन्तर दुःसहतर मन्मथ पीड़ा से आक्रान्त होकर श्रीराधा कुछ भी कह नहीं सकी । तब उनकी प्रिय सखी, प्रिय सहचरी बहुरसमयी ललिता अति ललितमनोज्ञ वाक्य से बोली ।।१११।। हे सुन्दरी !अभी ही इस स्थान को छोड़ो । बात करने की आवश्यकता क्या है ? हम कृष्ण गुण से अच्छी तरह सुतृप्त हैं, उनके चरित्र का अनुभव जिनका नहीं है, उनके कान में ही कृष्ण गुण गान कर बताओ ।।११२।। त्रिभङ्ग भङ्गिम श्यामल सुन्दर के मन की सरलता और पवित्रता में क्या विश्वास है ? उनका प्रेम विकार कृत्रिम हो सकता है, अथवा तुम्हारा कहना झूट है ।।११३।। देखो दूति ! कृष्ण बहु वल्लभ हैं, उनका वेश भी गोकुल युवतियों को मुग्ध करनेवाला है, उन्होंने वेणु ध्वनि से तो गोपीगण को ही आकर्षण किया है । इससे मेरी सखी कैसी सुखी हो सकती है ।।११४।। यदि मेरी सखी को प्रियागण मुख्या मानते हैं, परमशोभा विधायिनी, कीर्त्तिदायिनी मानते हैं, तब पहले इनके साथ क्यों नहीं मिला, अथवा इनका आदेश क्यों नहीं लिया अन्य गोपी सङ्ग करने के लिए ।।११५।।

तदलमलं कपटैक परेण प्रकटित मिथ्याप्रेम भरेण ।
तेन दिनद्वयमेको भवता पुनरथ परमौदास्यं भजता: ॥११६
किञ्चास्माकं कण्ठ गतेषु प्राणेष्वन्यां व्रजवरतनुषु ।
राधाभर्त्ता कथमिव शयनं नेष्यति धन्यामपि कृतकरणम् ॥११७
तत् लक्ष्मीपति मोहन्यपि का व्रजभुव्यस्मत् सख्यनुचरिका ।
भवितु योग्या सह तत् पतिना यानिर्ल्लज्जा कृतिरति कलना ॥११८
गत्वा सर्वमिदंत्वं वर्णय कामुक मुकुटमणि सखि ! सुखय !
स सुखं विहरतु सहयदुराम स्तादृश निकटं न वयंयाम: ॥११६
क्रीड़ती स बहु कपट नाटिक या मुग्धव्रजपुर युवतीघटया ।
सुमुखि ! वयन्त्वनुरागमनन्यं विभ्रतमेव भजामो धन्यम् ॥१२०
राधैकान्तिकभावो न भवेत् स यदि तवस्यां सङ्गति विभवे ।
अस्तु निराशो ममतु सखीयं तादृशहृद् गमयतुसमयम् ॥१२१

अतएव उस परम कपट शिरोमणियों के साथ मिथ्या प्रेम प्रकट करनेवाले के साथ, सम्पर्क स्थापन करना हम नहीं चाहते हैं, उस से कोई लाभ नहीं है, अहा, वह तो दो दिन राधा से मिलेगा इसके बाद हो उदासीन हो जायेगा ॥११६॥ दूसरी बात है, हमारे प्राण कण्ठगत होने पर भी श्रीराधारमण, व्रज की दूसरी नारी को अपनी सेज में ले जाते हैं ॥११७ वृन्दावन में ऐसा कौन नारी है, लक्ष्मी ही चाहे श्रीनारायण की छाती में रहनेवाली हो, मेरी सखी की अनुचरी हो सकती है ? वह नारी निर्लज्ज है, इसलिए कृष्ण के साथ उसने सुरत क्रीड़ा की है ११८॥ सखि ! तुम कामुक चूड़ामणि के पास जाकर यह सब कहकर उनको सुखी करो। वह बहुकान्ता लेकर सुखी बने, हम सब उस कपट शिरोमणि के पास नहीं जाऊँगी ॥११६॥ वह बहु कपटता करके व्रजवधूओं के साथ विहार करता है, हम सब एकान्त अनुरागी धन्य प्रेमिक जनको ही भजन करूँगी ॥१२०॥ यदि आप श्रीराधा में अनन्यनिष्ठा नहीं रखते हैं, तो इस के साथ सङ्ग की आशा छोड़ ही दें । और मेरी सखी भी उक्त प्रकार रति को हृदय में रखकर कालयापन करें ॥१२१।

तत आगत्य तथा परि कथिते सकले राधालीजनलपिते ।
गोपीवेशस्थगित समाजः स्वयमचलच्छ्रीव्रजयुवराजः ॥१२२

दूतीगिरापि च यदा वृषभानुपुत्री
नैवागता रसविलासविधौ विदग्धा ।
गत्वा तदा स्वयमसौ युवती सुवेश
स्त्वां प्रेमविह्वलतनुं हरि रानिनाय ॥१२३

व्रतमिव स गतो राधारामं तद्गुण चरितैः परमाभिरामम् ।
शिरसि निहित तच्चरण परागः प्राह ललितमतिबलवदनुरागः ॥१२४

अहह ! महाद्भुतभाग विपाके तव पदमति दुर्लभमदिनाके ।
अद्य दृशापि तृषा परिदृष्टं स्पृष्टं जनिफलमखिलं जुष्टं ॥१२५

तव पद पङ्कज नखमणिचन्द्रज्योतिः प्रसरा दृशि दिशिसान्द्रः ।
स्वानन्दामृत सिन्धुरपारः स्यन्दत एवाद्भुत रससारः ॥१२६

अनन्तर दूती लौट आई और सखी की बात कह दी, तब व्रजराज स्वयं युवति बनकर नारी समाज को विस्मित करके राधा के ओर चल दिये ॥१२२॥ जब रसकला विदग्धा वृषभानुनन्दनी दूती वाक्य को सुनकर भी श्यामसुन्दर के पास नहीं आई तब श्रीकृष्ण युवति का सुन्दर वेश धारण कर उस प्रेमोन्मत्ता राधा को रास मण्डल में ले आई ॥१२३॥ और राधा के गुण चरितादि को गाते गाते परम रमणीय श्रीराधिका की कुञ्ज वाटिका में पहुँच गये, एवं श्रीराधा के चरण धूली माथे में लेकर प्रबल अनुराग से मिठी मिठी वाणी से बोलने लगे ॥१२४॥ अहो आज महा अद्भुत भाग्य से स्वर्ग में दुर्लभ तुम्हारे चरण कमल को पिपासित नयन से दर्शन कर स्पर्श किया, निखिल जन्म का फल आज ही करतलगत हुआ ॥१२५॥ तुम्हारे पादपद्म नखमणि चन्द्र समूह की ज्योति से सब ओर निबिड़ अद्भुत रस निर्यासमय अपारावार स्वानन्दामृत सिन्धु प्रवाहित हो रहा है ॥१२६॥

आश्चर्या ते रूप चमत्कृति राश्चर्या ते रुचिरकन्दलति ।
आश्चर्या ते मधुर वयः श्रीलास्यैर्हरिरपि मूर्च्छति सा श्रीः ॥१२७
जन्मनि जन्मनि दास्याअपि ते दास्य पदाशां का न हि कुरुते ।
आस्तामपरं श्याम रसोऽपि त्वत्पदकमले लभ्यः कोऽपि ॥१२८
कोऽयमहो मम भाग विशेषः बलितो गलित स्तर्कोऽशेषः ।
यदिह मया गतया हरि कार्ये प्रापि परश्चिन्तामणिरार्ये ॥१२९
रमयाप्यतिदुर्लभपदरजसां मृग्यो निरवधि गोकुल सुदृशां ।
वृन्दावन विधुरपि तवदासी भागकलया श्चिरमभिलाषी ॥१३०
नापेक्षा मम मोहन राजे तद्धित हेतोः कृतिमपि न भजे ।
यन्मे त्वत् सङ्गादन्यदकाम्यं तदपितदुक्तं कथये रम्यं ॥१३१
अयि वर सुन्दरि नागरि राधे ! कुरु हरिवचने हृदयमबाधे ।

आश्चर्य तुम्हारे रूप चमत्कृति आश्चर्य है, तुम्हारे कान्ति कन्दली का प्रसारण, आश्चर्य है, तुम्हारे मधुर वयस की शोभा समृद्धि, अहो तुम्हारे नृत्य से लक्ष्मी के साथ नारायण भी मुच्छित होते हैं। अथवा परम मनोज्ञ हरि श्यामसुन्दर भी तुम्हारे भावाश्रय नृत्य को देखकर मुग्ध होते हैं ॥१२७॥ अहो कौन रमणी ऐसी होगी, जो जनम जनम में तुम्हारी दासी का दास्य प्राप्त करने की इच्छा नहीं करेगी ? अधिक और क्या कहूँ-उज्ज्वल श्यामरस भी तुम्हारे चरण कमल से ही मिलता है ॥१२८॥ अहो ! मेरा कैसा भाग्य फलीभूत हुआ, मेरा अशेष संशय आज मिट गया हे आर्ये ! हे सरले ! मैं हरि की सेवा के लिए जा रही थी, यहाँ पर कैसे चिन्तामणि मिल गई ॥१२९ गोकुल युवतिगण के दुर्लभ पादरज की कामना स्वयं लक्ष्मी भी करती हैं। अधिक क्या बलूं ? वृन्दावन चन्द्र भी तुम्हारी दासी की सोभाग्य कला की अभिलाषी हैं ॥१३०॥ उस मोहनराज के प्रति किसी प्रकार अपेक्षा प्रीति आकाङ्क्षा नहीं है, और उनके हित के लिये भी किसी प्रकार यत्न नहीं करती हूँ। कारण तुम्हारे सङ्ग से मेरी दूसरी वस्तु की आकाङ्क्षा नहीं है, तथापि श्रीहरि ने जो कुछ कहा है, उस रमणीय कथा को कहती हूँ ॥१३१॥ अयि वराङ्गने

यन्नम मुखतः श्रवण पुटेन स्रवितं त्वां वशयेत रसेन ॥१३२
पयस इव द्रव भाव सहजः प्रणय महोघ स्तव मयि सुनिजः ।
सुमुखि! तवद्य किमव नसारं मयि कुरुषे गुणदोष व ारम् ॥१३३
तव रसपुष्टि कृते व्रजरामा मुरलिरवेण हृता अभिरा ाः ।
तत्र वृथा किमुद्घटय दोषं भवतु प्राणेश्वरि ! भज तोषम् ॥१३४
गोप किशोर्यः स्त्रगद् भ्रम युक्ताः काश्चन धुत्कृत्याथत्यक्ताः ।
श्रुत्वा काश्चिदतुलमरूपा स्त्यक्ता अनुभूयाननुरूपाः ॥१३५
अन्या वशश्च कीभूय क्षिप्तह्रीया मां रह आनीय ।
पाणौ पीतपटे वा धृत्वा मत्ताः सकृदधरमधुपीत्वा ॥१३६
एका कपि तवास्ते योग्या व्रज इति दूतीजन वाग्भङ्ग्या ।
काचन काचन भुक्त्वा त्यक्ता साम्प्रतमत्र वयं सुविरक्ताः ॥१३७

नागरि राधे ! हृदय की पीड़ा नाशक हरि कथा में मनोनिवेश करो, कारण मेरे मुख से निःसृत कथा का आस्वादन श्रवण पुट से करने पर कथा तुम्हें रसमयी करेगी ॥१३२॥ जलका जिस प्रकार स्वभाविक द्रवीभाव है, उस प्रकार मेरे प्रति तुम्हारे प्रणयातिशय्य भी अतिनित्य हैं। हे सुमुखि ! तब क्यों आज वृथा मेरा गुण दोष विचारने लगी हो ॥१३३॥ तुम्हारे रस पोषण के लिए अतिरमणीय व्रजरमणीगण का आह्वान मुरली ध्वनि से मैंने किया है। उस से क्यों तुम दोषोद्घाटन कर रही हो ? हे प्राणेश्वरि जो कुछ होने का है, वह तो हो चुका है, अब सन्तुष्ट हो जाओ ॥१३४॥

किसी किसी गोप रमणी का जो मैंने सम्भोग किया वह भ्रम से हुआ है, तुम्हीं हो ऐसी प्रतीति मेरी हुई थी। किसी को धुत्कार से त्याग किया है, किसी का रूप की कथा सुनकर भी उसको अदृश्य मानकर त्याग किया है ॥१३५॥ अपरापर दश पाच रमणी मिलकर निर्लज्ज होकर मेरा हात व पीतपट पकड़कर एकान्त स्थान में मुझ को ले जाकर एकवार मात्र मेरी अधर सुधा पानकर वे सब उन्मत्ता हो गई है ॥१३६॥ हे नागर इस व्रज में एक ही रमणी है, वह ही तुम्हारी योग्या है, दुती की उस बातसे किसी किसी गोपी को सम्भोग

हरि हरि काममहाम्बुधिपारं कोवा नेष्यति मां सविकारम् ।
स्थितवानेव महर्निश मन्त श्चिन्तातततिममिलन्निजकान्तः ॥१३८
त्वद्वनमध्यसुप्तमति विधुर त्वं मा बोधितवत्यसि मधुरम् ।
स्वात्मनं श्रीराधानाम्नीं प्रकटितं मच्चिन्तातिग धाम्नीम् ॥१३९
स्वप्ने जागरणे वा प्रेयसि ! पूर्वमपि त्वं हृदि मे स्फुरसि ।
बहिरिवमनुपलभ्य तव रूपं बंभ्रमामि कृतमिथ्यारोपम् ॥१४०
सहजादेव तु दिव्या मुरली स्वयमधि गायति नाम गुणालीः ।
तव परमाद्भुत मधुरिम भरिता दिनंनिशि न मया क्षणमपिरहिता ॥१४१
गायति मुरली मम किमपूर्वं सन्ततमिति विस्मितधीरम् ।
अहह पुरा करुणामयि सम्प्रति धन्यतमां स्तौम्यनिशममूं प्रति ॥१४२
अमया ससज स्वद्गुण रसया प्यद्य कृता स्त्वयि काकुप्रचयाः ।

करके ही छोड़दिया है, अब मैं इस बिषय में अतिशय विरक्त ही हो गया हूँ ॥१३७॥ हरि हरि विकार ग्रस्त मुझ को कौन व्यक्ति काम समुद्र का पार में ले चलेगा ? दिन रात में इस चिन्ता से बिता रहा हूँ। तुम्हारे निज प्राण नाथ को मानस चिन्ता जाल ने फंसा लिया है ॥१३८॥ तत्पश्चात् मैं विरह से व्यथित होकर तुम्हारे उपवन में सोगया, तब तुमने स्वप्न के छल से निज मधुर श्रीराधानाम को सुनाकर एवं मेरी चिन्तातीत रूप स्वरूप को देखाकर मुझ को तुमने जगाया ॥१६३॥ हे प्रेयसि स्वप्न व जागरण में पहले से ही तुम मेरी हृदय में स्फुरित हो रही हो, बाहर तुम्हारे रूप को न देखकर इतस्ततः मिथ्या विषय में अन्यनारी में तुम्हारे रूप को आरोप कर ही अबतक घूम रहा हूँ ॥१४०॥ मेरी मुरली सहज ही स्वयं तुम्हारे नाम गुणावली का गान उच्चैःस्वर से करती रहती है, वह तुम्हारी अद्भुत माधुरी पूर्ण होने के कारण दिवानिशि क्षण काल के लिए भी मैं उसको छोड़ नहीं सकता हूँ ॥१४१॥
मेरी मुरली क्या अपूर्व गाती है ? यह सोचकर पहले मैं अचरच में पड़ गया था। अहो ! करुणामयी, अब मैं उस गान का तात्पर्य को समझकर धन्यतमा मुरली का सर्वदा स्तव करता हूँ ॥१४२॥

दुस्तर काम मदन दलनाय प्रेयसि ! कथमपि तव मिलनाय ॥१४३
त्वन्नामैक परा मम मुरली स्वयं मायन्मुग्धा कुलटाली ।
तत्र न कुरु मयि दोषारोपं ननुरस रूप मपित्यज कोपम् ॥१४४
त्वत् सङ्गम रस निवसज्जीवः प्रणयिनि शङ्का रहितोऽतीव ।
दीन दयार्त्तः कुतुकित हृदयः खेलामाहृत गोपीनिचयः ॥१४५
सुप्रसन्नवदनां न निरीक्षे त्वां यदि कृतमज्जीवन रक्षे ।
को नु तदा मम कौतुक कामः कायादेरपि वृत्तिविरामः ॥१४६
क्षान्ति स्नेह कृपामय प्रकृते निज भृत्ये मयि दीने प्रणते ।
कणंजाप मपि कुर्वत्यालिनिकरे नेष्याप्यागः पटली ॥१४७
अथ हतभाग्यतमे मपि राधे ! नाशु प्रसीदस्यसदपराधे ।
त्वत् पदकाङ्क्षितवृन्दाधिपिने क्वापि दशास्यान्मम मृगनयने ॥१४८

स्वभाविक तुम्हारे गुण रसान्मता मुरली तुम्हारे लिए अनेक दैन्योक्ति की है। हे प्रेयसि ! सुनो उसका कारण मैं कहता हूँ। दूरन्त काम पीड़ा को नष्ट करके जिस किसी प्रकार से तुम्हारे साथ मेरा मिलन कराने के लिए ही निनादित होती है ॥१४३

मेरी मुरली तुम्हारे नाम लेकर निनादित होती है, किन्तु मुग्धा कुलटा रमणीगण स्वयं आ जाती है। उससे तुम मेरे प्रति दोषारोप नहीं कर सकती हो। हे राधे तुम्हारा यह कोप मान रस निदान होने पर भी अब उसको छोड़ो ॥१४४॥ हे प्रणयिनि ! तुम्हारे सङ्गम की आशा से मैं जीवित प्राण निरतिशय निःशङ्क था। मैं दीन जनके प्रति दयार्त्त एवं कौतूहलाक्रान्त होकर तब समागत गोपी मण्डली के साथ ही मैंने क्रीड़ा की है ॥१४५॥ मेरा जीवन की रक्षा के लिए यदि तुम को प्रसन्न नहीं देखता हूँ, तब मेरी यह कौतुक और काम अति तुच्छ होगी अधिक मैं क्या कहूँ। तब मेरी देहादि वृति भी विरत होगी। अर्थात् जीवन चला जायेगा ॥१४६॥ हे क्षान्ति, स्नेह कृपामयि राधे ! तुम्हारा निज भृत्य दीन, प्रणत दास के प्रति सखी समूह अनेक प्रकार निन्दावाद तुम्हारे निकट करने पर भी तुम उस में दोष राशिका ग्रहण न करना ॥१४७॥ हे मृगनयने राधे शेष

श्रुत्वैवं हरिवाक्यकदम्बानेष्यसि यदि चल तिष्ठ सुखं वा।
मम तु भवत्याः श्रीपदकमलाविरतपदेशीस्तनुरपि न चला ॥१४९

साश्रु सगद्गदमिति निगदन्तं कान्तावेशधरं निजकान्तम्।
विस्मयमूकास्वालिषु राधा प्राह सरसमिदमनुरागान्धा ॥१५०

श्यामलगोपकिशोरित्वयिमे कृष्ण इवात्माप्रीति चकमे।
क्व स्थितवत्यसि कालमियन्तं पुण्यै स्तव मुख मीक्षि सुकान्तम् ॥१५१

प्राय स्तैलतरानुध्यातः कृष्ण स्त्वं मम सुसखीभूतः।
इदमतिभद्रतरं यदशङ्कं साधुनिधास्ये प्रियतममङ्कम् ॥१५२

यदि मम कथमपि तादृश वेशः स्मृतिपथमेयान्निजहृदयेशः।
वर्होत्तंसा वादितवंशा मुखयिष्यसि मां त्वं तद्वेशा ॥१५३

यद्यपि परार्द्धान् हरिरपराधानकृत तथापि क्षमते राधा।
यत्तेवदन चन्द्रसौन्दर्यं स्वमपि ममक्षीणादाश्चर्यम् ॥१५४

कथा यह है कि–यदि हतभाग्यतम निरपराध मेरे प्रति शीघ्र प्रसन्न न हो तब तुम्हारे पदाङ्कित इस वृन्दाविपिन में मेरी मृत्यु होजायेगी ॥१४८॥ श्रीहरि के यह बात सुनकर यदि जाने की इच्छा हो तो चलो नहीं तो यहाँ पर आनन्द से रहो मेरा मन तो तुम्हारे चरणतल से बिन्दुमात्र चञ्चल नहीं होता है ॥१४९॥ अश्रुधाराक्रान्त नयन से गद्गद् स्वर से कान्ता वेशधारी निज कान्त श्याम सुन्दर जब उस प्रकार कहने लगे थे, तो सखीगण विस्मयान्वित होकर नीरव रही, तब अनुराग से अन्धीभूता श्रीराधा उनको प्रेम से इस प्रकार कही ॥१५०॥ हे श्यामल गोप किशोरी ! तुम्हें देखकर मेरा मन श्याम-सुन्दर के समान प्रीतिमय आचरण करना चाहता है। अभीतक तुम कहाँ रही, अनेक दिनों के बाद पुण्य से ही आज दर्शन मिला ॥१५१। तैल धारावत् अविच्छिन्न प्रवाह से स्मरण कर कृष्णवर्ण मनोहर सखी रूप में मेरे पास आई हो, यह अति सुन्दर है, मैं निःशङ्क चित्त से प्रीयतम को क्रोड़देश में स्थापन करूंगी ॥१५२॥ यदि इस प्रकार वेष भूषा से शोभित होकर मेरा हृदयेश्वर मेरी स्मृति में उदित होते हैं, तब तुम शिर में मयूर पुच्छ से निर्मित चूड़ा धारण कर

एह्येहि स्फुट नीलसरोरुहसुकुमाराङ्गि सखीमुपगूह ।
स्नेहोत्तरले मां हरिविवरप्रभवः शाम्यतु बत तन्तुदाहः ॥१५५
इत्युक्त्वासीद् वृषभानुसुता सपदिविवृद्ध प्रणयावशता ।
प्राण पति पुलकाञ्चितगात्रा परिरभ्यास्ते मुकुलितनेत्रा ॥१५६
अथ परिरभ्य हरिः परिचुम्बन्मुखमरसयदपि चाधरविम्बम् ।
कुचमुकुले नखर ङ्कुरवायी कृष्णऽभूत पुनरिति कुस्मायी ॥१५७
ज्ञातं ज्ञातमहो रस भरितं धूर्त मणे ! तव सकलं चरितम् ।
इति सहसित राधेरित हृष्टः कुञ्जगृहान्त सपदि प्रविष्टः ॥१५८

कलितयुवति वेशोमानिनीमेत्य राधाम् ।
हरिरनुनय काकु व्याकुलोक्ति प्रपञ्चैः ॥
सपदि सहजवृद्ध प्रीतिबद्धाङ्गसङ्गां
स जयति परिहृष्यन् गाढमालिङ्ग्य कान्तम् ॥१५९

बँसुरी बजाते हुये उस वेष से ही मुझ को सुखी कर सकोगी ।।१५३। यद्यपि श्रीहरि असंख्य भी अपराधाचरण कर, श्रीराधा उसको क्षमा करगी, तुम्हारे यह आश्चर्य वदन चन्द्र का सौन्दर्य ही मेरा यथा सर्वस्व का खरीद लिया है ॥१५४ हे सुजात नील कमलवत् कुमाराङ्गी ! आओ आओ इस सखी का आलिङ्गन करो यह कह कर वृषभानु नन्दिनी बढ़ती हुई प्रणय रस से अवश हो गई,एवं पुलकाञ्चित कलेवर से प्राण पति को आलिङ्गन कर नयन मूँद कर रही ॥१५५-१५६॥ तदनन्तर हरि भी उनको आलिङ्गन करके मुख चुम्बन करते करते अधर सुधा पान किए, कुच मुकुल में नखाराघात करते करते पुनर्वार कृष्ण मूर्त्ति को प्रकट कर ईषत् हास्य करने लगे ॥१५७॥ हे धूर्त शिरामणि ! अहा तुम्हारे रस भरित सब चरित्र हो जात गई, श्रीराधा की इस हास्योक्ति से हृष्टचित्त श्रीकृष्ण सहसा हो कुञ्ज गृह में घुस गए ॥१५८। श्रीहरि युवति वेष धारण कर मानिनी श्रीराधा के निकट आ गये थे, बहुविध अनुनय विनय काकूक्ति द्वारा कान्तामणि श्रीराधा का विवर्द्धिष्णु प्रीति भरित अङ्ग

अथ सहजोज्ज्वल भावोज्जृम्भः प्रियपालम्भित भुजपरिरम्भः ।
प्रकट तनुः स श्याम किशोर स्तन्मिलित श्चलितो रतिचोरः ॥१६०
तौ रसमूर्ती राधाकृष्णौ श्रीवृन्दावन रास सतृष्णौ ।
अति शुशुभाते मोहनवेशौ प्रतिपदविरचित केलिविशेषौ ॥१६१
गौर श्यामल मोहन मूर्त्ती निरवधि वर्धि मदनरसपूर्त्तौ ।
निरुपम नवतारुण्य प्रवेशौ रास विलासोचित वरवेशौ ॥१६२
वेणी चूड़ा रचित सुकेशौ मिथ उद्भववति मदनावेशौ ।
अरुण पीतपटवर परिधानौ दिशि दिशिविसरद् दीप्तिवितानौ ॥१६३
रति रतिनायक कोटिविलासौ मधुर विलोकपरस्परहासौ ।
मिथ आश्लेषित निजतनुदेशौ पुलक मुकुल कुलसततोन्मेषौ ॥१६४

सङ्ग को प्राप्त कर उनको निविड़ आलिङ्गन पूर्वक परितुष्टि होकर जग युक्त हो रहे हैं ॥१५९॥

सहज उज्ज्वल भावमय वह रति लम्पट श्याम किशोर प्रिया का भुज परिरम्भण प्राप्त कर युवति वेश को छोड़कर निज देह प्रकटकर दोनों मिलकर रास मण्डल के ओर चल दिये ॥१६०॥ श्रीवृन्दावन में रास रस के लिए तृष्णातीत वह रस मूर्त्ति राधा कृष्ण मोहन वेश से अतिशय शोभा का विस्तार करने लगे वे दोनों प्रतिक्षण में ही विशेष विशेष केलि विलास करने में प्रवृत्त हो गये ॥१६१॥ वह गौर श्याम मोहन मूर्त्ति युगल निरन्तर वर्द्धिष्णु मदन रस पूरित होकर अनुपम नव तारुण्य का उन्मेष रास विलासोचित अत्युत्तम वेश से सज्जित हो गए ॥१६२ वे दोनों सुन्दर केशों से वेणी एवं चूड़ा की रचना की है, परस्पर के मदनावेश क्रमशः उदित होने लगा, दोनों के परिधान में अरुण वस्त्र एवं पीत वर्ण के अत्युत्तम वसन दिक् दिक् में दीप्तिराशि का विस्तार कर रहे हैं ॥१६४॥ दोनों कोटि कोटि काम देव के विलास रस को प्रकाश कर रहे हैं। परस्पर के प्रति निरीक्षण से परस्पर मधुर हँस रहे हैं। निज तन को परस्पर के द्वारा आलिङ्गन करके रखे हैं । सदा ही उन दोनों के अङ्ग में पुलकावलि रूप अङ्कुर का उन्मेष दिखाई देता है ॥१६४॥

मिथ ऊरुविधकृत नर्मालापौ नव नव निर्मित केलीकलापौ ।
विविध भङ्गिगति विजित मरालौ नूपुर रसना क्वणित रसालौ ॥१६५
रुचिरान्दोलन सुभुज मृणालौ गल दोलायमानवरमालौ ।
मिथ उत्पुलक भुजा कलितांसौ सव्यतदन्यभुजाम्बुजवंशौ ॥१६६
मिथ ईक्षित मुखचन्द्र सहासौ श्रुतिपूरण निरतेरितवंशौ ।
द्रुत काञ्चन मरकत रुचिचोरौ सर्वादभूततम दिव्य किशोरौ १६७
नित्यमधुर वृन्दावन केलौ शुद्धमहारस पूर्ण गुणाली ।
कलित मुरज करताल सुवीणं नृत्यगीत वरवाद्य प्रवीणैः ।
राधाकृष्ण रसैक प्रणयैः सहितौ सुरसोल्लसितालिजनैः ॥१६८
मणिमय पेटिकान्तरुनिहितं रास विलासोपकरणजातम् ।
आदायाति हर्षभरभरिता स्तत् सेवैक परा अनुयाताः ॥१६९

परस्पर बहुविध नर्म परिहास रस रहस्यमय आलाप कर रहे हैं, नित्य नव नवायमान केली विलासादि का उद्भावन करते रहते हैं, विविध गतिभङ्गी को अङ्गीकार कर मराल को भी पराजित कर रहे है, एवं चरण में नूपुर एवं कटि में रसना रसाल ध्वनि कर रही हैं ॥१६५॥ दोनों के भुजमृणाल मधुर मधुर आन्दोलित हो रहे हैं, गलदेश में अत्युत्कृष्ट मालाओं को ले रही है वे दोनों पुलकाञ्चित बाहु से परस्पर के सव्य अन्य देश का अवलम्बन करके हैं, श्रीराधा के वाम हस्त में पद्म एवं श्याम के दक्षिण हस्त में वंशी शोभित है ॥१६६॥ परस्पर के मुख को देखकर परस्पर हँसते रहते हैं, श्याम वँसुरी बजाते हैं, श्रीराधा उसको सुनकर श्रवण को तृप्त कर रही है, एक ने तो गलित सुवर्ण वर्ण को ऊपर विजय लाभ किया है, तो दूसरे ने मरकत कान्ति को चोरी कर लिया है। यह दिव्य किशोर द्वय सर्वदा ही अद्भुत है ॥१६७॥ शुद्ध महाराग शृङ्गारपूर्ण गुणावलि भूषित यह युगल नित्य ही मधुर वृन्दावन में मधुर केली करते रहते हैं, मृदङ्ग करताल, एवं सुन्दर वीणा यन्त्र लेकर नृत्य गीत, वाद्य में कुशल राधा कृष्ण के रस का एक मात्र विस्तारकारी सुरस से उल्लासित सखीगण को साथ लेकर दोनों ने यात्रा की एवं निरतिशय

शुद्धोज्ज्वल प्रेमरसैक शक्ति
तद्वत् स्वरूपौ सुखसार राशी ।
तौ नः किशोरौ अतिगौरनीलौ
खेलायतां चित्रमनोज्ञलीलौ ॥१७०

गत्वा तावथ वृन्दारण्यं स्वगति पुरस्तादुत्सवशून्यम् ।
परिचरणोल्लसित व्रजयुवती मध्येरेजतुरद्भुतदीप्ती १७१
काश्चन चक्रुः पदसंवाहं काश्चनभेजुः सुरतोत्साहम् ।
काश्चनगन्धैर्व्यलिपन्परराः कण्ठे निदधुर्मालारुचिराः ॥१७२
चकुरथैका भ्रूकुटिविलासं विदधुः काश्चन रतिपरिहासम् ।
काश्चन मृदुमृदु विदधुर्व्यजनं का अपि चक्रुर्भूषारचनम् ॥१७३
नागवल्लिदलमुज्ज्वल चन्द्रं दत्तवती काप्यधिमुखचन्द्रम् ।
नवनवकामकलाविभावं व्यञ्जितवत्यः काश्चन भावम् ॥१७४

आनन्द पूर्ण युगल किशोर की सेवा निष्ठ दासीगण मणिमय पेटिकाके अभ्यन्तर में रासलीला के उपयोगी द्रव्य समूह को लेकर पीछे पीछे चलने लगी ॥१३८ १६३॥ विशुद्ध उज्ज्वल रस की शक्ति राधा एवं शक्तिमान् श्रीकृष्ण युगल रूप के देह गठन किए हैं, अतएव उसका ही सुख विनिमय राशी को दोनोंजन भोग कर रहे है । हमारे अतिगौर नीलात्मक किशोर द्वय विचित्र कामलीला परायण होकर खेल रहे है ॥१७० तदनन्तर उत्सव शून्य वृन्दावन मे उपस्थित हो गये, परिचर्या रस में मग्न व्रज युवतिगण के मध्य में दोनों अद्भुत कान्ति का विस्तार कर विराजमान हो गये ॥१७१॥ कोई तो पाद सम्वाहन करने लगी, कोई तो सुरत मङ्गल करने लगी, किसी ने विविध गन्ध द्रव्य द्वारा अङ्ग लेपन किया, अन्यान्य गोपीगण दोनों के कण्ठ में मनोहर माल्य प्रदान किये ॥१७२॥ किसी ने कटाक्ष पात किया, अपर गोपीयों ने भूषण की रचना की ॥१७३॥ किसी गोपी ने दोनों के मुखचन्द्र में ताम्बूल एवं उज्ज्वल कर्पूर प्रदान किया, अन्यान्य गोपीगण नव नवायमान काम कला का आविर्भाव सूचक भाव की

मृदुमृदुवीणाद्यतिनिरवद्यं वादितवत्यः काश्चन वाद्यम् ।
काश्चन सजगुः रसनानुरागा, मधुरमुदञ्चितपञ्चमरागाः ॥१७५
बहुविध हस्तक गतिलीलाभिः काश्चन ललितानृत्यकलाभिः ।
प्रिययोरुपरि सुपुष्पच्छत्रं काश्चन जगृहुः परमविचित्रम् ॥१७६
वरनागरिका वरनागरयो रुन्मदमदनरसप्रहसितयोः ।
प्राप्य तयोः करपद्मात् प्रमदाः कमपि प्रसाद व्यलसन् प्रमुदाः ॥१७७
छित्वा छित्वा वाटक भेदान् ललितलवङ्ग क्रमुकच्छेदान् ।
रसिक मिथुन मुपयाजितवत्यः काश्चन काश्चन पतद्ग्रहवत्यः ॥१७८
कर्पूरादि सुवासित शीतं भृङ्गारेणसलिलमुपनीतम् ।
कृत्वाप्रियामिथुनेन निपीतं स्वं विदधुः काश्चन सुप्रीतम् ॥१७९
आपुः काश्चन कण्ठगमाला स्वभरणानि च का अपि बालाः ।
वरताम्बूल सुविटकमन्या श्चर्वितमेव तु काश्चन धन्याः ॥१८०

व्यञ्जना की ॥१७४॥ किसी ने वीणा वादन किया, किसी ने रसानुराग से पञ्चमराग का आलाप मधुर स्वर से किया॥१७५॥ किसी ने बहुविध हस्तक गतिलीलादि नृत्य कला का प्रदर्शन किया, किसी ने प्रियतम युगल के ऊपर परम विचित्र सुन्दर पुष्पछत्र धारण किया ॥१७६॥ अत्युत्तम नागरी एवं अत्युत्तम नागर उन्मद मदन रस से हास्य करते है, उनके हस्त कमल से प्रसाद प्राप्तकर प्रमदागण प्रचुरतर आनन्दित होकर विराजित हैं॥१७७॥
किसी ने उपादेय लवङ्ग गुवाक खण्ड युक्त बहुविध ताम्बूल वीटिका का आस्वादन कराया, अपर किसी ने पिकदानी हाथ में लेकर खड़ी हो गई ॥१७८ किसी ने भृङ्गार को भरकर शीतल जल ले आई एवं प्रियतम युगल को जलपान कराकर आपने को खुसी किया ॥१७९॥ किसी व्रजबाला ने कण्ठस्थित प्रसादी माला किसी ने सुन्दर आभूषण प्राप्त किया, किसी ने स्नेहालिङ्गन प्राप्त किया, किसी ने कर धारण से आनन्द लाभ किया किसी गोपी कर्ण कथा सुनकर खुसी हुई तो कोई गोपी प्रशंसा सुनकर आनन्दिता हो गई ॥१८०॥

एकाः स्निग्धालिङ्गनमापु कण्घृत्यैव काश्च पर्यापुः ।
काश्चन कर्ण कथाभि मुंदिना काश्चित् ववचनश्लाघनमहिताः १८१
अथ सुरतोत्सुकरामावृन्दं दुर्धरकामार्त्तिभिरत्यन्धम् ।
दृष्ट्वात्युत्कट भावविकारं राधा निजपतिमवददुदारम् ॥१८२
अबला प्रियविषमस्मरबाधास्तां तु न वितसेत् त्रुटिमपि राधा ।
तच्छृणु कथमाम्येक मुपायं रमयासि येन युवतिसमुदायम् ॥१८३
कान्तकदाचिन्मम सङ्कल्पः समभूदकृतविचारोऽनल्पः ।
बहुरूपं त्वां रमयितुमुभि बहुभीरूपं बहुविधरतिभिः ॥१८४
अत्युत्कण्ठाभरभावनतस्त्वन्मद्रूप स्तामोदयतः ।
केवल ऊरुवैदग्ध्या विहिता मनस पूर्त्तिः काप्यत उदिता ॥१८५
प्रिय सखी ! कि नु करोषीत्युक्त्वा गात्रे मम कराघातं कृत्वा ।
सख्या भग्नसमाधिर्नयने, उन्मील्याहसमखिलाकलने ॥१८६

अनन्तर दुर्धर्ष काम पीड़ा से महान्ध सुरतोत्सुका रमणीवृन्द को उत्कट भाव विकारशील देखकर श्रीराधा ने निज नायक श्रीश्यामसुन्दर को सरलभाव से बोली ॥१८१–१८२॥ हे प्रियतम ! ये अबलागण विषम काम पीड़ा से व्यथित हो रही हैं, राधा उनसब को बिन्दुमात्र भी कामपीड़ा देना नहीं चाहती है, अतएव एक उपाय बोलती हूं, सुनो ! इस से युगपत् सब युवतियों के साथ रमण कर सकोगे ॥१८३॥ हे प्राणकान्त किसी समय बिना विचार से ही मेरा एक संकल्प हृदय में जग उठा था, कि-बहुविध रूप प्रकटनकारी तुम्हें बहुविध रति की नायिका के साथ अनेक प्रकार से रमण कराऊँगी ॥१८४॥ अति उत्कण्ठा से तुम्हारे और मेरी रूप राशि को प्रकट कर बहुल वैदग्धी के साथ केलि विलासादि का समाधान मैंने किया है, एवं इस से ही मेरा यह अनिर्वाच्य मनोवाञ्छा पूर्ति का उदय हुआ है ॥१८५॥ उस समय मुझे समाधि मग्न देखकर "हे प्रिय सखी ! क्या कर रही हो" ? ऐसा कहकर किसी सखी मेरा अङ्ग में कराघात करने से मेरी समाधि टूट गई थी, अनन्तर निखिल प्रस्ताव

सम्प्रत्यपि च मुहूर्तं ध्यात्वा, कुर्वे बहुरूपं रमयित्वा ।
रूपं स्तैरभिरूपैर्नागर, गोकुल युवति गणैस्त्वं विहर ॥१८७
शैशव इष्ट योगमायादात् मम संकल्पसिद्धि मतिरसदा ।
त्वमनन्यानुरागपतिरभवस्तद्वदस्तु सुखसीमानुभवः ॥१८८
अथचित्रेक्षण कुतुकिनि रमणे, स्मयति च अथ रहस्या लगणे ।
किञ्चित् स्मितरुचि मोहन वदनं दधौराधामुकुलित नयनम् ॥१८९
प्रकटाः प्रियतममूर्त्तौ मधुरा दृष्ट्वा लोभादतिकामधुरा ।
कृत्वा स्वमपि च सा तावन्तं व्यसृजच्चुम्बितपरिरब्धं तम् ॥१९०
अथ कलितप्रियपाणि सरोजा राधातीव्रविवृद्धमनोजा ।
मञ्जुलकुञ्जविलोकनकपटाद् गहनवनं सहसैवप्रविष्टा ॥१९१
स बहुरूपहरिररमत ताभिः प्रथमोज्ज्वलरसरभस युताभिः ।

अभी भी मैं मुहूर्त काल ध्यान कर रमणीय बहु रूप का प्रकटन कर रही हूँ। हे नागर ! तुम भी (समाधि में दृष्ट) उस प्रकार अनेक मनो मोहन रूप का प्रकाश कर गोकुल युवतियों के साथ बिहार करो ॥१८७॥ शिशु काल में अतिरसमयी इष्ट देवता योगमाया ने मुझे संकल्प सिद्धि का वर प्रदान किया है, तुम अनन्यानुरागमय पति (नागर) को प्राप्त करो एवं उस प्रकार से ही तुम्हारी सुखैक शेष की उपलब्धि हो ॥१८८॥ तत् पश्चात् राधा रमण विचित्र (रासरंग) दर्शन के लिए कौतुकी होने पर एवं एकान्त में सखीगण भी हँसते रहने के कारण राधा ईषत् मृदु मधुर हास्य शोभित मोहन वदन से नेत्र को मूँद कर ध्यान करने लगी ॥१८९॥ तब आपने प्रियतम की अनेक मधुर मूर्त्ति राजिका प्रकटन को देखकर लोभ से अति कामोन्मत्ता होकर अपने को भी उतनी मूर्त्तियों में प्रकाश किया एवं उस उस स्वरूप को प्रियतम द्वारा चुम्बित एवं आलिङ्गित कराया ॥१९०॥ अनन्तर प्रियतम के कर कमल को पकड़ कर श्रीराधा निरतिशय कामावेग से मञ्जुल कुञ्ज दर्शन के छल से सहसा गहन बन में घुस गई ॥१९१॥ तब वह बहु रूपी हरि उस आदि उज्ज्वल रसरभस युक्त राधा के काय व्यूह, राधा गोपीयों के साथ रमण करने

रसिकशिरोमणिरतिरसिकाभि र्मधुरिमराशिरधिकमधुराभिः ॥१९२
प्रथमसमागमह्रीभयबलिता दूरात्तूष्णीमास्थितविनताः।
काश्चननिन्ये शयनमुदारः सानुनयंकृतबाहुप्रसारः ॥१९३
किमपि करोमि न ते भजशयनं स्वजने किमिदमहोसङ्कुचनम्।
पायय किमपि वचोऽमृतमतुलं, स्वीकुरुगन्धमाल्यताम्बूलम् ॥१९४
कामपि धन्यामित्यनुनीय, स्मितरुचिरां सहसानीय।
शयनं नेति सगद्गद्वचनामलमाश्लिष्याचुम्बत् प्रमनाः ॥१९५
निद्राव्याज विमुद्रित नयनं वदनं चुम्बितमन्याः शयनम्।
प्राप्ताः स्वस्य हसन् पुलकः पर्यरभत नव नागर तिलकः ॥१९६
नेति वचन रचना अपि चान्याः कर कमले धृतवानतिधन्याः।
आनियाङ्कमसौ कुसुमाली मरचयदलकचये बनमाली ॥१९७

में प्रवृत्त हो गए ! तब रसिक शिरोमणि के साथ रति रसिकागण का मिलन हुआ, मधुरिमराशि के साथ अधिकतर माधुरी धारिणी का सङ्ग हुआ ॥१९२॥ किसी किसी रमणी गोपी प्रथम समागत में लज्जा एवं भय के कारण दूर में निर्वाक् एवं निष्पन्द होकर अवनत मस्तक होकर रही, यह देखकर मोहन कृष्ण बाहु प्रसारण द्वारा अनुनय कर उन सबों को सेजपर ले गए ॥१९३॥ तुम्हारे कुछ नहीं करेंगे, तुम सेजपर सो जाओ, अहो ! निजजन के पास ऐसा सङ्कोच क्यों करती हो, एकबार वाक्यामृत पान कराओ, यह अनुपम गन्ध माल्य ताम्बूलादि ग्रहण करो ॥१९४॥ इस प्रकार किसी धन्या गोप किशोरी का अनुनय किए, अनन्तर उसकी मृदु मधुर हास्यमय रमणीय मूर्त्ति को देखकर उसको सहसा सेज पर ले गए, वह गद्‌गद् स्वर से ना ना कहकर असम्मति प्रकट करने पर भी श्यामने आनन्दित होकर उस को आलिङ्गन चुम्बन प्रदान कर कृतार्थ किया ॥१९५॥ अन्यान्य गोप बालागण श्याम की शय्या के पास आकर श्याम को निद्राछल से मुद्रित नयन देखकर चुम्बन करने लगीं नव नागर तिलक ने उसी समय हँस हँस कर पुलकायित होकर उन सब को परिरम्भण किया ॥१९६॥ अपरापर व्रजाङ्गनागण 'ना' कह कर निषेध करने पर भी

काश्चन हारलतार्पण कपटादुन्मर्दकरमृदितस्तनमुघटा ।
मुखमपि दुःखमिवाभिनयन्ती वीक्ष्य हरिः स जहासलसन्तीः ॥१९८
कुचमुकुलादीकृतनखलिखनः पीताधरदलकृतरददलनः ।
तासामुत्तम्भित पुरुमदन स हरिरखेलच्चुम्बितवदनः ॥१९९
सहसा नीविबन्धनमिलितं सम्भ्रमयुतयुवतिकरविधृतम् ।
अतिदुर्धरमदनात्युत्तरलं तदतिविरेजे हरिकरकमलम् ॥२००
रेमे मधुपति रथललनाभि र्बहुविधसुरतबन्धरचनाभिः ।
रतिरसरभसोल्लसिततदूरुः स्पर्शन बहु परिपाटी चारुः ॥२०१
उच्छृङ्खलं रतिखेला श्रान्तः प्रोन्मदरति रभसोद्यतकान्तः ।
तन्मुख वीक्षण कृत परिहासः स्मेरमुखोऽभोवत सविलासः ॥२०२

वनमाली उनसब को गोदी में बैठा लिए एवं उनसब के कुञ्चित केशदाम को पुष्प हार से सज्जित किए ॥१९७॥ किसी किसी गोपी के हारलतादान करने के छल से उन्मत्त हस्तसे श्याम ने उनके स्तन कमल द्वय का मर्दन किया। स्व मुख में भी वेसब दुःखवत् अभिनय करने लगी, यह देखकर श्रीहरि ने हँसा ॥१९८॥ उनके कुचमुकुलों में नखराघात एवं अधररसपान पूर्वक अधर में दन्ताघातकरके महाकाम को प्रबुद्ध कर चुम्बित वदन श्रीहरि खेलने लगे ॥१९९॥ अति दुर्धर्ष मदनावेश से परम चञ्चल श्रीहरि के कर कमल सहसा नारियों के नीवीबन्धन खोलने मे प्रवृत्त होने पर सम्भ्रम युक्त गोपीगण ने तत्क्षणात् उसको पकड़ लिया ॥२००॥ तब अनेक विध रति बन्ध रचना कर गोप ललनागण के साथ मधुपति रमण करने लगे। रति रस प्राचुर्य से उल्लसित होकर उन के ऊरुदेश उस समय गोपीगण के स्पर्श से बहु परिपाटि के साथ सुचारुता को प्रकट किए ॥२०१ अमर्याद रति खेल से परिश्रान्त एवं प्रोन्मद मदनावेश में निरत होकर भी रमणीय हरि उन सब के मुख को देखकर परिहास करने लगे। उन के मुख में मृदु मधुर हास्य था, प्रमदागण के साथ विलास कर आपने आमोद प्राप्त किया ॥२०२॥

इत्थं विहरति राधा रमणे, बलदभिमाने युवति विताने।
तानि पिधाय स्वकरूपाणि क्वापि विजह्रे राधाजानिः ॥२०३

आनीय गोपतरुणीर्मुरलीरवेण
राधामपि प्रचुर काकुभिरागमय्य।
तासां स्वकल्प रतिसन्ततिजाभिमानं
शान्त्यै कृपानिधिरथ प्रिययैक आसीत् ॥२०४

कृष्णमदृष्ट्वा गोप्योऽनवधौ, सपदि निमग्नाः शोक पयोधौ।
हा नाथेति व्याकुल वचना श्चेरुः परितो विह्वल करणाः ॥२०५
चिन्मयमन्तरुदितहरिरूपं मूर्त्तमिवाच्युतसुरतस्वरूपम्।
वृन्दाविपिमलतातरुवृन्दं ताः पप्रच्छुर्निजसुखकन्दम् ॥२०६
भो अश्वत्थप्लक्षवटा वः किं दृष्टोहरि रानतभावः ?
सहि न श्चोरित हृदयो यातः प्रेमहसित दृक्शर संघातः ।२०७

श्रीराधा रमण, इस प्रकार विहार रत होने पर युवतिगण के चित्त में महा अभिमान उदित हुआ। यह देखकर राधानायक, निज प्रकाश मूर्त्ति समूह को अन्तर्हित करके अन्यत्र कहीं पर विराजित हो गए ॥ ॥२०३॥ मुरलीरव से गोपबालागण को बुलाकर एवं प्रचुरतर अनुनय से श्रीराधा को लाकर गोपीगण के रति राशिजात अभिमान को प्रशमित करने के लिए कृपानिधि कृष्णचन्द्र तब प्रियतमा राधा के साथ अन्यत्र विचरण करने लगे ॥२०४॥ श्रीकृष्ण के अन्तर्धान से गोपीगण तत्क्षणात् असीम शोक सागर में निमग्न हो गईं। 'हा नाथ हा नाथ' कहकर व्याकुल भाव से बिलबिलाकर हरि को इधर उधर ढूंढने में लग गईं ॥२०५॥ उनके हृदय में चिन्मय हरिरूप उदित हुआ, उन्होंने मूर्त्त सुरत की भांति श्रीहरि की मूर्त्ति को प्रत्यक्ष किया एवं वृन्दाविपिन के लतातरुवृन्द के निकट उनकी कथा पूछने लगीं ॥२०६॥ हे अश्वत्थ प्लक्ष ! पापड़ी एवं वट वृक्षगण ! तुम सबने क्या विनम्र मूर्त्ति श्रीहरि का दर्शन किया है ? प्रेममय हंसी से तथा नयन बाण के आघात से हमारे हृदय की चोरी कर वह भाग गया है ॥२०७॥

भो भो श्चम्पक केशरनाग, प्रियकाशोकवकुलपुन्नाग !
जम्बुकुरुवकपनसरसालक्रमुक कुटज वकतालतमाल ॥२०८
अहह महान्तो यूयं सदया, वयमपि विरह व्याकुलहृदयाः ।
कथयत मानवतीहृतमानस्मितवदनस्य हरेः पदवीं नः ॥२०९
अयि सखि माधवि मालति मल्लि जातियूथि नीलिनि शेफालि ।
मा गापयत गोपकुलतिलकं कृतकर सस्पर्शं किलरसिकम् ॥२१०
अयि कल्याणि तुलसि हरिचरणा, म्बुजदयित त्वं कुरु नः करुणाम् ।
क्वास्ते वद नो जीवित बन्धुः सकल कलानिधिरतिरससिन्धुः ॥२११
अथ काश्चन हरि लीला ललिता, अनुकृतवत्यो मिथआवलिताः ।
अत्यावेशाद् विस्मित देहाः काश्चन भेजु र्मधुरतरीहाः ॥२१२
द्रुमलतिकाः पुनरपि पृच्छन्त्यः, कुञ्जं कुञ्ज मुहुरभियान्त्यः ।
ददृशुः क्वचपद पङ्क्ति ललितां ध्वजवज्राङ्कुश पद्मादियुताम् ॥२१३

हे चम्पक, केशर, नाग, प्रियक 'कदम्ब' अशोक, वकुल, पुन्नाग जामुन, कुरुवक पनस (कटहर) रसाल , क्रमुक (सुपाड़ी) कुटज वक ताल, तमाल, वृक्षगण ! तुमसब सहृदय व महान्त हो, हमसब विरह से व्याकुल है' कहो ? मान वतीयों के मान को चोरीकर सुन्दर हास्य शोभित वदन हरि कहाँ चले गये ॥२०८-२०९॥ अयि सखि ! माधवि, मालति, मल्लि, जाति, यूथि, नीलिनि (नील पुष्पिका) शेफालि ! तुमसब ने उनके कर स्पर्श प्राप्त किए हो, इसलिए गोपकुल तिलक रसिक श्याम सुन्दर को गोपन न करो ॥२१०॥ अयि कल्याणि तुलसि ! हरि चरण कमल प्रिये ! तुम हमारे प्रति करुणा करो, सकल कलानिधि रतिरस सिन्धु हमारे जीवित वन्धु कहाँ है कहो तो ॥२११॥ अनन्तर कोई कोई गोपी परस्पर मिलित होकर हरि की मनोज्ञ लीला कदम्ब का अनुसरण करने लगी, वेसब महाआवेश से देह विस्मृत हो गई, कोई कोई तो उनकी मधुर लीलावलि गजन गाने लगी ॥२१२॥ पुनर्वार वृक्ष लताओं से कृष्णवार्त्ता को पूछ पूछ कर मुहुर्मुहु कुञ्ज कुञ्ज में ढूंढते ढुंढते एकान्त स्थान में ध्वज वज्र अङ्कुश, पद्मादि युक्त परम सुन्दर श्रीकृष्ण पदाङ्क पङ्क्ति को

ज्ञात्वा हरि पदचिह्नं रामा मृगयन्त्यस्तं रत्यभिरामाः ।
अन्य अपि पदलक्ष्मीश्रेणी ददृशुरिवाद्भुतमधुरिमवेणीः ॥२१४

श्रीराधाया इति निर्धारं कृत्वा बहुविध विहित विचारम् ।
ऊचुस्तत्पदपङ्कजयुगले बलदतिभावारसभर बहुले ॥२१५

अन्तर्हिते दयिता सह कृष्णचन्द्रे
गोप्योमहानिविड़शोकतमोभिरन्धाः ।
पृष्ट्वा मुहुर्द्रुमलतया अनुकृत्य लीलां
दृष्ट्वा पदानि तु तयोः समवर्णयं स्ताः २१६

कृष्ण पदाङ्कं पश्यत कामं राधापदलक्ष्म्याप्यभिरामं ।
सख्या इदं खलु दर्शित मनया व नतमास्वतिनिर्भरकृपया २१७

प्रेष्ठतमांसार्पितभुजवल्लिः परमोज्ज्वलरसकल्पकवल्लिः ।
राधाध्रुवमिह लीलागतिभिश्चलितामृदुमृदु नुपुरहतिभिः ॥११८

गन्तुमशक्तामथ तु कान्तां स्कन्धे कृत्वा चपल व्रजन्ताम् ।

उन्होंने देखा २१३ रमणीगण हरिपद चिह्न का परिचय प्राप्तकर, उक्त पद चिह्न समूह को देख देखकर हरि का अन्वेषण करते करते आश्चर्य माधुरी का धाम अति सुन्दर अन्यान्य पदचिह्न श्रेणी को भी देखी थीं २१४। द्वितीय पदचिह्न समूह श्रीराधा के ही हैं, इस प्रकार विचार पूर्वक निर्धारण कर रमणीसमूह बहुत उक्त पाद पद्म युगल के प्रति अनुराग से कहने लगीं ॥२१५॥ कृष्णचन्द्र दयिता राधा के सहित अन्तर्हित होनेपर गोपीगण महाघन शोकान्धकार में अन्धीकृत होकर मुहुर्मुहु वृक्षलताओं को पूछ पूछ कर, एवं लीलानुकरण कर युगल के पदचिह्न राजि को देखकर इस प्रकार वर्णन करने लगीं ॥२१६॥ हे सखीगण ! श्रीराधा के पदचिह्न शोभा सहित श्रीकृष्ण के नयनाभिराम पदाङ्क समूह का दर्शन करो। दीनता हमारे प्रति अति निर्भर (प्रगाढ़) कृपा द्वारा यह ही समुचित हो रहा है ॥२१७॥ हे प्रेष्ठतम श्याम के स्कन्ध देश में भुजलता को स्थापन कर परमोज्ज्वल रस कल्पलता राधा निश्चय ही यहाँ पर लीलागति को अङ्गीकार कर मृदु मधुर नूपुर ध्वनि के साथ चले हैं ॥२१८॥ यहाँ पर चञ्चल

उदवहवति पुलकित सर्वाङ्गः प्रोज्जृम्भित रतिरङ्गतरङ्गः ।।२१६

स्कन्धाववरोप्याथ तु कान्तां प्रार्थित पुष्पां चलवलकान्ताम् ।
प्रेयस्यर्थं हरिरुल्लसितः कुसुमान्यवचितवानथ परितः ।।२२०

उपविश्याथ स उत्पुलकोरु द्वयमध्यगदयितामतिचारुः ।
गुम्फितवान् कुसुमं वरवेणी रचनं चान्याभरणश्रेणीः ।।२२१

सख्यः पश्यत मञ्जुलकुञ्जे ध्रुवमिह गुञ्जनमधुकर पुञ्जे ।
प्राविशतां तौ सुरत सतृष्णौ मदकलमूर्ती राधाकृष्णौ ।।२२२

पश्यत पश्यत किशलयशयनं सफलीकुरुताद्यैव च नयनम् ।
सुरतविमर्दाद्विलुलितमोक्षं त्रुटित कुसुम कञ्चुकशिखिपक्षाम् २२३

इत्थं परममहारसधाम्नो बहुविध पदकंबहुमधुरिम्नोः ।
ताः समलङ्कृत सुस्थल जातं वीक्ष्यवीक्ष्य मुखमापुरमातम् ।।१२४

श्रीराधापि स्वपदंक रसा बुध्वा ता अतिकरुणा विवशा ।
वष्टेवाह प्रियमति कृपणं स्वं चल नहि मे शक्यं चलनम् ।।२२५

कटाक्ष शालिनी कान्तामणि राधा चलने में अक्षम होने पर रतिरस तरङ्ग व्याप्त पुलकाचित अङ्ग श्याम सुन्दर राधा को अपने कंधे से वहन किये हैं ।।२१६।। यहाँ पर चञ्चलालक शोभिता श्रीराधा पुष्प चाहने से उनको कंधे से उतार कर उल्लसित हरि प्रेयसी के लिए इतस्ततः कुसुम राशी चयन किये थे ।।२२०।। पश्चात् परम रमणीय श्याम बैठ गये, उच्च पुलकावलि शोभित ऊरुद्वय के मध्य में दयिता राधा को बैठाकर कुसुम माल्य से अत्युत्तम वेणी एवं अन्यान्य बहुविध अलङ्कार प्रस्तुत कर दिये हैं ।।२२१।। हे सखीगण ! देखो ! देखो मधुकर पुञ्ज गुञ्जरित यह मञ्जुल कुञ्ज में वह सुरत सतृष्ण एवं मदकल मूर्ति श्रीराधा कृष्ण प्रवेश किये हैं ।।२२२।। देखो देखो, वह किशलय निर्मित शय्या है, आज ही तुम सब नयनों को सार्थक करो ! वह सुरत विमर्दन से स्रस्त विस्रस्त है, एवं कुसुम, कञ्चुक शिखि पिच्छ भी छिन्न भिन्न हैं ।।२२३।। इस प्रकार परम रसमय बहु मधुरिमाशाली युगल किशोर के बहुविध पदाङ्क द्वारा समलङ्कृत सुन्दर स्थान को देख देखकर वे सब आनन्दित आनन्दित होगई २२४ उस समय श्रीराधा भी निरतिशय करुणा के उद्रेक से विह्वला होकर

भीत भीत इव मृदुमृदु वदति स्कन्धं मम चिरमारोहेति ।
आक्षिपदेव रचित बहुलीलं सा निजपतिमपि सत्वरशीलम् ।।२२६
स चतुर चूड़ा मणिरालक्ष्य प्रेयस्या हृदगतमविलक्ष्य: ।
तत् क्षणमभवत् सा तु तदेव प्राप्तवती खलु मूर्च्छनमेव।।२२७
हरि रपि प्रकट: पुलकयुताभ्यां तामुत्थाप्यालिङ्ग्य भुजाभ्याम् ।
अकृत तदुक्त: पुनरन्तर्धि विहिततदङ्गस्पर्शासमृद्धिम् ।।२२८
दृष्ट्वा तामथ निज जीवातुं दीनतमामिव पृष्ट्वा हेतुन् ।
श्रुत्वा तन्मुखत: स्वहितार्थी वाचस्ता अभवस्तु कृतार्था: ।।२२६
स्व स्वामिन्या पुनरपि सहिता: कालिन्दीये पुलिने याता: ।
द्रष्टुं राधासहितविहारं सजगुरार्ता: कृष्णमुदारम् ।२३०
श्रुत्वाबहुविधकातर वचनं तासां राधाप्रणयारचनम् ।

उन सब को निज पादपद्म के एकान्त रसाश्रिता जानकर अतिदीन प्रियतम को जैसे रुष्ट होकर ही बोली, 'तुम चलते रहो, मैं चल नहीं सकती हूँ' ।।२२५।। तब श्याम भीत सन्त्रस्त होकर ही जैसे धीरे धीरे कहने लगे-कुछ देर के लिए मेरे कंधे में ही चढ़ जाओ, बहुविध लीला रचना कारी निज प्रियतम को त्वरान्वित होते देखकर श्रीराधा तब फटकारने लग गई ।।२२६।। चतुर चूडामणि कृष्ण प्रेयसी का भाव को समझ कर तत् क्षणात् आत्म गोपन कर गए, श्रीराधा भी उसी समय मूच्छिता हो गई ।।२२७।। हरि भी उसी समय पुनर्वार प्रकट होकर पुलकान्वित बाहु युगल द्वारा प्रिया को आलिङ्गन करके उठा लिये । श्रीराधा उनको कुछ कहने से ही हरि निज अङ्ग स्पर्शज सुख समृद्धि को दान करके ही पुनर्वार अन्तर्धान कर गये ।।२२८।। अनन्तर गोपीगण निज जीवितेश्वरी राधा को दीनतमा की भाँति देखकर कारण पूछकर, उनके मुख से आनु पूर्वी मङ्गलमय वृत्तान्त को सुन कर खुश हो गई २२६।। निज स्वामिनी राधा के साथ वे सब मिलकर कालिन्दी पुलिन में आगई, एवं राधा के साथ विहार दर्शन की लालसा से मनोज्ञ कृष्ण सङ्गीत को गाने लगीं ।।२३०।। श्रीराधा की प्रीति से गोपीगण द्वारा सुन्दर रूप से रचित बहुविध

आविरासहरिरतुलविलासः प्रमदासदसि सुधारसहासः ॥२३१

राधया सहजवत्सलात्मना
स्वीकृते व्रजविलासिनी गणे ।
स्वात्मभावकृतभाववैभवैः
प्रादुरास रसिकेन्द्रशेखरः ॥२३२

काचित् सुवलितललितप्रकाण्डं स्वांसे न्यधितकृष्णभुजदण्डम् ।
काचन भुवि पतितातिप्रणया चरणमधृतनिजवेणीलतया ॥२३३
तप्ता हरिपदपङ्कजयुगलं काचन निदधावधिकुचमुकुलम् ।
अन्या निमिषितनेत्रयुगेन प्रियमुखमपिवत्तर्षभरेण ॥२३४
अपरा पुनरपगमनाद् भीता, करयुगलेन प्रणयपरीता ।
श्रीहस्ताम्भोरुहमतिरुचिरं समधृतनागरमौलेः सुचिरम् ॥२३५
काऽपि विलोचनरन्ध्रेणालं कृत्वा हृदि परिरभ्य रसालम् ।
योगीवास्ते परमानन्दामृतह्रदमग्ना चिरमस्पन्दा ॥२३६

कातर वाक्य को सुनकर अतुल विलासी अमृत रसमय हास्य शोभी श्रीहरि प्रमदा समाज में आविर्भूत हुये ॥२३१॥ सहज वत्सल स्वभावा राधा व्रजाङ्गनागण को अङ्गीकार करने पर रसिकेन्द्र चूड़ामणि स्वात्मरति स्वात्मक्रीड़ होकरभी भाव समृद्धि को प्रकट कर उनके सम्मुख में आविर्भूत हो गये ॥२३२॥ किसी रमणी सुवलित, ललित, विशाल कृष्ण भुज दण्ड को अपनी कंधे में रखली, किसी ने अति प्रणय से दण्डवत् गिरकर निज वेणी लता द्वारा उनके चरणों को बांधा। अपर किसी ने निमीलित नयनों से सतृष्ण होकर प्रियतम के मुख चुम्बन करने लगी ॥२३३-२३४॥ पुनर्वार भाग आयेंगे सोचकर डर डर से अन्य गोपाङ्गना प्रीति से अपने हाथों से नागर मणि के मनोहर हस्त कमल को देरतक पकड़ रखी थी ॥२३५ किसी युवति ने रसमय श्याम को नयन द्वारासुन्दर रूप को हृदय में स्थापन कर आलिङ्गन किया, एवं योगीजन की भाँति परमानन्द रस में मग्न होकर अनेक क्षण तक स्तब्ध होकर रह गयी ॥२३६॥

श्रीराधा रसपोषण निरता स्ततसुखसिन्धुनिमज्जनमुदिताः ।
प्रियपो र्लीलां गोरयुधस्य दिचत्रतरामवतारितवत्यः ॥२३७
स हरिर्व्रजनवयुवतिसमाजे, तदुरु निचोलोदरिसरेजे ।
साङ्गसङ्गनिजकान्तसहितस्तासामास सपर्यामुदितः ॥२३८
बहु वागभङ्गया व्रजनव सुदृशां सहजप्रेमविवेचकमनसाम् ।
प्रीतः स्वारसिकं निजनाव प्रकटितवानथ विरहाभावम् ॥२३९

व्रजाङ्गनाभि र्मिलितः स कृष्णः
श्रीराधयातीव विराजमानः ।
तासामुरुप्रेमकथाभितृप्तो,
रासोत्सवायोल्लासितो बभूव ॥२४०

अथ कर्पूर पूर रुचिरुचिरे यमुनालहरी शीकरशिशिरे ।
उन्मद मधुकर कोकिलकीरे बहुदतिपरिमलमलयसमीरे ॥२४१

गोपरामागण श्रीराधा के रस पोषण में निरत होकर उनके सुखसिन्धु में निमज्जित होकर खुश हो गई, एवं प्रियतम युगल की विचित्रतर लीला की अवतारणा करने लगी ॥२३७॥ व्रजवनकी युवति के समाज में वह हरि आसन रूप में रक्षित नारियों की चून्दरीयों में बैठ गये, एवं कान्ताओं के साथ भीड़कर बैठने से कान्ताओं ने हरि की खुब सेवा की ॥२३८॥ सहज प्रेम विचारज्ञा व्रजनव युवतिगण के बहुविध भङ्गी पूर्ण वाक्यों को श्रवण कर श्रीहरि आनन्दित हो गये। और सम्भोग रसमय स्वारसिक और ललित भाव को प्रकट किए ॥२३९॥ व्रजाङ्गना के साथ मिलित श्रीकृष्ण राधा के साथ मिलित होकर अतिशय शोभित हो गये। उन सब के बहुविध प्रेमालाप से अतिशय तृप्त होकर रासोत्सव को सम्पन्न करने के लिए उल्लसित हो गए ।२४०
अनन्तर कर्पूर चूर्ण की भांति मनोज्ञ यमुना पुलिन का दर्शन किए, वह पुलिन यमुना तरङ्ग स्थित जलकण से सुशीतल, मलय पवन द्वारा सुगन्धित, नव करव पद्मादि द्वारा मण्डित था, केली विलासादि

परितः स्फुटनवकैरवनलिने विपुल कलिन्दसुतावरपुलिने ।
अद्भुत कल्प तरुभिरति सुभगे केलि सुसाधनवर्षिभिरनघे ॥२४२
बहुदीपिनि विवि शारवचन्द्रे पररसभाजि चराचरवृन्दे ।
द्राघीयसि तद्रजनीयामे धुन्वति धनुरद्भुत नवकामे ॥२४३
सुरनरगन्धर्वाद्यै वलिते निर्मितगीत सुवाद्यैः ।
नभसि रचित पुरु चित्रवितानै, विलसित बहुविधदिव्यविमाने ॥२४४
सङ्गीतकपरपारगतानि बहुविधनृत्य कला तुलिताभिः
गौरतनुच्छवि भरित हरिद्भिः कृष्ण सुधाब्धि प्रीतिसरद्भिः ॥२४५
नाट्योचितभूषणवसनाभिः कटितट गाढबद्धरसनाभिः ।
हर्षोत्पुलकिततनुलतिकाभिश्चारुणनवकञ्चुलिकाभिः ॥२४६
जघनान्दोलितवेणिलताभिः रत्नतिलकरञ्जितभालाभिः ।
सभणिकनकमौक्तिकनासाभिः भृंवुलकपोलविचलमलकाभिः ॥२४७

थी सामग्री से पूर्ण, एवं आश्चर्य कल्पतरुओं से अति सुन्दर एवं परम निर्मल था ॥२४१-२४२॥ आकाश में शरद चन्द्र निरतिशय उज्ज्वलालोक माला से उद्दीपित है, स्थावर जङ्गम उत्कृष्ट शृङ्गार रस से उन्मादित है। उस रात रजनी के चार प्रहर अधिकतर बढ़ गये एवं अद्भुत नव मदन ने पुष्प धनुष में बाण की योजना की ॥२४३॥ देव, नर, विद्याधर, गन्धर्वादि सम्मिलित होकर सुसङ्गीत, सुवाद्य करने लगे, आकाश में बहु विधि चन्द्रोत्रा रचित थे एवं बहुविध दिव्य विमान भी शोभित रहे ॥२४४ वे सब सङ्गीत विद्या में पारदर्शिनी थीं। बहुविध नृत्य कला में निरुपमा थीं, निज अङ्ग कान्ति से दशदिक् आलोकित कर रही थीं, एवं कृष्ण रस सुधासमुद्र की प्रीति नदी स्वरूपा थीं ॥२४५॥ वे सब नाट्योपयोगी वसन भूषण पहनी थीं, कटि में रसना बंधी थीं आनन्द से अङ्गों में पुलकावलि शोभित हो रही थी एवं सब रमणीगण अरुण वर्ण की कञ्चुलिका से शोभित थीं, जिनके नितम्ब देश में वेणीलता आन्दोलित हो रही थी, रत्न तिलक से ललाट पटल रञ्जित था, नासा में मणि सहित मुक्ता शोभित रही, एवं कपोल में कुञ्चित केश कलाप मृदुमन्द गति

मुक्ता पङ्क्तिद्युति दशनाभिः सुरुचिरचिबुकदन्तवसनाभिः ।
मुष्टिग्राय कृशतरमध्याभिः स्मरनृपसिंहासनजघनाभिः ॥२४८
बद्धपरस्परचारुकराभिः कङ्कणगणझङ्कृतिरुचिराभिः ।
भ्राजत्ग्रैवेयकहाराभि श्चरणरणितमणिमञ्जीराभिः ॥२४९
व्रजनगरौज्ज्वलवरतरुणीभि र्निर्म्मितहरिरसमणिवरखनिभिः ।
युगयुगमध्ये स्मरसरम्भि, श्रीमन्नागरकण्ठधृताभिः ॥२५०
द्विद्विमध्यहरिमणिपरिरम्भि स्वर्णमणिकृतदमनिभाभिः ।
रचितेऽत्यद्भुत मण्डलराजे वर्षति कुसुमं सिद्धसमाजे
राधाकृष्णोन्मदरसभ सः प्रादुरास परमाद्भुत रासः ॥२५१

रतिरसपरसीमश्रीततो राधिकाया ।
श्चरणकमललब्ध प्रौढ़तादात्म्यभावैः ॥
व्यरचि रुचिररासश्चित्रतत्तत् कलौघै
व्रजनवतरुणीनां मण्डले मधिवेन ॥२५२

चल रहे थे ॥२४६-२४७॥ जिनकी दन्त पङ्क्ति से ज्योति निर्गत हो रही थी, चिबुक आष्ठदेश सुरुचिर, मध्यदेश क्षीण, एवं मुष्टिग्राह्य, करकमल परस्पर के हाथों में आबद्ध था, कङ्कण की मनोहर ध्वनि से चारों ओर निनादित है, कण्ठदेश ग्रैवेयक हार से एवं मणिमय मञ्जीर ध्वनि से चरण मुखरित है ॥२४८-२४९॥ निर्मल हरिरस मणि विशुद्ध शृङ्गार रसकी श्रेष्ठ खनि स्वरूपा व्रजमण्डल के उज्ज्वल वरांङ्गनागण प्रत्येक दो दो जन के मध्य में एक एक कामाविष्ट नागर मणि के द्वारा कण्ठ आलिङ्गित होकर रहीं ॥२५०॥ मध्यवर्त्ती दो दो इन्द्रनील मणि के द्वारा स्वर्णमणि समूह द्वारा गठित हार की भाँति गोपीगण विरचित अति अद्भुत रास मण्डल के ऊपर सिद्धगण कुसुम वर्षण करने लगे थे, उस समय श्रीराधा कृष्ण की उन्मद रस बहुल परमाद्भुत राग क्रीड़ा का प्रादुर्भाव हुआ ॥२५१॥ जिन सब के देह रति रस की परमावधि सुषमा को धारण किए हैं, उस श्रीराधिका के चरण कमल में प्रौढ़ तादात्म्य भाव प्राप्त विचित्र कला

अथ संवर्धे सोऽद्भुत रास प्रोन्मदमदनकोटिकृतः हासः
उन्मदराधिका उन्मदकृष्णः प्रोन्मदयुवतिगणोन्मदतृष्णः ॥२५३
सकलनिगमतनुचमत्कारः सकलेश्वरगणरचिविचारः ।
परमाश्चर्यप्रेमविकारः परम नन्दमहोत्सवसारः ॥२५४
कृष्णरसैकस्फुरदुल्लस परमाकाशगतध्वनिभासः ।
दशदिक् प्रसृमर वरपटवासः परममहापरिमलभरितशः ॥२५५
भूषण वसन तनुच्छविवर्ष प्रोल्लसदखिल भुवन रति हर्षः ।
केलिचमत्कृति परमोत्कर्षः, सकल पुमर्थः प्रथितनिकर्षः २५६
सरभस चक्रभ्रमण विलासः स्मर वश युवति परस्पर हासः ।
प्रकटोन्मदनवमन्मथकोटिः प्रकटमहाद्भुत रतिपरिपाटिः ॥२५७

रसमयी व्रज युवतिगण को लेकर माधव ने मनोहर रास की रचना की ॥२५२॥ इस के बाद अद्भुत रास प्रारम्भ हुआ। कोटि कोटि मदन प्रोन्मद हास्य करने लगे, उक्त रास राधिका को उन्मत्त कर दिया, कृष्ण को उन्मत्त किया, और प्रोन्मत्ता युवतिगण भी उन्मद तृष्णा से विचलित हो उठी ॥२५३॥ जिस से वेद समूह भी विस्मित हो जाते हैं, जिस विषय में योगीश्वरगण भी विविध विचार करते रहते हैं, जिस के स्मरण से भी परमाश्चर्य प्रेम विकार उपस्थित होता है, उस परमानन्दानन्द रसात्मक का सार ही रास है ॥२५४ सर्वत्र केवल मात्र कृष्ण रसोल्लास ही दिखाई पड़ता है, तुमुल ध्वनि से आकाश व्याप्त हो गया है, दिक् दिक् में महा पटवास कुङ्कुमादि चूर्ण बिखरे हुए हैं, अहा! परम सुगन्धि से दशों दिक् आमोदित हो गये ॥२५५॥ भूषण, वसन, देह कान्ति धारा से निखिल भुवन में सुरतानन्द की विजय घोषणा होने लगी, केली चमत्कार का परमोत्कर्ष विराजित हुआ एवं इस में ही निखिल पुरुषार्थ का परम सन्निवेश हुआ ॥२५६॥ अति वेग से चक्रभ्रमण की भाँति विलास होने लगा, काम वशवर्त्ती युवतिगण परस्पर हँसने लगीं, उन्मत्त कोटि कोटि मन्मथ प्रकटित हुये, एवं महाद्भुत रतिपरिपाटि भी प्रकटित हुई ॥२५७॥

किङ्किणि नूपुर वलय घटानां वीणावेणुतालमुरजानाम् ।
प्रेमोत्तरमधुरतरगानप्रणयिसमुत्थिततुमुलस्वान: ॥२५८
गगन स्थगित सगण शरदिन्दु: स्तम्भित सुर सुतादिक सिन्धु ।
सुखविह्वल खगमृग पशुजाति पुलक वलित तरुवल्लीविततिः ॥२५९
द्रवमय विगलद् गिरिपाषाण: सरसपवन कृत सख्यभिमान: ।
मूर्च्छित मुक्तनीवि सुरवनित: खचरवृष्ट कुसुमौघं निचित: ॥२६०
प्रोच्छलदतुलमहारसजलधि भग्नमुनीश्वरपरमसमाधि: ।
केलिकलोत्सवपरमप्रथिमा कृष्णप्रेमसमुन्नतिसीमा ॥२६१

स्मरोन्मदगोकुलसुन्दरीगणैः
समुत्थितो रासविलाससंभ्रमः ।
सीमा परा प्रेमचमत्कृतीनां
स कोऽपि राधारसिकस्य जीयात् ॥२६२

किङ्किणि नूपुर वलय के निक्वण में वीणा वेणु करताल मृदङ्गादि की ध्वनि से, प्रेम पूर्ण महा मधुर सङ्गीत से, प्रणयिनी गोपीगण द्वारा तुमुल शब्द उत्थित हुआ ॥२५८॥ आकाश में गण सहित शारदचन्द्र स्थगित हुआ, यमुना मानस गङ्गादि नदी समूह की गति स्तम्भित हो गई, विहङ्ग मृगादि पशु जाति भी परम उल्लास से विह्वल हो उठी, एवं तरुलता समूह भी पुलकाञ्चित हो गये ॥२५९॥ गिरि राज के पाषाण समूह पिघल रहे हैं, सरस पवन तब सख्य भाव को प्राप्त कर लिया अर्थात् समयानुकूल मृदु मन्द वायु प्रवाहित होने लगी देव वनितागण मूर्च्छित हो गई, और उनकी नीवीबन्धन भी खुल गये, एवं आकाश चारीगण कुसुम की वर्षा करके रास मण्डल को व्याप्त कर दिये ॥२६०॥ अतुलनीय महारस सागर प्रोच्छलित हो रहा है, मुनीश्वरगण की परम समाधि टूट रही है, केलिकला के उन्मद की विशलता हो रही है, कृष्ण प्रेम समुन्नति की परमावधि हो गई है ॥२६१॥ कामोन्मत्ता गोकुल युवतिगण के सहित राधा श्याम सुन्दर के यह अपूर्व रास विलासावेश चमत्कृति की परम

तासां रसरभसवशमनसां विपुलपुलकपरिपूरितवपुषम् ।
प्रियपरिरम्भोन्मदमदनानां किमपि न सकृतकुचवसनानाम् ॥२६३

मुक्तवेणिविगलत् कुसुमानां तरलितमुक्तावलिरसनानाम् ।
प्रचलितकुण्डलगण्डतटानां विलसन्नीविप्रकटजघनानां ॥२६४

त्रुटितचारुकुचकञ्चुलिकानां छिन्नमाल्यमणिहारसराणाम् ।
श्रमजलपूरितसकलतनूनां म्लिष्टविलेपाञ्जनतिलकानाम् ॥२६५

प्रियतमपरिचुम्बितवदनानां प्रियतमनखरोल्लिखितकुचानाम् ।
प्रियतमभुजयुगकलितगलानां प्रियतममृष्टश्रमसलिलानाम् ॥२६६

राधासन्धितकञ्चुलिकानां राधाग्रथितरुचिरनीवीनाम् ।
राधास्नेहैकात्म्यधनानां शतगुणवर्धिपरमसुषमाणाम् ॥२६७

सीमारूप में जय युक्त हो ॥२६२॥ गोपीयों के मन केवल राम रभस के वश हो गये, देह विपुल पुलक जाल से परिपूरित हो गये, प्रियतम के परिरम्भण से मदनावेश अधिकतर बढ़ गया, उनके कुचावरण वसन विगलित होने पर भी उस को सम्भालने की शक्ति उनसब की नहीं रही ॥२६३॥ मुक्त वेणी समूह से कुसुम विगलित होने लगा, मुक्तावलि, काञ्चीदाम चञ्चल हो गये, गण्ड तट पर कुण्डल द्वय झोका ले रहे हैं, एवं नीवीबन्धन शिथिल होने पर जघन देश प्रकाशित हो गया ॥२६४॥ कुच युगल के आवरण रूप सुचारु कञ्चुलिका छिन्न भिन्न हो गई, माला समूह मणि हारादि भी छिन्न भिन्न हो गये, श्रम जल से सर्वाङ्ग भर गया, एवं अङ्ग राग अञ्जन तिलक प्रभृति म्लानता में आगई है ॥२६५॥ उनसबके बदन, प्रियतम द्वारा चुम्बित हो गये, कुच युगल प्रियतम के नखराघात से क्षत विक्षत हो गये, प्रियतम के भुज युगल द्वारा उन सब के गलदेश गृहीत हुआ, एवं प्रियतम ने उनसब के श्रमजल राशि को मिटा दिया ॥२६६॥ श्रीराधा ने उन सब की कञ्चुलिका को बंध दिया नीवी बन्धन भी कर दिया, श्रीराधा के स्नेह ही उनसब केलिए महाधन है, और उस से उनसब की सुषमा शत शत गुण से बढ़ी ॥२६७॥

माधवमधुराधरमधुपानां मुहुरति दुर्धरमदनमदानाम् ।
परकाष्ठांगतउन्मदललितः कोऽपि सुखाम्भोनिधिरुच्छलितः ॥२६८

गायन्तीनां दयितमिथुनां सानुरागैः सुरागैः
नृत्यन्तीनां प्रमदमदनोद्दामलीलाकलाभिः ।
श्रीराधायाश्चरणकमलस्नेहतादात्म्यभाजाम्
रासक्रीड़ासुखमनुपमं वल्लवीनां बभूव ॥२६९

तत्र यदा सुरतैकसतृष्णौ मण्डलमध्ये राधाकृष्णौ ।
मिलितौ भवतुरथवा क्रमशः कोऽपि तदासीद्रासे सुरसः २७०
वाद्यगीतपरयवतिवृन्दे पूर्णचमत्कृतिपरमानन्दे ।
तदवदशंयत सुनागरमिथुनं स्वस्वसृशिक्षा अधिरसनटनम् ॥२७१
राधा तत् प्रिययोरभवंस्ता एकैकाङ्गेऽद्भुतरसवलितः ।
चलनविभङ्गीरतिसुविचित्रा वीक्ष्य वीक्ष्य चिरमनुकृतचित्राः २७२

माधव ने उनमब के मधुर अधर के मधुपान किया, मुहुर्मुहु उन सब के मदनावेश अति दुर्धर्ष भाव को प्राप्त किया अहा ! चरमावधि प्राप्त उन्मादनादायक, अतिमनोज्ञ किसी एक अनिर्वाच्य सुख समुद्र उच्छलित हुआ ॥२६८॥ वे सब सुन्दर सुन्दर राग रागिणी आलाप के द्वारा युगल किशोर की कीर्तिगाथा को गाने लगीं, प्रमद मदन के आवेश से उन्होंने अपरिसीमलीला कलादि प्रकट कर नृत्य किया, उन्होंने श्रीराधा चरण कमल के साथ स्नेह से तादात्म्य भाव को प्राप्त कर लिया, अहा ! गोपीयों की वह क्रीड़ा निरुपम सुख निदान रूप हो गई थी ॥२६९॥ अनन्तर जब सुरतैकलालस श्रीराधा कृष्ण मिलित होकर अथवा क्रमशः उस रास मण्डल में नृत्य करने लग गये तो महा रस प्रकटित हुआ ॥२७०॥ गोपीगण नृत्य गीत में तन्मय हो जाने पर एवं रास मण्डल में पूर्ण चमत्कारमय परमानन्द विराजमान होने से मनोमोहन नागर द्वय ने रसपूर्ण नृत्य विद्या को प्रकटन किया ॥२७१ राधा एवं उनके प्रियतम कृष्ण के एक अङ्ग की अति विचित्र चलन त्रिभङ्गी का देखकर गोपीगण अद्भुत रस युक्ता हो गई अनेकक्षण

सङ्गीतक बहुभङ्गीसारं कमपि विहारं परमोदारम् ।
राधा तन्नागरयोर्मधुरं दृष्ट्वा मूर्च्छद् वनमपि सुचिरम् ॥२७३
रसमयनृत्यकलाद्भुतसङ्गी तुङ्गीतनवरतिरङ्गतरङ्गी ।
राधामाधवयो रतिललितः कोऽपि विलासः समभूदुदितः ॥२७४
अलकचिबुककुचकरस्पर्शो नीविधारणमधरामृतकर्षो
परमचित्रपरिरम्भणचुम्बं शुशुभे तल्ललितं रसजृम्भम् ॥२७५
मूर्च्छितमलुठद्गोपीवृन्दं मूर्च्छितमपतत् खगपशुवृन्दम् ।
मूर्च्छामापलतातरुवृन्दं सर्वममूर्च्छत्तत्र रसान्धम् ॥२७६
तत्र रचितपरमाद्भुतकेलिः शुशुभे स रसिकमण्डलमौलिः ।
अथ रसिकेन्द्रः श्रितनिजकान्तः सुतुमुलरासक्रीड़ाश्रान्तः ।
अविशद् वारि सगोपीवृन्दः करिणीगणवृत इव कलभेन्द्रः ॥२७७

तब चित्र पुत्तलिका की भाँति रह गईं ॥२७२॥ राधा एवं उनके नागर के सङ्गीत चातुर्य एवं परम रमणीय मधुर अनिर्वाच्य विहार को देखकर वृन्दावनस्थ स्थावर जङ्गमादि अनेक समय तक मूर्च्छित होकर रह गये ॥२७३॥ तब रसमय नृत्यकला के साहचर्य से अति उद्दाम नव सुरत द्वारा तरङ्गायित श्रीराधा माधव के अनिर्वचनीय विलास उदित हुआ ॥२७४॥ अलक कुञ्चित केश कलाप चिबुक एवं कुच मण्डलादि में कर स्पर्श होने लगा, नीवि धारण, अधरामृत का आकर्षण होने लगा। परम विचित्र परिरम्भण चुम्बनादि होने लगा और वह रस विलास भी क्रमशः सुन्दरतर हो गया ॥२७५॥ गोपीगण मूर्च्छित होकर लोट लगाने लगी पशु पक्षीगण मूर्च्छित होकर पृथ्वी में गिरने लगे वृक्ष लतादि भी मूर्च्छित हो गये अधिक क्या कहूँ। वहाँ के सब के सब व्यक्ति रसान्ध होकर मूर्च्छाग्रस्त हो गये ॥२७६॥ तत् पश्चात् रसिक राज, निज कान्तामणि के साथ सुतुमुल रासक्रीड़ा से परिश्रान्त होकर गोपीवृन्द के साथ करिणी गण के साथ मत्त करिवर की भाँति जल क्रीड़ा के लिऐ जल में प्रविष्ट हो गये ॥२७७॥ रसिकेन्द्र चूड़ामणि परमाद्भुत केलीं विलासादि की रचना कर शोभा विस्तार करने लगे, जल के ओर मुह कर राधा

राधापक्षव्रजयुवतिभिः पर्युक्षितउद्वसितमुखीभिः ॥२७८
क्रीड़ित्वा बहु सलिलोत्तीर्णः पुनरन्याम्बरभूषणपूर्णः ।
कुङ्कुमलिप्तः प्रिययादीप्तः कुञ्जशयनमधि स सुखं सुप्तः ॥२७९
एवमपरां शारदरजनीमखिला एव व्रजनवतरुणीः ।
आनीयारात्रि राधापतिना रासो नवनवरतिवशमतिना ॥२८०

परम रस समुद्रोज्जृम्भणस्याति काष्ठा ।
परम पुरुषलीलारूपशोभातिकाष्ठा
परमविलसदाद्यप्रेमसौभाग्यभूमा ।
जयति परपुमर्थोत्कर्षसीमा स रासः ॥२८१

शुद्धभावस्पृहावत्या सत्या कृष्णैकदत्तया ।
अद्भुतोऽयमयारासप्रबन्धः प्रकटीकृतः ॥२८२
यथास्फूर्त्तिमया रास विलासोराधिकापतेः ।
वर्णितःस्वमुदे तेन मुदिताः सन्तुसाधवः ॥२८३

मध्य वर्त्तिनी व्रज नारीगण को उत्तम रूप से सिञ्चित किए ॥२७८॥ बहुविध जल क्रीड़ा के बाद श्याम सुन्दर जल से तीर में उठकर पुनर्वार वसन भूषणादि को धारण किए, अङ्ग में कुङ्कुम लेपन कर प्रियाके साथ शोभित होकर कुञ्ज मध्य में सुख शय्या में सोगये ॥२७९ इस प्रकार अनन्त शारद रजनी में निखिल व्रज नव युवतिगण को ही आकर्षण कर श्रीराधा वल्लभ नव नव रति रस के वश होकर रास रचना किये ॥२८०॥ वह रास परम रस सागर की प्रकाशशील चरमावधि है, परम पुरुष की लीला रूप, शोभा की चरमावधि है, परम विलास मय आद्य (शृङ्गार) प्रेम सौभाग्यातिशय व्यञ्जक एवं परम पुरुषार्थ शिरोमणि की सीमा रूप में उत्कर्ष मण्डित हो ॥२८१ शुद्धभाव स्पृहा शीला एवं श्रीकृष्ण में अनन्य निष्ठायुक्त मति के द्वारा यह अद्भुत रास प्रबन्धः मेरे से प्रकट हुआ ॥२८२॥ स्फुर्त्ति के अनुसार मैंने श्रीराधा रमण के यह रास विलास का निज आनन्द के

इमं रासप्रबन्धं यो गायेत् कृष्णानुरक्तधीः ।
लुठन्तितत् पदतले पुमर्थाः सर्व उत्तमाः ॥२८४

इति समाप्तोऽयं रासप्रबन्धः ।

लिए वर्णन किया, इससे साधुगण भी आनन्दित होंगे ॥२८३॥
कृष्णानुरक्तचित्त व्यक्ति यदि इस रास प्रबन्ध का गान करें तो उनके पदतल में सकल उत्तम पुरुषार्थ लुठित होगा ॥२८४॥

इति श्रीप्रबोधानन्द सरस्वति विरचित
आश्चर्यरासप्रबन्धानुवाद समाप्त ॥

गौरगदाधरंनत्वा प्रेमानन्दकलेवरम् ।
विदुषा हरिदासेन भाषाव्याख्याकृतामुदा ॥

१। वेदान्तदर्शनम् "भागवतभाष्योपेतम्" महर्षि श्रीकृष्णद्वैपायन व्यासदेव प्रणीत, ब्रह्मसूत्रों के अकृत्रिम अर्थस्वरूप श्रीमद्भागवत के पद्यों के द्वारा सूत्रार्थों का समन्वय इसमें मनोरमरूप में विद्यमान है।

२। श्रीनृसिंह चतुर्दशी भक्ताह्लादकारी श्रीनृसिंहदेव की महिमा, व्रतविधानात्मक अपूर्व ग्रन्थ।

३। श्रीसाधनामृतचन्द्रिका गोवर्धन निवासी सिद्ध श्रीकृष्णदास बाबा विरचित रागानुगीय वैष्णव पद्धति।

४। श्रीसाधनामृतचन्द्रिका (बङ्गला पयार) गोवर्धन निवासी सिद्ध श्रीकृष्णदास बाबा के द्वारा रचित सुललित छन्दोबद्ध ग्रन्थ।

५। श्रीगौरगोविन्दार्चन पद्धति गोवर्धन निवासी सिद्ध श्रीकृष्णदास बाबा विरचित सपरिकर श्रीनन्दनन्दन श्रीभानुनन्दिनी के स्वरूप निर्णयात्मक ग्रन्थ।

६। श्रीराधाकृष्णार्चन दीपिका श्रीजीवगोस्वामिपाद कृत श्रीराधासम्बलित श्रीकृष्ण पूजन प्रतिपादन का सर्वादि ग्रन्थ।

७। श्रीगोविन्दलीलामृतम् (मूल, टीका, अनुवाद सह १-४ सर्ग) "श्रीकृष्णदास कविराज प्रणीतम्" स्वारसिकी उपासना के अनुसार अष्टकालीय लीला स्मरणात्मक प्रमुख ग्रन्थ।

८। श्रीगोविन्दलीलामृतम् ५ सर्ग से ११ सर्ग पर्यन्त (टीका सानुवाद)

९। श्रीगोविन्दलीलामृतम् १२ सर्ग से २३ सर्ग पर्यन्त ,, ,,

१०। ऐश्वर्यकादम्बिनी (मूल अनुवाद) श्रीबलदेवविद्याभूषणकृत भागवतीय श्रीकृष्णलीला का क्रमबद्ध ऐश्वर्य मण्डित वर्णन, श्रीवृषभानु महाराज एवं भानुनन्दिनी का मनोरम वर्णन इसमें है।

११। संकल्पकल्पद्रुम (सटीक, सानुवाद) श्रीविश्वनाथ चक्रवर्त्ति पाद कृत स्वारसिकी उपासना का प्रमुख ग्रन्थ।

१२। चतुःश्लोकी भाष्यम् (सानुवाद) श्रीनिवासाचार्य प्रभु कृत चतुःश्लोकी भागवत की स्वारसिकी व्याख्या।

१३। श्रीकृष्णभजनामृत (सानुवाद) श्रीनरहरिसरकार ठक्कुरकृत अपूर्व धर्मीय संविधानात्मक ग्रन्थ।

१४ । श्रीप्रेमसम्पुट (मूल, टीका, अनुवाद सह) श्रीविश्वनाथ चक्रवर्त्तीकृत भागवतीय रासरहस्य वर्णनात्मक हृदयग्राही ग्रन्थ ।

१५ । भगवद्भक्तिसार समुच्चय (सानुवाद) श्रीलोकानन्दाचार्य प्रणीत भक्तिरहस्य परिवेषक अनुपम ग्रन्थ ।

१६ । भगवद्भक्तिसार समुच्चय (सानुवाद बङ्गला) श्रीलोकानन्दाचार्य प्रणीत, भक्तिरहस्य प्रकाशक मनोहर ग्रन्थ ।

१७ । व्रजरीति चिन्तामणि (मूल, टीका, अनुवाद) श्रीविश्वनाथ चक्रवर्त्ती ठक्कुर कृत व्रजसंस्कृति वर्णनात्मक अत्युत्कृष्ट ग्रन्थ ।

१८ । श्रीगोविन्दवृन्दावनम् (सानुवाद) बृहद्गौतमीय तन्त्रान्तर्गत श्रीराधारहस्य परिवेषक सर्वोत्कृष्ट ग्रन्थ ।

१९ । श्रीराधारसमुधानिधि(मूल,बङ्गला)श्रीप्रबोधानन्दसरस्वतीपाद रचित माधुर्यभक्तिमयी श्रीराधा महिमा प्रतिपादक अनुपमेय ग्रन्थ ।

२० । श्रीराधारसमुधानिधि (बङ्गला, मूल, सानुवाद)

२१ । श्रीराधारसमुधानिधि (मूल, हिन्दी)

२२ । श्रीराधारसमुधानिधि (हिन्दी मूल, सानुवाद)

२३ । श्रीकृष्णभक्तिरत्नप्रकाश (सानुवाद) श्रीराघवपण्डित रचित श्रीकृष्णभक्ति प्रकाशक अनुपम ग्रन्थ ।

२४ । हरिभक्तिसारसंग्रह (सानुवाद) श्रीपुरुषोत्तमशर्म प्रणीत श्रीभागवतीय क्रमबद्ध भक्तिसिद्धान्त संग्रहात्मक ग्रन्थ ।

२५ । श्रुतिस्तुति व्याख्या (अन्वय, अनुवाद) श्रीपाद प्रबोधानन्द सरस्वतीकृत वेदस्तुति की व्रजलीलात्मक व्याख्या ।

२६ । श्रीहरेकृष्णमहामन्त्र 'अष्टोत्तरशतसंख्यक'

२७ । धर्मसंग्रह(सानुवाद)श्रीवेदव्यासकृत धर्मसंग्रह श्रीमद्भागवतीय ७म स्कन्ध के अन्तिम ११,१२,१३,१४,१५ अध्यायों का वर्णन ।

२८ । श्रीचैतन्य सूक्तिसुधाकर श्रीचैतन्यचरितामृत तथा श्रीचैतन्य-भागवतीय सूक्तियों का संग्रह ।

२९ । सनत्कुमार संहिता (सानुवाद) व्रजीय रागानुगीय उपासना प्रतिपादक सुप्राचीन ग्रन्थ ।

प्रकाशित ग्रन्थ संख्या—५२

শ্রীশ্রীগৌড়ীয়-গৌরব-গ্রন্থগুচ্ছঃ

শ্রীপদ্মপুরাণীয়

শ্রীযোগসার-স্তোত্রম্

শ্রীল শ্রীজীবগোস্বামি-প্রণীতয়া

টীকয়া সম্বলিতম্

শ্রীনবদ্বীপস্থ-হরিবোল-কুটীরতঃ
শ্রীহরিদাস-দাসেনানূদিতং
সম্পাদিতং প্রকাশিতঞ্চ

কৃষ্ণনগর-
শ্রীভাগবত-যন্ত্রে
মুদ্রিতম্

নিবেদন

শ্রীশ্রীগুরুগৌরাঙ্গের অপার করুণায় শ্রীপদ্মপুরাণোক্ত 'যোগসার-স্তোত্র' শ্রীল শ্রীজীবপ্রভু-কৃত টীকা ও বঙ্গানুবাদ সহিত প্রকাশিত হইলেন। ইহা শ্রীপদ্মপুরাণ উত্তর-খণ্ডে ১২৭ অধ্যায়ের অংশ-বিশেষ। [বঙ্গবাসী সংস্করণে ১২৮ অধ্যায় এবং শ্রীল ভক্তিবিনোদ-সংস্করণে ৮৯ অধ্যায়।] দেবর্ষি-মুনির মুখ-নিগলিত এই স্তোত্রটি শ্রবণ করিয়া শ্রীহরি তাঁহাকে দর্শন এবং বিশুদ্ধা ভক্তি দান করিয়াছেন। এই স্তোত্র পাঠ বা শ্রবণ করিলে প্রভূত ফল লাভ হয় — ইহা গ্রন্থশেষে ফলশ্রুতি-প্রকরণে কথিত হইয়াছে। শ্রীজীবগোস্বামি-পাদ এই স্তোত্রের কঠিনাংশেরই টীকা করিয়াছেন। কাজেই গ্রন্থখানিকে বিভাগত্রয়ে সন্নিবিষ্ট করা হইল। (১) প্রারম্ভ, (২) স্তব ও (৩) ফলশ্রুতি। শ্রীল শ্রীজীব দুর্বোধ্য শব্দগুলিকে সহজ সুখবোধ্য করিয়া স্তুতিটির সঙ্গীত রক্ষা করিয়াছেন; এইজন্যই শ্রীভক্তিরত্নাকরে শ্রীজীব-প্রভুর গ্রন্থ-গণনা-প্রসঙ্গে বলা হইয়াছে, —**"যোগসার-স্তবের টীকাতে সুসঙ্গতি।"**

বরাহনগর শ্রীগৌরাঙ্গ গ্রন্থ-মন্দিরের একখানি পুঁথির সাহায্যে এই স্তবটি সঙ্কলিত হইল। মুদ্রিত সংস্করণগুলিতে বহু পাঠভেদ দৃষ্ট হওয়ায় টীকায় যে পাঠ গৃহীত হইয়াছে, মূলে তাহাই দেওয়া হইয়াছে এবং টীকার অতিরিক্ত-স্থলে কোথাও বন্ধনী মধ্যে, কোথাও বা পাদ-টীকায় পাঠান্তর দেওয়া হইয়াছে। দ্রষ্টব্য এই (ক) চিহ্নিত পাঠান্তর-সকল শ্রীপদ্মপুরাণের শ্রীল ভক্তিবিনোদ সংস্করণ, অনুধাবনে সন্নিবিষ্ট হইয়াছে। এক্ষণে কৃপাময় পাঠকগণ প্রকাশকের ত্রুটি ক্ষমা করিয়া মূল গ্রন্থের তাৎপর্য আস্বাদন করিলেই কৃতার্থ হইব। ইতি

৪৫৭ গৌরাব্দ
শ্রীধাম-নবদ্বীপ

বৈষ্ণবদাসানুদাস
শ্রীহরিদাসদাস

ওঁ শ্রীগৌরায় নমঃ

যোগসার-স্তোত্রম্

[প্রারম্ভঃ]

একদা মাসি বৈশাখে একাদশ্যাং মুদা (মহা-) মুনিঃ ।
পূজাং কৃত্বা হরে রম্যাং বিচিত্রামকরোৎ স্তুতিম্ ॥ ১ ॥
তেনৈব যশসাকৃষ্ট দেবদেবো হরিঃ স্বয়ম্ ।
আজগাম পুরস্তস্য তয়াস্তু ত্যাতিহর্ষিতঃ ॥ ২ ॥
তং দৃষ্ট্বা গরুড়ারূঢ়ং (প্রভাসং) প্রভাভ্রজলদচ্ছবিম্ ।
চতুর্ভুজং বিশালাক্ষং সর্বালঙ্কার-ভূষিতম্ ॥ ৩ ॥
উদ্ভূতপুলকো বিপ্রঃ সানন্দজল-লোচনঃ ।
জগাম শিরসা ভূমৌ কৃতকৃত্যমনাস্তদা ॥ ৪ ॥
ন মমৌ তেন হর্ষেণ সব্রহ্মাণ্ডোদরেঽপি চ (হি) ।
ন সস্মার নিজং দেহং ব্রহ্মীভূত ইবাভবৎ ॥ ৫ ॥
ততঃ সম্ভাষিতঃ প্রীত্যা হরিণা বৈষ্ণবো মুনিঃ ।
দেবদ্যুতে ! বিজানামি মদ্ভক্তস্ত্বং মদাশ্রয়ঃ ॥ ৬ ॥
মন্ন্যস্তাখিলকর্মা হি মদ্ভাবো মন্মনাঃ সদা ।
বরং ব্রূহি প্রসন্নোঽস্মি স্তোত্রেণানেন তেঽনঘ ॥ ৭ ॥

(লোমশ উবাচ—)

ইতি শ্রুত্বা হরের্বাক্যং প্রত্যুবাচ স তাপসঃ।

(দেবদ্যুতিরুবাচ—)

দেবদেবারবিন্দাক্ষ স্বমায়াধৃত-বিগ্রহ ॥ ৮ ॥

ত্বদ্দর্শনাৎ সদা দেব দুর্লভো নাপরো বরঃ।

ব্রহ্মাদয়ঃ সুরাঃ সর্বে যোগিনঃ সনকাদয়ঃ ॥ ৯ ॥

যং সাক্ষাৎ কর্তুমিচ্ছন্তি সিদ্ধাশ্চ কপিলাদয়ঃ।

অহংমমেতি-পাশা যে (দেহস্থা) মোহমূলাঃ শুভাশুভাঃ ॥১০॥

সহেতুকাশ্চ দহ্যন্তে ত্বয়ি দৃষ্টে পরাবরে।

আত্মনঃ কর্মণো বুদ্ধেরাবির্ভূতং ফলং মম ॥ ১১ ॥

যদ্ দৃষ্টোঽসি জগন্নাথ! প্রার্থয়ে কিমতঃপরম্।

ন বরার্থং হি দেবেশ! ত্বৎপাদকমলং হৃদি ॥ ১২ ॥

চিন্তয়ামানিশং ভক্ত্যা ত্বদ্গতেনান্তরাত্মনা।

ইমমেব বরং যাচে ত্বদ্ভক্তিরচলা মম ॥ ১৩ ॥

অস্তু বৈ কেবলা নাথ প্রার্থয়ে নাপরং বরম্।

(লোমশ উবাচ—)

ইতি শ্রুত্বা বচস্তস্য প্রসন্নবদনো হরিঃ ॥ ১৪ ॥

প্রত্যুবাচ প্রসন্নাত্মা এবমস্ত্বিতি তং দ্বিজম্ (স্তু দ্বিজোত্তম)।

অন্যস্তে তপসঃ কশ্চিৎ প্রত্যূহো ন ভবিষ্যতি ॥ ১৫ ॥

এতচ্চ ত্বৎকৃতং স্তোত্রং যে পঠিষ্যন্তি মানবাঃ।

তেষাং মদ্বিষয়া ভক্তিরচলা চ ভবিষ্যতি ॥ ১৬ ॥

ধর্মকার্যঞ্চ যৎকিঞ্চিৎ সাঙ্গং সর্বং ভবিষ্যতি।

জ্ঞানে চ পরমা নিষ্ঠা তেষাং স্থাস্যতি সর্বদা ॥ ১৭ ॥

(পৌলস্ত্য উবাচ -)

ইত্যুক্ত্বান্তর্হিতো ভূত্বা দেবদেবো জনার্দনঃ।
দেবর্ষিস্তু দাসত্বা নারায়ণ-পরোঽভবৎ ॥ ১৮ ॥

দাল্ভ্য উবাচ

মহর্ষেঃ সুপ্রগীতোঽস্মি কথয়া পাবনীকৃতঃ।
অনয়া বিষ্ণুসঙ্গিন্যা গঙ্গয়েবাঽমলস্তু বৈ ॥ ১৯ ॥
কিং তৎ স্তোত্রং সমাখ্যাহি প্রসন্নো যেন মাধবঃ।
তস্যানঘস্য বিপ্রস্য মহৎ কৌতূহলং মম ॥ ২০ ॥
ত্বৎপ্রসাদাদহং বিপ্র মন্যে প্রাপ্তুং মনোরথম্।
মহতাং সঙ্গতিঃ কস্য মহত্ত্বায় ন কল্পতে ॥ ২১ ॥

* * * *

পৌলস্ত্য উবাচ

কথয়ামি রহস্যং তজ্জপ্যং স্তোত্রমনুত্তমম্ (তে যজ্জপ্তং স্তোত্রমুত্তমম্)।
প্রাগ্‌গৃহীতং সুপর্ণেন গরুড়ান্মম (রি) চাগতম্ ॥ ২২ ॥
আধ্যাত্মসারং তস্মাহোদয়করং শুভম্।
সর্বপাপহরং বিপ্র (ভূপ !) আত্মজ্ঞানকরং § পরম্ ॥ ২৩ ॥

---

* দিলীপ উবাচ (ক)

** কথয়স্ব প্রসাদেন বিষ্ণুস্তোত্রমনুত্তমম্।
যেন তুষ্টঃ স ভগবান্ দদৌ তস্য চ দর্শনম্ ॥ (ক)

† বশিষ্ঠ ... (ক)

§ ... স্বাত্মজ্ঞানকরং

যোগসার-স্তোত্রম্

[স্তবঃ]

ওঁ নমো বাসুদেবায় বিশ্বরূপায় (নমো বিষ্ণবে) চক্রিণে ।
ভক্তপ্রিয়ায় দেবায় (কৃষ্ণায়) জগন্নাথায় তে নমঃ * ॥
সকলাগমো সাংখ্যঞ্চ বেদাশ্চৈব বৈ যতঃ ।
অতঃ স বাসুদেবোঽত্র বিবুধৈঃ পরিপঠ্যতে ॥
স্তোত্রং স্তবঃ স্তুতিঃ সর্বং জগদ বিষ্ণুময়ং যদা ।
তদা সংস্তূয়সে [illegible] তেন মুক্তিপ্রদকরো নৃণাম্ ॥ ১ ॥
যস্য দেবস্য নিঃশ্বাসাঃ বেদাঃ সাঙ্গাঃ সপুস্তকাঃ ।
কা স্তুতিঃ [illegible] তস্য ভক্ত্যাহং মুখরোঽভবম্ ॥ ২ ॥

শ্রীশ্রীজীবগোস্বামিকৃতা টীকা

শ্রীশ্রীনিত্যানন্দায় নমঃ

[illegible] জ্ঞানানন্দ [illegible] বিবৃতে । [illegible] ইত্যাদি । [illegible] শ্চ [illegible] । [illegible] নিত্যানন্দ [illegible] ॥ ১ ॥

[illegible] নিরূপণাদীনি জৈমিনিপ্রভৃতি মীমাংসা-শাস্ত্রাণি বৈয়াসকানি তু ব্রহ্মমীমাংসা শাস্ত্রাণি । ব্রহ্মস্বরূপ-নিশ্চায়কত্বাভাবেন নিঃশ্বাসা ইব, যথা নিঃশ্বাসাঃ প্রযত্নং বিনা প্রবর্ত্তন্তে, তদভিন্নাশ্চ, তথা বেদাস্তত্ত্বঃ ॥ ২ ॥

* শার্ঙ্গিণে [illegible] । সংস্তূয়তে ।

*   *   *   *

বেদো ন বক্তি যং সাক্ষান্ন চ বাগ্ বক্তি (বেত্তি) নো মনঃ।
মদবিমগ্না (স্বং) কথং স্তৌতি ভক্তিযুক্তো ন কিং বদেৎ ॥ ৩ ॥
ব্রহ্মাদি-ব্রহ্মাণ্ডি বিভুস্ত্বং ত্বমেব ব্রহ্মণো বপুঃ (সকলাশ্রয়ঃ)।
স্রষ্টা ব্রহ্ম নিদানং ত্বং শুদ্ধং ব্রহ্ম ত্বমেব চ ॥ ৪ ॥
কায়-কায়িযুগং যা চিদ্ ভিত্ত্বা স্পৃশতি কায়িনম্।
কায়দোষৈরনম্রান্তস্তয়া ত্বং ভাসি যোগিনাম্ ॥ ৫ ॥

বেদো নেতি। যং পরমাত্মানং ত্বাং বেদোঽপ্যন্যপদার্থবৎ সাক্ষাদ্ বক্তুং ন শক্নোতি, কিন্তু 'অশব্দমস্পর্শমরূপমব্যয়'মিত্যাদিনা ব্যাবৃত্তিদ্বারেণ 'সত্যং জ্ঞানমনন্তং ব্রহ্মে'ত্যাদিনাপি সত্যাদি শব্দেনাসত্যাদিব্যাবৃত্তিঃ ক্রিয়তে। অতএব ঘটপটাদিপদার্থবৎ সাক্ষান্ন বক্তি, কিন্তু নিদর্শন প্রকারমাত্রং মনস্ত্যাগেনৈব তৎস্বরূপানুভব ইতি [illegible] ॥ ৩ ॥

ব্রহ্মাদীতি। ব্রহ্মা আদির্যেষাং দেবানাং তেভ্যোঽপি ব্রহ্ম বৃহৎ বিষ্ণুব্যাপকঃ। অথবা ব্রহ্মণো হিরণ্যগর্ভাদাদিঃ। ত্বন্নাভি-কমলজন্মত্বাত্তস্য ব্রহ্মণঃ। বিষ্ণুস্ত্বং ব্রহ্ম। বিশেষাদ্বিবিধং রূপম্; নির্গুণং, সগুণঞ্চ। তন্মধ্যে যদ ব্রহ্ম নির্গুণং [illegible] ত্বং পরং ব্রহ্মণো বপুঃ স্বরূপম্। 'ব্রহ্মণো হি প্রতিষ্ঠাহ'মিতি [illegible]। সগুণঃ গুণযুক্তো ব্রহ্মা ত্বং সর্গাদিকারণং [illegible] ॥ ৪ ॥

কায়েতি। কায়ো দেহঃ, কায়ী জীবঃ, তয়োর্মধ্যে অন্যোন্যাধ্যাস রূপেণ বর্তমানা যা চিৎ জ্ঞানস্বরূপা, সা চিৎ কায়ং ভিত্ত্বা কায়িনশ্চ কায়িস্বরূপমৌপাধিকং ভিত্ত্বা কায় কায়িনো নির্বিশেষং চিন্মাত্ররূপং স্পৃশতি। কায়েষু

* * চরণেদ্ জগত্তে সর্বং ত্রৈলোক্যং সচরাচরম্।
[illegible] দেব চক্রপাণির্বরায়ুধঃ ॥ (ক)

দেহভাবে ন জাগর্ত্তি ন নিদ্রাতি নিজাত্মনি।
সুখসন্দোহ-বুদ্ধির্যা সা ত্বং বিষ্ণো ন সংশয়ঃ ॥ ৬ ॥
মহদাদিদ্বিধাভাবস্তথা বৈকারিকো গণঃ (বৈকারিকা গুণাঃ)।
ত্বমেব নাথ তৎসর্ব্বং নানাত্বং মূঢ়কল্পনা ॥ ৭ ॥
কেশ-কেশব-রূপাভিঃ কল্পনা তিসৃভিস্তথা।
ত্বমেকঃ কল্প্যসে ব্রহ্মন্ পুত্রাদিভিঃ পুমানিব ॥ ৮ ॥

বর্ত্তমানোঽপি দেহস্থোঽপি দেহাকাশবৎ কায়দোষৈরসংস্পৃষ্টঃ। তবা চিন্তা যোগিনাং ভাসীহাপি ॥ ৫ ॥

দেহেতি ॥ আনন্দ-সমূহ-বুদ্ধিঃ সা ত্বম্। দেহভাবেত্যাদি—দেহভাবে অনাত্ম স্বরূপে দেহে আত্মবুদ্ধিনাপি, ততোঽত্যন্ত বিলক্ষণত্বাৎ। নিজাত্মনি স্বস্বরূপে চিদাত্মনি নিঃশেষে ন নিদ্রাতি তৎস্বরূপং সর্বদাত্ম ভবতি ॥ ৬ ॥

মহদাদীরতি মূলপ্রকৃতিরবিকৃতির্মহদাদ্যাঃ প্রকৃতি-বিকৃতয়ঃ সপ্ত। ষোড়শকস্তু বিকারো, ন প্রকৃতির্ন বিকৃতিঃ পুরুষ ইতি সাংখ্যানাং পঞ্চবিংশতি তত্ত্বপ্রক্রিয়া। তত্র সত্ত্বরজস্তমসাং সাম্যাবস্থা প্রকৃতিঃ, প্রকৃতের্মহান, মহতোঽহঙ্কারঃ, অহঙ্কারাৎ পঞ্চতন্মাত্রাণি; একাদশেন্দ্রিয়াণি ইত্যুৎপত্তি ক্রমঃ। তত্র মহত্তত্ত্বমেব বুদ্ধিরুচ্যতে, তস্যা ধর্মোঽহঙ্কারঃ। দেহেন্দ্রিয়েষহং-কৃতয়ঃ। বুদ্ধীন্দ্রিয় কর্মেন্দ্রিয়াণি মনশ্চেতি একাদশেন্দ্রিয়াণীতি। মনশ্চেতি একাদশেন্দ্রিয়াণীতি পৃথিব্যাদীনি পঞ্চমহাভূতানীতি ষোড়শকো গণো বিকার এব। মহদাদি দ্বিধা প্রকারো ভাবঃ ষোড়শকো গণশ্চ ত্বমেবেত্যর্থঃ। নানাত্ব-মজ্ঞানাং কল্পনা। মহদাদি সপ্ত তত্ত্ব প্রকৃতিবিকৃতিরূপেণ দ্বৈবিধ্যম্ ॥ ৭ ॥

কেশেতি কো ব্রহ্মা ঈশো রুদ্রঃ কেশবো বিষ্ণুঃ। 'আত্মা বৈ জায়তে পুত্র' ইতি শ্রুতেঃ পিতুরেব পুত্রপৌত্রাদিরূপেণ নানাত্ব কল্পনা যথা, তথা ব্রহ্মাদি-রূপেণ বিষ্ণোরেব নানাত্ব-কল্পনা ॥ ৮ ॥

নির্দোষং নির্গুণৈকৈকং চিদ্রূপমখিলং জগৎ।
কবীনাং ভাতি (যত্তত্ত্বং) যদ্‌ভানাত্তং বিষ্ণুং নৌমি নিগুণম্ ॥ ৯ ॥
যস্মিন্ জ্ঞাতে ন কুর্বন্তি কর্ম চাপি শ্রুতীরিতম্।
নিরেষণা জগন্মিত্রং শুদ্ধং ব্রহ্ম নমামি তম্ ॥ ১০ ॥
কাময়ন্তে প্রজা নৈব এষণাভ্যঃ সমুত্থিতাঃ।
লোকমাত্মনি পশ্যন্তো যং বুদ্ধ্যৈকচরা নরাঃ' ॥ ১১ ॥
স্বং স্বেতরঞ্চ সন্মাত্রং যৎপ্রবোধাদুপাসতে।
যোগিনঃ সর্বভূতেষু সদ্রূপং নৌমি তং হরিম্ ॥ ১২ ॥
ব্রহ্মাহমিতি গায়ন্তি যং জ্ঞাত্বৈকং বরা জনাঃ।
পশ্যন্তো হি ত্বচা তুল্যং দেহং (দেবং) তং নৌমি মাধবম্ ॥ ১৩ ॥
মায়ামোহো বিচিত্রাভ(মায়য়া মোহবৈচিত্র্যং)স্তথাহংমমতা নৃণাম্।
বিলীয়তে বিদিত্বা যং নমস্তস্মা অমায়িনে ॥ ১৪ ॥

নির্দোষমিতি—কবয়ঃ ক্রান্তদর্শিনঃ সাক্ষাৎকৃতাত্মতত্ত্বাস্তেষাং যস্য ব্রহ্মস্বরূপস্য ভানাৎ প্রকাশাৎ অখিলং জগৎ সত্ত্বাদিদোষরহিতং শুক্লাদিগুণরহিতং চিদ্রূপমেকং ভাতি—তং বিষ্ণুং নৌমি ॥ ৯ ॥

যস্মিন্নিতি—অত্যন্ততন্নিষ্ঠত্বেন বাহ্যবিষয়সঙ্কল্পাভাবাৎ নির্গতাঃ পুত্রবিত্তলোকৈষণা যেষাম্ ॥ ১০ ॥

কাময়ন্ত ইতি—যং পরমাত্মানং জ্ঞাত্বা লোকমাত্মনি পশ্যন্তঃ ত্যক্তপুত্রদারাদিকা ন পুত্রাদীন্ কাময়ন্তে ॥ ১১ ॥

স্বমিতি—স্বেতরং যৎ স্বরূপং প্রবোধাৎ সর্বভূতেষ্বাত্মানং পরঞ্চ সন্মাত্রমুপাসতে, সদ্রূপং তং নৌমীত্যর্থঃ ॥ ১২ ॥

ব্রহ্মাহমিতি—ত্বচা তুল্যং সর্পকঞ্চুকবৎ ॥ ১৩ ॥

প্রয়াণে চাপ্রয়াণে চ যন্নাম স্মরতাং নৃণাম্ ।
সদ্যো নশ্যতি পাপৌঘো নমস্তস্মৈ চিদাত্মনে ॥ ১৫ ॥
মোহানলোল্লসজ্জ্বালা-জ্বলল্লোকেষু সর্বদা ।
(পাদ্মে-) যন্নামাম্বুদচ্ছায়াং প্রবিষ্টো নৈব দহ্যতে ॥ ১৬ ॥

মরণেতি । মরণোন্মুখো দেহেন্দ্রিয়াদ্যন্তঃকরণেনৈব প্রয়াণং প্রাণানাং গমনং প্রয়াণম্ । এবং প্রকারেণ যো নামোচ্চারী বিচিত্রমেতৎ নৈব বিচিকিৎসা-নৈরপেক্ষ্যমাত্রেণ সিদ্ধং বিনাপি ইত । নাম্নাং অলৌকিকত্বাদেব নতু । অথবা চিদাত্মস্বরূপাত্মনে নামাকৃতয়ে ॥ ১৫ ॥

প্রয়াণে মরণদশায়াং, অপ্রয়াণে জীবনদশায়াং সর্বদা নামস্মরণাৎ পুণ্যানি তত্-ফলেন সর্বাপরাধাদপেক্ষয়া নিবারিতানি । সদ্য ইত্যাদ্যুক্তিরপেক্ষয়া দর্শিতং । পাপৌঘঃ সংসারঃ ॥ ১৪ ॥

ইদানীং তন্নামাগ্রে এব যথা কথঞ্চিৎ স্মরণ-কীর্তনাদিক সর্বানর্থনিবৃত্তি-দ্বারেণ পরমানন্দাস্বাদকত্বমাহ মোহেতি । মোহঃ সংসারাভিনিবেশতাপ প্রযুক্তঃ স্বামিনস্তদ এব উল্লসন্ত্যো যা জ্বালা তাভিঃ জ্বলৎসু লোকেষু তেষু মধ্যে যথা বিবেকাদিনো, প্রবিষ্টঃ প্রবেশনকর্তারং, তথা তথা আত্মানং । অলোকেষ্বেকানেকামিতি বদেৎ । তাবদপি প্রবিষ্টঃ সন্নেব । যথা কথঞ্চিন্নামগ্রহণমাত্রং পুমান্ দহ্যতে ন সংতপ্যতে । অপি তু তাপত্রয়-বিনির্মুক্তো নিত্যানন্দ পরমানন্দ-রসাস্বাদনশ্চ ভবতি । তথাচ বিষ্ণুধর্মে তৎ-সংকীর্ত্য নারায়ণ-শব্দমাত্রং বিমুক্তদুঃখাঃ সুখিনো ভবন্তি । অতোঽপি নারায়ণশব্দমাত্রমনেনৈব বিবক্ষিতং, নামজ্ঞানং শব্দাদিকম্ । তথা অজামিলো ম্রিয়মাণঃ পুত্রাপদেশেন নারায়ণনাম সংকীর্ত্য মুক্তো জাতঃ । ন হি বস্তুশক্তি-র্বুদ্ধিমপেক্ষতে । যথা অজ্ঞেন তজ্জ্ঞাপ্যজ্ঞানেন গৃহাদৌ প্রক্ষিপ্তোঽগ্নি-র্দহত্যেব । জলবুদ্ধ্যা বা পীতমমৃতমমরত্বং সাধয়ত্যেব । ঘৃতবুদ্ধ্যা বা পীতং বিষং মৃত্যুং সাধয়ত্যেব ॥ ১৬ ॥

যস্য স্মরণ-মাত্রেণ ন মোহো নৈব দুর্গতিঃ ।
ন রোগো নৈব দুঃখানি তমানন্দং (নন্তং) নতোঽস্ম্যহম্ ॥ ১৭॥

শব্দার্থঃ সম্বিদর্থশ্চ বিষ্ণুর্নাস্তি পরো যদি ।
তেন সত্যেন সংসারো ন মাং স্পৃশতু মাধব ॥ ১৮ ॥

ঈক্ষাঞ্চক্রে স এবাগ্রে য একঃ স্যাং বহুস্তথা ।
প্রাবিষ্টো দেবতাঃ সৃষ্ট্বা স প্রসীদতু মে হরিঃ ॥ ১৯ ॥

নারায়ণো জগদ্ব্যাপী যদি বেদাদি-সম্মতঃ ।
সত্যেন তেন নির্বিঘ্না বিষ্ণুভক্তির্মমাস্তু সা ॥ ২০ ॥

যো ন বীজং ন চাবীজং বীজং যো বীজভাবিতঃ ।
স নিত্য-ভববীজং মে শিতবিদ্যাসিনা ছাতু ॥ ২১ ॥

যস্যেতি স্পষ্টম্ ॥ ১৭ ॥

শব্দার্থ ইতি — শব্দস্য বেদস্য তস্য সাক্ষাৎ পারম্পর্যেণ বা বিষ্ণুরেবার্থঃ প্রয়োজনম্ । সম্বিদিতি চৈতন্যরূপেণ জ্ঞানেন সর্বপদার্থানুভবো ভবতি । তত্র সংবিদোঽর্থো বিষ্ণুরেব, তদিতরস্য সর্বস্যাচেতনত্বাৎ ॥ ১৮ ॥

ঈক্ষাঞ্চক্র ইতি — য একঃ পরমাত্মা স এবাগ্রে সর্গাদৌ প্রপঞ্চরূপেণ বহুঃ স্যামিতি ঈক্ষাঞ্চক্রে পর্যালোচনাং কৃতবান্ । ততশ্চ তেজোজল-পৃথ্বীরূপা দেবতাঃ সৃষ্ট্বা তাসাং ত্রিবৃৎকরণং কৃত্বা জীবরূপেণ প্রবিষ্টঃ ॥ ১৯ ॥

নারায়ণ ইতি — যদীতি ন সংশয়ে, কিন্তু স্বীকরণায়, যদি বেদাঃ প্রমাণমিতিবৎ ॥ ২০ ॥

যঃ পরমাত্মা সংসারং প্রতি বীজং কারণং ন ভবতি ; অবীজমপি ন । ভব-বীজং সংসার-কারণমজ্ঞানম্ । শিতবিদ্যৈবানিকৃষ্টবিদ্যৈব অজ্ঞান-চ্ছেদকত্বাদসিশিতখড়্গ ইব । তেন ছাতু খণ্ডয়তু । কথং বীজং অবীজঞ্চেত্যত আহ — বীজং যো বীজ-ভাবিতঃ । যথায়স্কান্তমণি-র্নিষ্ক্রিয়ত্বাদকারণং, অয়সঃ সন্নিধানে সতি সান্নিধ্যমাত্রেণ তৎপ্রবৃত্তৌ

ত্রিধা তু নটবদ্ যস্তু সৃষ্টি-স্থিতি-লয়েষু চ।
গুণৈর্ভবতি কার্য্যেষু স প্রসীদতু মে হরিঃ ॥ ২২ ॥
দশদেহাবতীর্ণো যো ধর্ম্মত্রাণায় কেবলম্।
অভ্যর্থিতঃ সুরৈঃ সর্ব্বৈঃ স প্রসীদতু মে হরিঃ ॥ ২৩ ॥
ব্রহ্মাদিস্তম্ব-পর্য্যন্তং প্রাণিজন্মন্দিরেঽমলঃ।
একো বসতি যো দেবঃ স প্রসীদতু মে হরিঃ ॥ ২৪ ॥
হংসখগঃ খসমঃ খাদিঃ খাতীতঃ খক্রিয়োঽখগঃ।
খং ব্রহ্ম খাদিভুক্ খাস্তে খমূর্ত্তিস্তমখাসনঃ ॥ ২৫ ॥

নিমিত্তত্বাৎ কারণম্। সর্ব্বপ্রাণিকর্ম্মাণি বীজানি তৈর্ভাবিতঃ। তেষাং ফলদানায়োন্মুখত্বেন বীজম্ ॥ ২১ ॥

ত্রিধেতি — রজঃসত্ত্বতমোরূপৈস্তু গুণৈস্ত্রিধা ব্রহ্মবিষ্ণুমহেশ্বররূপেণ যো ভবতি, স হরির্মে প্রসীদতু ॥ ২২ ॥

দশদেহেতি — দশদেহো মৎস্যাদিরূপঃ ॥ ২৩ ॥

ব্রহ্মাদীতি — ব্রহ্মাদি স্তম্বপর্য্যন্তমন্তর্য্যামিরূপেণ সর্ব্বপ্রাণিনাং স্থাবরজঙ্গমাত্মকানাং জন্মমন্দিরে যো বসতি, স একোঽমলো হরির্মে প্রসীদতু ॥ ২৪ ॥

হংসখগ ইতি — হৃদয়াকাশে গচ্ছতি বর্ত্তত ইতি হংসখগঃ উপাস্যত্বেন ; খসমঃ নিরংশত্বেন বিভুত্বেনাস্পৃষ্টত্বেনাকাশসমঃ। খমাকাশং তস্যাপ্যাদিঃ ; তস্যাপি কারণত্বাৎ। খাতীতঃ আকাশমপ্যতিক্রম্য বর্ত্ততে। আকাশে শূন্যেঽপি ক্রিয়া উৎপাদন ব্যাপারো যস্য। আকাশমপি যস্য কর্ম্মেত্যভিপ্রায়ঃ। অখগঃ গগনাখ্য আকাশাদপ্যধিকপরিমাণত্বান্নাকাশগঃ। বৈরিভির্ন গম্যত ইতি বা। ব্রহ্মশব্দো নির্ম্মলাকাশতুল্যে পরব্রহ্মণি বর্ত্ততে। তন্মধ্যে গতং খং রূপং ব্রহ্মতত্ত্বম্। খাদিভুক্ প্রলয়কালে আকাশাদি সকলকার্য্য-সংহর্ত্তা। আকাশাদিকার্য্যজাতং ব্রহ্মরূপগ্রস্তং

যদ্‌-ভাসা যন্মুদা যস্য সত্তয়া সংত্যজেজ্জগৎ ।
জাড্যং দুঃখমসত্ত্বঞ্চ স ভবানেব তন্ময়ঃ ॥ ২৬ ॥
ইদং সৃষ্ট্বা মোদতে বিশ্বং হৃত্বাক্তানশুচির্ভবেৎ ।
তৎসঙ্গতোঽপ্যসঙ্গস্ত্বং বিকারস্তেন তে ন হি ॥ ২৭ ॥
কেচিদ্ বুদ্ধিং পরে প্রাণং মনোঽহঙ্কারমান্তরম্ ।
কেচিচ্চ কায়-চৈতন্যং কায়মাত্রং পরেঽধমাঃ ॥
কেচিচ্চ পুরুষং শব্দং ব্রহ্ম কেচিৎ পরে শিবম্ ।
শক্তিঞ্চ চিন্ময়ীং কেচিদ গোবিন্দ ত্বাং কুমার্গগাঃ ॥
তীর্থাতীর্থানধিষ্ঠায় কেশাকেশি মিথো জনাঃ ।
যদ্বদন্তি পুনস্ত্বং হি চিৎসদানন্দলক্ষণঃ ॥ ২৮ ॥

বর্ত্তত ইতি বা । কল্পান্তে অমূর্ত্তিঃ আকাশস্থাপ্যন্তে মহাপ্রলয়ে ত্বং খমূর্ত্তিঃ, 'আকাশ অক্ষয়ো নিরবয়বোঽসঙ্গ ইত্যর্থঃ । অতস্ত্বমধ্যাসনঃ, যেনাসনঃ আসনঃ, ন আসনোঽপ্যাসনঃ ; অতস্ত্বং নির্মলাকাশ-স্বরূপ ইত্যর্থঃ ॥ ২৫ ॥

যদ্‌ভাসেতি — জগৎকর্ত্তুর্যস্য দেবস্য ভাসা প্রকাশেন জাড্যং ত্যজেৎ । আনন্দেন দুঃখং, সত্তয়া সদ্রূপেণ অসত্ত্বং সংত্যজেদিত্যর্থঃ । জগৎকর্ত্তৃ ॥ ২৬ ॥

ইদমিতি — ইদং বিশ্বং সৃষ্ট্বা । জীবভাবেন প্রবিষ্টং সৎ যৎ সহ মোদতে, ত্বয়া সহ মোদতে । হৃত্বা ভোক্তা জীবাভাবেন শবরূপেণ স্থিতম্ । বিশ্ব-সম্বন্ধতোঽপ্যাকাশবদসঙ্গত্বাদসঙ্গত্বেন তেন তে তব ন বিকারঃ ॥ ২৭ ॥

কেচিদিতি ত্রিভিঃ — কেচিৎ ত্বাং পুরুষং বদন্তি । কেচিচ্ছব্দং শব্দব্রহ্ম-সিদ্ধান্তে শব্দস্য জগৎকারণত্ব-প্রতিপাদনাৎ । কেচিৎ পাশুপতাঃ শিবং, কেচিৎ শাক্তাঃ চিন্ময়ীং শক্তিং বদন্তি । অধর্মাত্তারয়তীতি তীর্থং বেদঃ । তত্র ন্যায়বৈশেষিক-সাংখ্য-পাতঞ্জল-ধর্মমীমাংসা-ব্রহ্মমীমাংসা ষড় দর্শনম্ । স্মৃতি-পুরাণাদিকঞ্চ বেদার্থবাদিত্বাত্তীর্থমুচ্যতে পাশুপত-কাপালিক-ক্ষপণক-লোকায়তাদয়ো বেদবাহ্যাঃ অতীর্থং

ভূতযোগজ-চৈতন্যং চার্বাকাস্ত্বামুপাসতে।
সৌগতাঃ কথয়ন্ত্যেতে তর্কৈক্যাং বুদ্ধিং ক্ষণভঙ্গুরাম্ ॥ ২৯ ॥
শরীর-পরিমাণঞ্চ মন্যন্তে জিনদেবতাঃ।
ধ্যায়ন্তি পুরুষং সাংখ্যাস্ত্বাত্মানমেব প্রকৃতেঃ পরম্ ॥ ৩০ ॥

অথোৎসঙ্গং কেশাকেশিযুদ্ধং নবনূতীর্থাতীর্থ-সিদ্ধান্তমাশ্রিত্য সংস্কারাঃ সাক্ষাদজ্ঞানতো বদ বস্তুজাতমেব বদন্তি। কেচিৎ পুনশ্চৎসত্যজ্ঞানানন্দম্। 'সত্যং জ্ঞানমনন্তং ব্রহ্ম, বিজ্ঞানমানন্দং ব্রহ্ম —' ইত্যাদ্যুপনিষদ্বাক্যানাং সিদ্ধান্তবাদিনো বৈদান্তিকাঃ। অন্তর্দ্বিকাশ্চ তদ্বিষয়ে সংশয়ানা নানা নানাভ্যবদন্তি। আস্তরো বোদ্ধারত্বমিতি। কায়াকারভূত-সংহতৌ চৈতন্যমুৎপদ্যতে ইতি বদন্তি। কায়মাত্রং কায়-পরিমাণম্। পুরুষ ইতি শব্দো বস্তু সাংখ্য-প্রক্রিয়ায়াম্ ॥ ২৮ ॥

অথবা ভূতযোগজচৈতন্যমিতি শ্লোকত্রয়েণ কেচিৎ বুদ্ধিমিত্যাদি-শ্লোকত্রয়োক্তসিদ্ধান্তবাদিন এব কাংশ্চিন্মতান্তরগ্রহণপূর্বকং কথয়তি। কায়চৈতন্যমাত্র তত্ত্বং তদনাদিনমাহ — ভূতেতি। চার্বাকা লোকায়তিকাস্তু ভূতানাং পৃথিব্যাদীনাং শরীররূপসংযোগে চৈতন্যমুৎপদ্যতে, যথা চূর্ণপর্ণসংযোগে লৌহিত্যমুৎপদ্যতে। ন শরীরাৎ পৃথগ্‌ভূতো জীবো নাম জন্মান্তরফলভাক্ কশ্চিদুপলভ্যতে বদন্তি। কেচিদ্ বুদ্ধিমিতি তত্ত্বং তদ বক্তি। সৌগতা ইতি সৌগতা বৌদ্ধাস্তু তর্কৈকবেদনাত্মকং ক্ষণবিনাশিনীং বুদ্ধিমিতি বদন্তি ॥ ২৯ ॥

কায়মাত্রমাত্র তত্ত্বং তদ্ বক্তি — শরীর-পরিমাণমিতি। জিনদেবতা আর্হতা সিদ্ধান্তিনঃ জৈনাঃ। কেচিৎ পুরুষমিতি তত্ত্বং তদ্ বক্তি — ধ্যায়ন্তীতি। প্রকৃতিরচেতনা সক্রিয়া, পুরুষো নিষ্ক্রিয়শ্চেতনঃ, তৎ-সংযোগাৎ সর্বাঃ ক্রিয়াঃ প্রবর্তন্তে। ততশ্চ সংসারঃ। যস্তু প্রকৃতি-পুরুষৌ বিবিচ্য জানাতি, স প্রকৃতেঃ পরো ভিন্নো মুক্তরূপেণ তিষ্ঠতীতি সাংখ্য-প্রক্রিয়া ॥ ৩০ ॥

জন্মাদি-রহিতং পূর্ণং চিৎসত্তানন্দ-লক্ষণম্ ।
যদৌপনিষদা ব্রহ্ম চিন্তয়ন্তি পরাৎপরম্ ॥ ৩১ ॥
খাদি-ভূতানি দেহশ্চ (শ্চ) মনোবুদ্ধীন্দ্রিয়াণি চ ।
বিশ্বাভিজো ত্বমেবাত্র নান্যদ্বস্তোঽস্তি কিঞ্চন ॥ ৩২ ॥
ত্বমগ্নিস্ত্বং হবিস্ত্বং স্রুক্ হোতা মন্ত্রঃ ক্রিয়া ফলম্ ।
ত্বমস্তি নাস্তি বৈকুণ্ঠ ত্বামহং শরণং গতঃ ॥ ৩৩ ॥
ত্বং কর্মফলদাতা চ দীক্ষিতানাং ক্রিয়াক্ষয়ে ।
ত্বং সেতুঃ (হেতুঃ) সর্বভূতানাং ত্বমেব শরণং মম ॥ ৩৪ ॥
যুবতীনাং যথা যূনি যূনাঞ্চ যুবতৌ যথা ।
মনোঽভিরমতে তদ্বন্মনো মে রমতাং ত্বয়ি ॥ ৩৫ ॥

চিৎসত্তানন্দলক্ষণমিতি যত্তত্ত্বং তদ্ বক্তি । জন্মাদিরহিতমিতি জন্ম আদির্যেষাং তে জন্মাদিষড়্ভাববিকারাঃ । ঔপনিষদা বেদান্ত-সিদ্ধান্তিনঃ ॥ ৩১ ॥

খাদীতি — আকাশাদিমহাভূতানি । দেহাকার-পরিণতং চ ভৌতিকং, অত্র বস্তুমাত্রং ত্বমেব ॥ ৩২ ॥

ত্বমগ্নিরিতি — যজ্ঞাদিকর্মকর্তৄণাং কর্মকর্তৃকাদ্যকারকজাতং সর্বং ত্বমেব । অস্তীতি যদ্ ব্যবহ্রিয়তে তৎ সর্বং ত্বমেব । তদ্ব্যতিরিক্ত-স্যাভাবাৎ ॥ ৩৩ ॥ *

দীক্ষিতানাং যজ্ঞাদিকর্মকর্তৄণাং ক্রিয়া-সমাপ্তিমাত্রেণ স্বর্গাদি-সিদ্ধ্যদর্শনাৎ । ক্রিয়াক্ষয়ে জন্মান্তরেঽপি ত্বং কর্মফলদাতা সেতুর্মর্যাদাধারকঃ ॥ ৩৪ ॥

যুবতীনামিতি সুগমম্ ॥ ৩৫ ॥

---

* 'নাস্তিশব্দবাচ্যং জড়ং, অস্তিশব্দবাচ্যং চৈতন্যং'— শ্রীগীতাভাষ্যে (২।১৬) শ্রীবিদ্যাভূষণঃ ।

অপি পাপং দুরাচারং নরং ত্বৎপ্রবণং হরে।
নেক্ষন্তে কিঙ্করা যাম্যা উলূকাস্তপনং যথা ॥ ৩৬ ॥

তাপত্রয়াদ্যোঘশ্চ তাবৎ পীড়য়তে জনম্।
যাবন্ন যাতি নো নাথ ভক্ত্যা ত্বৎপাদপঙ্কজম্ ॥ ৩৭ ॥

যং ন স্পৃশন্তি গুণজাতি-শরীরধর্মা
যন্ন স্পৃশন্তি গতয়ঃ খলিবেন্দ্রিয়াণাম্।
যঞ্চ স্পৃশন্তি যতয়ো গতসঙ্গমোহা-
স্তস্মৈ নমো ভগবতে হরয়ে প্রতীচে ॥ ৩৮ ॥

স্থূলং বিলাপ্য করণে করণং নিদানে
তৎকারণং করণ-কারণ-বর্জ্জিতে চ।
ইত্থং বিলাপ্য যতয়ঃ প্রবিশন্তি যত্র
তং ত্বাং হরিং বিশদবোধঘনং নমামি ॥ ৩৯ ॥

অপি পাপমিত্যাদি সুগমম্ ॥ ৩৬ ॥

আধিদৈবিকমাধিভৌতিকমাধ্যাত্মিকমিতি তাপত্রয়ম্। বজ্রবিদ্যুৎ-পাতবর্ষাতপদুঃখমাধিদৈবিকম্। ব্যাঘ্রসর্পাদিভূতোদ্ভবমাধিভৌতিকম্। আধ্যাত্মিকং দ্বিবিধং শারীরং মানসঞ্চ। বাতপিত্তশ্লেষ্মাদিবৈষম্যনিমিত্তং শারীরম্, কামক্রোধাদি সমুদ্ভবং মানসম্। অঘৌঘঃ পাপসমূহঃ ॥ ৩৭ ॥

যমিতি। গুণজাতি-শরীরধর্মাঃ সত্ত্বাদয়ো গুণবর্গাঃ। গোত্বমনুষ্যত্বদেবত্বাদয়ো জাতয়ঃ। জন্মমরণাদয়ঃ শরীরধর্মাঃ। ইন্দ্রিয়াণাং গতয়ো যং ন স্পৃশন্তি। অবিষয়ীকুর্ব্বন্তি। পুত্রদারাদিভিঃ সংযোগঃ শরীরাদি-বিষয়ে আত্মাভিমানো মোহঃ। যং পরমাত্মানমনুভবন্তি তস্মৈ প্রত্যগ্রূপায় ॥ ৩৮ ॥

স্থূলং পৃথিব্যাদিকং করণে ভূতসূক্ষ্মে গন্ধাদৌ, তৎ করণং নিদানে আদিকারণে অহঙ্কারযুক্তপ্রধানে। তৎকারণং করণ-কারণ-বর্জ্জিতে শুদ্ধে পরব্রহ্মস্বরূপে। তং ত্বাং স্বচ্ছং নিবিড়াববোধ-স্বরূপম্ ॥ ৩৯ ॥

যদ্ধ্যান-সাধন-চূর্ণবশীকৃতাত্মা-
নৈশ্বর্য্যচারু-গুণিনীং সুখ-মোক্ষ-লক্ষ্মীম্ ।
আলিঙ্গ্য শেরত ইহাত্মসুখৈকভাজ-
স্তস্মৈ নমোঽস্তু হরয়ে মুনি-সেবিতায় ॥ ৪০ ॥

জন্মাদিভাব-বিকৃতেবিরহ-স্বভাবে
যস্মিন্নয়ং পরিচিনোতি ষড়ূর্ম্মিবর্গঃ ।
যং [illegible] ন সদা মদনাদি-দোষ-
স্তং [illegible]মমলং প্রণতোঽস্মি হার্দ্দম্ ॥ ৪১ ॥

যদ্ভান-সঙ্গতমলং বিজহাত্যবিদ্যাং
যদ্ভানবহ্নিজনিতং জগদেতি দাহম্ ।
যদ্ভানখড়্গমদসিষ্যতি-সংশয়ারিঃ
তং [illegible] হরিং বিশদবোধঘনং নমামি ॥ ৪২ ॥

যস্য ধ্যানমেব বশীকরণচূর্ণং তেন বশীকৃতাম্ । ঐশ্বর্য্যম্ অত্যন্তা-পরাধীনত্বমেব তেন সুন্দরগুণবতীম্ । সর্ব্বোপাধিরহিতস্বাত্মানন্দরূপমোক্ষ-সুখ এব লক্ষ্মীরিব । যস্য ব্রহ্মণো ধ্যানমাত্রেণ মোক্ষঃ প্রাপ্যত ইত্যর্থঃ ॥ ৪০ ॥

জন্মাদীতি — জায়তে অস্তি বর্দ্ধতে পরিণমতে অপক্ষীয়তে নশ্যতি — ষড়্ভাববিকারাঃ । জন্মাদি-ষড়্ভাব-বিকারাণাং বিরহ-স্বভাবো যস্মিন্ প্রধানে [illegible] । অশনায়া-পিপাসা-শোক-মোহ-জন্ম মৃত্যুরূপঃ ষড়ূর্মিবর্গশ্চ যং ন বাধতে । হার্দ্দমন্তর্যামিরূপেণোপাস্যমানং চ হৃদ্গতম্ ॥ ৪১ ॥

যদ্ভানমিতি — যস্য ব্রহ্মণো ভানং প্রকাশনমেব সঙ্গতং তৎ অলং পর্য্যাপ্তম্ । অবিদ্যাং পরমাত্মপরিজ্ঞানং অনাত্মন্যাত্মধিয়ম্ । সংসৃতি-হেতুত্বাদবিদ্যাং নিবন্ধনীং বিজহাতি নিবর্ত্তয়তি । দাহমেতীতি তৎ-সাক্ষাৎকারে সংসারো নিরস্তো ভবতি । যদ্ভানমেব উল্লসৎখড়্গ আত্ম-বিষয়ে সংশয় এব রিপুস্তং খণ্ডয়তীতি ॥ ৪২ ॥

ফলশ্রুতিঃ

চরাচরাণি ভূতানি সর্বাণ্যস্য হরেঃ পুরঃ।
যথা চ তেন সত্যেন পুরস্তিষ্ঠতু মে হরিঃ ॥ ১ ॥
যথা নারায়ণঃ সর্বং জগৎ স্থাবর-জঙ্গমম্।
তেন সত্যেন মে দেবঃ স্বং দর্শয়তু কেশবঃ ॥ ২ ॥
ভক্তির্যথা হরৌ নেহস্তি তদ্বরিষ্ঠা গুরৌ যদি।
মমাস্তি তেন সত্যেন স্বং দর্শয়তু 'মে হরিঃ' (কেশবঃ) ॥ ৩ ॥
তস্যৈবং শপথৈঃ সত্যৈর্ভক্তিং তস্যানুচিন্তয়ন্।
দর্শয়ামাস চাত্মানং সংপ্রীতঃ পুরুষোত্তমঃ ॥ ৪ ॥
ততো দত্ত্বা বরং তস্য পূরয়িত্বা মনোরথম্।
জগাম কমলাকান্তঃ স্তুত্যা বিপ্রেণ তোষিতঃ ॥ ৫ ॥
কৃতকৃত্যো দ্বিজঃ সোঽপি নারায়ণ-পরায়ণঃ।
শিষ্যৈঃ সার্দ্ধং জপন্ স্তোত্রং তস্মিন্নাস্তে তপোবনে ॥ ৬ ॥
কীর্তয়েদ্ য ইদং স্তোত্রং শৃণুয়াদ্ বাপি মানবঃ।
অশ্বমেধস্য যজ্ঞস্য প্রাপ্নোত্যবিকলং ফলম্ ॥ ৭ ॥
আত্মবিদ্যা-প্রবোধঞ্চ লভতে ব্রাহ্মণঃ সদা।
ন পাপে জায়তে বুদ্ধির্নৈব পশ্যত্যমঙ্গলম্ ॥ ৮ ॥
বুদ্ধিস্বাস্থ্যং মনঃ-স্বাস্থ্যং স্বাস্থ্যমৈন্দ্রিয়কং তথা।
নৃণাং ভবতি সর্বেষামস্য স্তোত্রস্য কীর্তনাৎ ॥ ৯ ॥
বিচার্য্যার্থং জপেদ্ (পঠেদ্) যস্তু শ্রদ্ধয়া তৎপরো নরঃ।
স বিধুয়েহ পাপানি লভতে বৈষ্ণবং পদম্ ॥ ১০ ॥

বাঞ্ছিতান্লভতে কামান্ পুত্রান্ প্রাপ্নোত্যনুত্তমান্।
দীর্ঘমায়ুর্বলং বীর্য্যং লভতে সর্বদা পঠন্ ॥ ১১ ॥

তিলপাত্র-সহস্রেণ গোসহস্রেণ যৎফলম্।
তৎফলং সমবাপ্নোতি য ইমাং কীর্ত্তয়েৎ স্তুতিম্ ॥ ১২ ॥

ধর্মার্থকামমোক্ষাণাং যং যং কাময়তে চ সঃ।
অচিরাত্তমবাপ্নোতি স্তোত্রেণানেন মানবঃ ॥ ১৩ ॥

আচারে বিনয়ে ধর্মে জ্ঞানে তপসি সন্নয়ে।
নৃণাং ভবতি নিত্যং ধীরিমং সংশৃণ্বতাং স্তুতিম্ ॥ ১৪ ॥

মহাপাতকযুক্তোঽপি যুক্তো বা সর্ব-(হ্যুপ-) পাতকৈঃ।
সদ্যো ভবতি শুদ্ধাত্মা স্তোত্রস্য পঠনাৎ সকৃৎ ॥ ১৫ ॥

প্রজ্ঞালক্ষ্মী-যশঃ-কীর্ত্তি-জ্ঞান-ধর্ম-বিবর্দ্ধনম্।
দুষ্টগ্রহোপশমনং সর্বাশুভ-বিনাশনম্।
সর্বব্যাধিহরং পথ্যং সর্বারিষ্ট-নিসূদনম্ ॥ ১৬ ॥

দুর্গতেস্তারণং স্তোত্রং পঠিতব্যং দ্বিজাতিভিঃ।
নক্ষত্রগ্রহপীড়াসু রাজদৈবভয়েষু চ ॥ ১৭ ॥
অগ্নিচৌরনিপাতেষু সদা সংকীর্ত্তয়েদিদম্।
সিংহব্যাঘ্রভয়ং নাস্তি নাভিচার-(নাস্তিচৌর-) ভয়ং তথা ॥ ১৮ ॥
প্রেতভূতপিশাচেভ্যো রাক্ষসেভ্যস্তথৈব চ।
পূতনাজৃম্ভকেভ্যশ্চ বিঘ্নেভ্যশ্চৈব সর্বশঃ ॥ ১৯ ॥
নৃণাং কচিদ্ভয়ং নাস্তি স্তবে হ্যস্মিন্ প্রকীর্ত্তিতে।
বাসুদেবস্য পূজাং যঃ কৃত্বা স্তোত্রমুদীরয়েৎ।
লিপ্যতে পাতকৈর্নাসৌ পদ্মপত্রমিবাম্ভসা ॥ ২০ ॥

গঙ্গাদিসর্বতীর্থেষু স্নববৈর্যাতি যাং গতিম্ ।
তাং গতিং সমবাপ্নোতি পঠন্ পুণ্যামিমাং স্তুতিম্ ॥ ২১ ॥
এককালং দ্বিকালং বা ত্রিকালং বাপি যঃ পঠেৎ ।
সর্বদা সর্বকার্যেষু সোঽক্ষয়ং সুখমশ্নুতে ॥ ২২ ॥
চতুর্ণাং সাঙ্গবেদানাং ত্রিরাবৃত্ত্যা হি যৎফলম্ ।
তৎফলং লভতে স্তোত্রমধীয়ানঃ সকৃন্নরঃ ॥
অক্ষয়ং ধনমাপ্নোতি স্ত্রীণাং ভবতি বল্লভঃ ॥ ২৩ ॥
পূজ্যো ভবতি লোকেঽস্মিন্ শ্রদ্ধয়া সংস্মরন্ স্তুতিম্ ।
সর্বদা সম্পদা যুক্তো বিপদং নৈব পশ্যতি ॥ ২৪ ॥
গোভিন হীয়তে স্তোত্রং নিত্যং যঃ পরিকীর্তয়েৎ ।
অলক্ষ্মীঃ কালকলনং (কালকর্ণে চ ?) দুঃস্বপ্নং দুর্বিচিন্তিতম্ ॥২৫॥
সদ্যো নশ্যতি ভক্তানামেতং সংশৃণ্বতাং স্তবম্ ।
প্রাতরুত্থায় যোঽধীতে শুচিস্তদ্গতমানসঃ ।
অক্ষয়ং লভতে সৌখ্যমিহ লোকে পরত্র চ ॥ ২৬ ॥
দেবদ্যুতি-প্রণীতং হি বিষ্ণুপ্রীতিকরং শিবম্ ।
বিষ্ণু-প্রসাদজননং বিষ্ণুদর্শন-কারণম্ ॥ ২৭ ॥
যোগসারমিদং নাম স্তোত্রং পরমপাবনম্ ।
যঃ পঠেৎ সততং ভক্ত্যা বিষ্ণুলোকং স গচ্ছতি ॥ ২৮ ॥
ইতি তে কথিতং স্তোত্রং পুণ্যং পরমপাবনম্ ।
ইত ঊর্দ্ধং প্রবক্ষ্যামি পিশাচস্য চ মোক্ষণম্ ॥ ২৯ ॥

ইতি শ্রীপদ্মপুরাণে উত্তরখণ্ডে বশিষ্ঠদিলীপ-সংবাদে মাঘমাহাত্ম্যে
অষ্টাত্রিংশদধিকশততমোঽধ্যায়ঃ ।

অনুবাদকের মঙ্গলাচরণ

(শ্রী)গিরিধারী বিপিনবিহারী শ্রীহরিমোহন।
গোবিন্দ নবদ্বীপচন্দ্র শ্রীরাধারমণ॥
জগন্নাথ গৌরকিশোর নিত্যানন্দ রাম।
ইঁহাদের পাদপদ্মে অনন্ত প্রণাম॥
ভূমিষ্ঠ হইয়া বন্দি বৈষ্ণবের গণ।
কৃপা করি' মোর শিরে ধরহ চরণ॥
পদ্মপুরাণোক্ত 'যোগসারে'র টীকা।
শ্রীজীব-গোস্বামি-কৃত সংশয়-নাশিকা॥
তোমা-সভার শ্রীচরণ ধরিয়া বুকেতে।
ভাষা-অনুবাদে কহি যথাশক্তিমতে॥
কৃপা কর, শক্তি সঞ্চার, মোর হৃদে ব'স।
অজ্ঞানতমঃ নাশ করি' সদর্থ প্রকাশ'॥

শ্রীগৌরাঙ্গ:

অনুবাদ

পূর্বারম্ভ

(১) একসময়ে বৈশাখমাসে একাদশী-তিথিতে **দেবদ্যুতি**-মুনি হরির পূজা করিয়া এক বিচিত্র রমণীয় স্তুতি পাঠ করিলেন। (২) সেই স্তুতিপাঠে পরমানন্দিত হইয়া তৎক্ষণাৎ দেবদেব শ্রীহরি স্বয়ং গরুড়ে আরোহণপূর্বক সেই মুনির সম্মুখে আগত হইলেন। (৩) গরুড়বাহন নবনীরদকান্তি চতুর্বাহু বিশালনয়ন সর্বালঙ্কারভূষিত সেই শ্রীহরিকে দর্শন করিয়া (৪) সেই ব্রাহ্মণ পুলকাঞ্চিত কলেবরে ও অশ্রুসিক্তনেত্রে তখন কৃতকৃতার্থ হইয়া ভূমিতলে দণ্ডবৎপতিত হইলেন। (৫) আনন্দাতিরেকবশতঃ তাঁহার যেন ব্রহ্মাণ্ডমধ্যে স্থান-সঙ্কুলান হইতেছে না; তিনি নিজ দেহ বিস্মৃত হইলেন; অহো! তিনি যেন ব্রহ্মীভূত (ব্রহ্মময়) হইয়া গেলেন। (৬) তৎপরে সেই বৈষ্ণব-মুনিকে শ্রীহরি প্রীতিভরে সম্ভাষণ করিলেন 'দেবদ্যুতে! আমি বেশ জানি, তুমি আমার ভক্ত ও আমাকেই আশ্রয় করিয়াছ। (৭) তুমি সকল কর্ম্ম আমাতেই অর্পণ করিয়াছ, তোমার প্রাণ ও মন সর্বদা আমাতেই আছে; হে অনঘ! আমি তোমার এই তোত্রে প্রসন্ন হইয়াছি, তুমি বর প্রার্থনা কর।' (৮) শ্রীহরির এই কথা শুনিয়া তখন সেই মুনি উত্তর দিলেন,—"হে দেবদেব! হে পদ্মপলাশলোচন! তুমি নিজ মায়ার (যোগমায়ার) বিগ্রহ ধারণ করিয়াছ। (৯) হে দেব! তোমার দর্শন অপেক্ষা অন্য বর

দুর্লভ নহে। ব্রহ্মাদি দেবগণ, সনকাদি যোগিগণ, (১০) কপিলাদি সিদ্ধগণ তোমাকে সাক্ষাৎ করিতে ইচ্ছা করেন। পরাৎপর তোমার দর্শন পাইলে জীবের মোহ-জনক শৃঙ্খল, (১১) অহংতা-মমতা-রূপ পাশসমূহ সকারণ বিনাশপ্রাপ্ত হয়। হে জগন্নাথ! তোমার দর্শন করিয়া অদ্য আমার জন্ম, কর্ম ও বুদ্ধির ফল আবির্ভূত হইয়াছে। (১২) হে দেবেশ! ইহা (তোমার দর্শন) ব্যতিরেকে অন্য বরের আর কোন প্রয়োজন নাই। (১৩-১৪) 'হৃদয়ে তোমার চরণকমল রাখিয়া দিবানিশি ত্বদ্গতচিত্তে ভক্তিভরে চিন্তা করিব' — এই বরই আমি প্রার্থনা করি যে, তোমাতে আমার অচলা, কেবলা (অনন্যা) ভক্তি হউক। (১৫) হে নাথ! এতদ্ব্যতীত অন্য বর প্রার্থনা করি না।" তাঁহার এই বাক্য শ্রবণ করিয়া প্রসন্নবদনে ও প্রসন্নহৃদয়ে হরি সেই ব্রাহ্মণকে বলিলেন, — "তাহাই হউক। তোমার তপশ্চরণে অন্য কোন বিঘ্নও আর হইবে না। (১৬) যে-সকল মানব তোমার রচিত এই স্তোত্র পাঠ করিবে—তাহারাও মদ্বিষয়ে অচলা ভক্তি লাভ করিবে। (১৭) যে-কিছু ধর্ম্মানুষ্ঠান আছে — তৎসকল সাঙ্গ (পূর্ণ) হইবে এবং তাহাদের (ভগবজ্-) জ্ঞানেও পরমা নিষ্ঠা সদা কালের জন্য বিরাজ করিবে।" (১৮) দেবদেব শ্রীহরি ব্রাহ্মণকে এই কথা বলিয়া তিরোধান করিলেন এবং সেইদিন হইতে দেবদ্যুতিও নারায়ণ-পরায়ণ হইলেন।

(১৯) তখন দিলীপ বলিলেন — হে মহর্ষে! অনুগৃহীত হইলাম। যেমন বিষ্ণুপাদস্পৃষ্টা গঙ্গা লোককে পবিত্র করে, তদ্রূপ অদ্য আমিও এই বিষ্ণুর প্রসঙ্গযুক্ত কথায় পবিত্রীকৃত হইয়াছি। (২০) এক্ষণে সেই অনঘ ব্রাহ্মণ-কর্তৃক রচিত স্তোত্রটী বলুন, যদ্দ্বারা মাধব প্রসন্ন হইয়াছিলেন — তাহা শুনিতে আমার বড় কৌতূহল হইয়াছে। (২১) হে বিপ্র! মনে হয় যে, তোমার প্রসাদে আমি মনোরথ প্রাপ্ত হইয়াছি; অহো! মহাপুরুষের সঙ্গ কাহাকে না মহাজন করে?

নির্বিশেষ চিন্মাত্ররূপকে (শুদ্ধ আত্ম-স্বরূপকে) স্পর্শ করে এবং আকাশ যেরূপ মেঘজালে ব্যাপ্ত হইয়াও তৎস্পর্শবিহীন, তদ্রূপ দেহসমূহে বর্ত্তমান থাকিয়াও তুমি দেহদোষ-সমূহে নির্লিপ্ত থাক; তুমি ঐ চিদ্রূপা বৃত্তিদ্বারাই যোগিগণের নিকট প্রতিভাত হইয়া থাক।

(৬) যে আনন্দপ্রচুরা বুদ্ধি দেহভাবে অর্থাৎ অনাত্মস্বরূপ দেহে জাগ্রত (বর্ত্তমান) থাকে না, যেহেতু, অনাত্মা ও আত্মায় অত্যন্ত ভেদ। কিন্তু উহাই আবার স্ব-স্বরূপে অর্থাৎ নির্বিশেষ চিন্ময়স্বরূপে কখনও নিদ্রিত হয় না অর্থাৎ সেই স্বরূপ সর্ব্বদা অনুভব করে। হে বিষ্ণো! তুমিই সেই আনন্দময়ী বুদ্ধি, ইহাতে আর সংশয় নাই।

(৭) সাংখ্যমতে — মূলপ্রকৃতি অবিকারা, মহৎ প্রভৃতি সাতটি তত্ত্ব প্রকৃতি-বিকার। ষোল তত্ত্ব কেবল বিকারই, আর পুরুষ প্রকৃতিও নয়, বিকৃতিও নয় — ইহাই পঞ্চবিংশতি তত্ত্ব। তন্মধ্যে সত্ত্ব, রজঃ ও তমের সাম্যাবস্থা — প্রকৃতি। প্রকৃতি হইতে মহত্তত্ত্ব (বুদ্ধিতত্ত্ব), তাহা হইতে অহঙ্কার (দেহে ও ইন্দ্রিয়াদিতে অহঙ্কার) এবং তাহা হইতে পঞ্চতন্মাত্র। একাদশ ইন্দ্রিয় (জ্ঞানেন্দ্রিয় পাঁচ, কর্ম্মেন্দ্রিয় পাঁচ ও মন) এবং পৃথিবী প্রভৃতি পঞ্চ মহাভূত — ইহারা কেবল বিকৃতিই। মহৎ প্রভৃতির যে দ্বৈবিধ্য অর্থাৎ প্রকৃতি-বিকৃতি স্বরূপ — সাত এবং বিকারগণ ষোড়শ তত্ত্ব — এই সবই তুমি। হে নাথ! ইহাতে যে নানাবিধ কল্পনা করা হয় — তাহা অজ্ঞজনেরই কার্য্য।

(৮) হে প্রধান! 'আত্মাই পুত্ররূপে জন্মিয়া থাকে' — এই শ্রুতি-প্রমাণবলে যেরূপ পুত্রপৌত্রাদিরূপে পিতারই নানাবিধ কল্পনা করা হয়, তদ্রূপ তোমাকেও লক্ষ্য করিয়া ব্রহ্মা, রুদ্র ও শিবরূপে ত্রিবিধ কল্পনাও হইয়া থাকে।

(৯) ক্রান্তদর্শী আত্মতত্ত্ব-সাক্ষাৎকারী জনগণ যে ব্রহ্মস্বরূপের প্রকাশে নিখিল জগৎকে সত্ত্বরজস্তমঃ প্রভৃতির দোষশূন্য এবং শুক্লরক্তাদি গুণ-রহিত চিদ্রূপ অখণ্ড বলিয়া প্রতীতি করেন — সেই প্রাকৃতগুণ-বর্জ্জিত বিষ্ণুতত্ত্বকেই প্রণাম বা স্তব করি।

(১০) জগতের পঙ্ক অজ্ঞানাদির অর্থাৎ পুত্র ধন-জনবাসনাবিমুক্ত মানবগণ যাঁহার জ্ঞানলাভে বেদবিহিত কর্ম্ম ত্যাগ করিয়া থাকেন — সেই শুদ্ধ (নিরুপাধি) ব্রহ্মকে নমস্কার করিতেছি।

(১১) যে পরমাত্মার জ্ঞান লাভ করিয়া কোনও (ব্রহ্মৈকনিষ্ঠ) বাসনাবিহীন মানবগণ সমগ্রলোককে পরমাত্মাতে অবস্থিত দেখিয়া (বুঝিয়া) স্ত্রীপুত্রাদির স্পৃহা করেন না —

(১২) এবং যাঁহার জ্ঞানলাভে অন্তরে (প্রকৃত বোধে) সর্ব্বজীবে আপনাকে এবং অন্যান্য বস্তুকেও সর্ব্বত্র অবলোকন করে, সেই সদ্রূপ হরিকে নমস্কার করি।

(১৩) কোনও কোনও মহাপুরুষ যাঁহার জ্ঞানে নিজ দেহকে সর্পের খোলসের ন্যায় দেখিয়া 'আমি ব্রহ্ম' বলিয়া ধ্যান করে — সেই মাধবকে নমস্কার করি।

(১৪) দেহ, ইন্দ্রিয় ও অন্তঃকরণ প্রভৃতিতে 'অহং-বুদ্ধি' এবং পুত্রাদিতে 'মমত্ব-বুদ্ধি'ই মায়া-মোহ। ইহা নানাপ্রকারে প্রতিভাত হইয়া থাকে। দেহত্যাগকালে নিরন্তর অন্তঃকরণে যাঁহার জ্ঞানলাভে এই মায়ামোহও বিলীন হইয়া থাকে, সেই মায়ানাশকরূপ হরিকে স্তব করি।

(১৫) মরণে কিংবা জীবদ্দশায় যাঁহার নাম-স্মরণ-প্রভাবে যে-কোনও লোকই হউক না কেন [বর্ণাশ্রমাদি-বহির্ভূত হইলেও] সদ্যঃ পাপরাশি অর্থাৎ সংসার বিমুক্ত হয়, সেই চিদাত্মা হরিকে প্রণাম করি। 'সদ্যঃ'-শব্দে পুনরাবৃত্তি-রহিত গতিই লক্ষ্য।

(১৬) এক্ষণে ভগবানের নামের যে কোনও প্রকারে স্মরণ বা কীর্ত্তন করিলে যে সর্ব্বানর্থনাশ হইয়া পরমানন্দ-আস্বাদ হয় — তাহাই বলিতেছেন। আধ্যাত্মিক প্রভৃতি তাপত্রয়ের হেতু বলিয়া মোহকে অনল-(অগ্নি) স্বরূপ বলা হইয়াছে। সেই মোহানলের যে জ্বালা অর্থাৎ শিখা-স্বরূপ তাপ উঠিতেছে — তাহাতেই জীবনিচয় নিরন্তর জ্বলিতেছে। বিষ্ণুর নামরূপ পদ্মের [শীতল স্বাস্থ্যকর] ছায়া (আভাস) প্রাপ্ত হইয়াও তাহারা আর দগ্ধ হয় না অর্থাৎ যে-কোনও প্রকারে নামের

সংস্পর্শে আসিলে জীব তাপত্রয়বিমুক্ত হইতে পারে এবং নিত্যই অনন্তরূপ পরমানন্দ সম্ভোগ করিতে পারে। বিষ্ণুধর্মোত্তরে উক্ত হইয়াছে — 'নারায়ণ'-শব্দমাত্র উচ্চারণ করিলেই জীব দুঃখ-রহিত [illegible] হয়। 'নারায়ণ'-শব্দমাত্র [illegible] এই যে, ইহাতে অপরাধ বা অক্ষমাদির অপেক্ষাও নাই। যেমন অজামিল মরণকালে পুত্রের উদ্দেশে 'নারায়ণ'-নাম উচ্চারণ করিয়া মুক্ত হইয়াছিলেন। [illegible] অপেক্ষা করে না; অজ্ঞ বালক [illegible] জলরাশির জলে [illegible] অগ্নি নিক্ষেপ করিলে সে তাহা দগ্ধ করিবেই। অন্যবুদ্ধিতে অমৃত পান করিলে অমরত্বলাভ হইবেই; আর [illegible] বিষপান করিলে মরণ অবশ্যম্ভাবী।

(১৭) যাঁহার স্মরণমাত্রে লোক পাপমুক্ত হয়, রোগ বা দুঃখাদিও থাকে না — সেই আনন্দময় বিষ্ণুকে প্রণাম করি।

(১৮) বেদজাত শব্দ সাক্ষাদ্ভাবে বা পরম্পরাক্রমে বিষ্ণুকেই লক্ষ্য করিতেছে এবং চৈতন্যরূপ জ্ঞানস্বরূপ সর্বপদার্থ অন্তর্ভূত হয়। আবার চৈতন্যের [illegible] ভিন্ন সকলই অচেতন। কাজেই শব্দার্থ ও চৈতন্যের যখন [illegible] বিষ্ণু-সম্বন্ধ, তখন প্রার্থনা করি, — হে নাথ! এই সংসারে মন যেন আমাকে স্পর্শ না করে।

(১৯) যিনি অনন্ত পরমাত্মা — তিনিই সৃষ্টির আদিকালে '[illegible] হইব' এই পর্যালোচনা করিলেন। [illegible] সৃষ্টি করিয়া তাহাদের নিয়ামকরূপে তাহাতে জীবরূপে প্রবিষ্ট হইলেন। সেই হরি আমার [illegible] হউন।

(২০) নারায়ণ [illegible] পরমাত্মা — ইহা [illegible] সত্য বটে, তখন [illegible] আমার বিষ্ণুভক্তি নির্বিঘ্নে আচরিত হউক অর্থাৎ নিরপরাধ হরিভক্তির উদয় হউক।

(২১) পরমাত্মা সংসারের প্রতি কারণও নহে, আবার অকারণও নহে। যেমন অগ্নিজ্ঞান নিষ্ক্রিয়াবস্থায় অকারণ, আবার লৌহের

[illegible] [illegible] [illegible] [illegible] নিমিত্ত-কারণ হইয়া থাকে; [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] নিয়োজিত হইয়া সেই সব [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] বলা হয়। সেই বিষ্ণু [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] অজ্ঞান, তাহা আত্মজ্ঞান-নাশক [illegible] [illegible] [illegible] খণ্ডন (নাশ) করুন।

(২২) [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] সত্ত্ব ও তমোরূপ গুণত্রয়ের [illegible] [illegible] [illegible] ব্রহ্মা, বিষ্ণু ও মহেশ্বর) প্রকট করেন—[illegible] [illegible] [illegible] [illegible] হউন।

[illegible] [illegible] [illegible] [illegible] হইয়া ধর্মরক্ষার জন্যই কেবল [illegible] [illegible] [illegible] করেন—সেই হরি আমার প্রতি [illegible] [illegible]।

[illegible] [illegible] [illegible] [illegible] অন্তর্যামি-[illegible] [illegible] [illegible] আমার প্রতি [illegible] হউন।

[illegible] [illegible] [illegible] অর্থাৎ [illegible] আছ [illegible] [illegible] [illegible] বিষ্ণু ও [illegible] বলিয়া আকাশ-সম, আবার [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] অতিক্রম করিয়া বিরাজ-[illegible] [illegible] [illegible] [illegible] উৎপাদন-পালনরূপ ক্রিয়া-[illegible] [illegible] [illegible] বলিয়া সক্রিয়; আবার আকাশ [illegible] [illegible] [illegible] বলিয়া অরূপ অথবা 'খ' [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] বলিয়াও আখ্যা; নিরাকাশ তুমি [illegible] [illegible] [illegible] আকাশ প্রভৃতি সকল [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] ব্রহ্মরূপে গ্রস্ত (লীন) হয় বলিয়া [illegible]। [illegible] অর্থাৎ মহাপ্রলয়ে [illegible]-স্বরূপ [illegible] [illegible] বিরাজমান বলিয়া সর্বৈব; যেহেতু, তুমি অখ্যাসম [illegible] [illegible]।

(২৬) জগৎকর্ত্তা যে দেবতার প্রকাশে জগৎ জাড্য ত্যাগ করে, যাঁহার আনন্দে দুঃখহানি হয় এবং যাঁহার সত্তায় অসত্ত্ব বিনাশ হয় — সেই তুমিই তোমার অর্থাৎ সচ্চিদানন্দময় বিষ্ণু।

(২৭) এই জগৎ সৃষ্ট হইয়া তোমাকর্ত্তৃক জীবন (জীবাত্মা) রূপে প্রবিষ্ট হইলে তবে তোমারই সাহায্যে আনন্দ পায় অর্থাৎ সচেষ্ট হয়। আবার তুমি ইহাকে ত্যাগ করিলে জীবাত্মার অভাবে শব হইয়া অশুচি হয়। পক্ষান্তরে, তুমি বিশ্বের সঙ্গ করিলেও আকাশের ন্যায় অনাসক্ত থাক বলিয়া তাহাতে তোমার বিকার-শঙ্কাও হয় না।

(২৮-৩২) হে গোবিন্দ! তুমি সচ্চিদানন্দ-স্বরূপ, কিন্তু তোমার প্রকৃত তত্ত্ব অবগত না হইয়া নানাজন নানা পন্থার সৃষ্টি করিয়াছে। অন্যায় হইতে রক্ষা করেন বলিয়া বেদকে 'তীর্থ' বলা হয়; তন্মধ্যে ন্যায়, বৈশেষিক, সাংখ্য, পাতঞ্জল, পূর্ব্বমীমাংসা ও ব্রহ্মমীমাংসা প্রভৃতি দর্শন-ছয়টি এবং স্মৃতি পুরাণাদিও বেদানুবাচক বলিয়া 'তীর্থ'-পদবাচ্য। বৌদ্ধ, পাশুপত, কাপালিক, জৈন, চার্ব্বাক প্রভৃতি বেদ-প্রামাণ্য যথার্থতঃ স্বীকার করেন না বলিয়া 'বেদবাহ্য'। ইহারা সচ্চিদানন্দ পরমব্রহ্ম তোমার স্বরূপ সাক্ষাদ্ভাবে না জানিয়া বৈদিক বা অবৈদিক সিদ্ধান্ত আশ্রয়পূর্ব্বক নানা মতাগ্রহবশতঃ কেশাকেশি যুদ্ধে প্রবৃত্ত হয়েন। ক্ষণিকবাদী বৌদ্ধগণ বেদবিরুদ্ধ তর্কের আশ্রয় করিয়া অনাদিকালসিদ্ধ বুদ্ধিকেই পরমাত্মা বলেন; কেহ বা প্রাণকে (প্রাণময় কোষকে), কেহ মনোময় কোষকে! আর্ব্বাচীন ঋষিগণ হৃদয়স্থিত অন্তর্য্যামী বুদ্ধ্যাদির প্রবর্ত্তক জ্ঞানশক্তিপ্রদায়ক দেব উৎকর্ষ ব্রহ্মকে — [illegible], কেহ বা আনন্দময় অবতারকে নির্দ্দেশ করেন।

জিনদেবতা ক্ষপণকগণ বলেন, — পদার্থ দ্বিবিধ — জীব ও অজীব; জীব চেতন, শরীরপরিমাণ ও সাবয়ব। ...... পৃথিবী প্রভৃতির কারণভূত পরমাণুসকল চতুর্ব্বিধ এবং উহাদের পরিণাম হইতেই পৃথিব্যাদি

বিশেষ বিশেষ বস্তু। ইঁহারা কিন্তু স্থির মিলনকর্তা চেতন বস্তুর অস্তিত্ব স্বীকার করেন না। চার্বাকগণ বলেন, — পৃথিবী প্রভৃতি ভূতের সহিত শরীরাকারাদির সংযোগে চৈতন্য উৎপন্ন হয়, যেমন তাম্বূল-পত্র ও চূর্ণ (চূণ) সংযোগে লৌহিত্য (লালবর্ণ) জন্মে। শরীর হইতে পৃথক্ জীব নামে কোনও বস্তু অস্তিত্বের কল্পনা করা হয় না। ইঁহাদের সকলের মতই বেদ-বিরুদ্ধ বলিয়া নিরস্ত। সাংখ্য-দর্শনে উক্ত হইয়াছে — প্রকৃতি অচেতন ও ক্রিয়াশীল; পুরুষ নিষ্ক্রিয় ও সচেতন। প্রকৃতি ও পুরুষের সংযোগেই সকল ক্রিয়ার প্রবৃত্তি হয় — তাহাতেই জীবের সংসার। যে সাধক প্রকৃতি ও পুরুষকে পৃথগ্‌রূপে অবগত হন, তিনি প্রকৃতিপারে বর্তমান অর্থাৎ মুক্ত হন। আবার পঞ্চরাত্র-সিদ্ধান্তে শব্দমূলক সৃষ্টির উল্লেখ থাকায় শব্দকেই ব্রহ্মতত্ত্ব বলা হইয়াছে। পাশুপতগণ শিবকে এবং শাক্তগণ চিন্ময়ী শক্তিকেই পরতত্ত্ব বলিয়া নির্ণয় করিয়াছেন। ইঁহারা সকলে সচ্চিদানন্দ স্বরূপ গোবিন্দেরই পারতম্য স্বীকার না করায় এবং তাঁহারই অংশ-কলাদির অবিধিপূর্বক উপাসনা করায় (গীতা ৯।২৩-২৫) ইহাদিগকে ক্রমশঃ গমনশীল বলিতে হয়। আবার বেদান্তবাদিগণ জন্মাদি-রহিত (ষড়্‌বিধ বা বিকারশূন্য), পূর্ণ সচ্চিদানন্দঘন পরাৎপর ব্রহ্মস্বরূপে তোমাকেই চিন্তা করিয়া থাকেন। [সর্বান্তে বেদান্তবাদীদের উল্লেখ থাকায় ইঁহাদের মতই সমীচীন বলিতে হইবে।]

(১৮) আকাশাদি পঞ্চ মহাভূত, দেহ (দেহাকারে পরিণত) মন, বুদ্ধি, ইন্দ্রিয় প্রভৃতি এবং বিদ্যা, অবিদ্যা প্রভৃতি যাহা কিছু — সবই তুমি, যেহেতু এই পৃথিবীতে তোমা হইতে অন্য কিছুরই উপলব্ধি হয় না।

(১৯) হে বৈকুণ্ঠ (বিষ্ণো)! যজ্ঞাদি কর্মের অনুষ্ঠাতৃগণের তুমিই সকল বস্তু — তুমি অগ্নি, তুমি হবিঃ, স্রুক্, হোতা, মন্ত্র ও ক্রিয়াফল। 'অস্তি' (বর্তমান আছে) এই শব্দে যাহা ব্যবহৃত হয় — তৎসকলই তুমি। তোমা ব্যতিরেকে অন্য কিছুরই সত্তা নাই। আমি তোমারই শরণাগত হইলাম।

(৩৮) [illegible] অনুষ্ট (পুণ্যনিশেষ) ভজ [illegible] দীক্ষিত হইয়াছেন, [illegible] তাঁহাদের [illegible] হয় না। [illegible] দান করা। [illegible] আমি [illegible]

(৩৯) [illegible] বৃক্ষগণ যেমন [illegible] চিত্ত হয় [illegible] মন [illegible]

(৩৪) [illegible] উত্তম [illegible] মানব পাপী ও [illegible] না; যেমন লোকগণ [illegible]

(৩৫) [illegible] করণ [illegible] অবস্থার [illegible] পর্যন্ত [illegible] পাইয়া [illegible] আবির্ভাব [illegible] বাধ, [illegible] ক্রোধাদি [illegible]

(৩৬) [illegible] লোভ, মোহাদি, দ্বেষাদি [illegible] না —তিনি [illegible] (আত্মা) [illegible] শরীরাদি বিষয়ে আত্ম[illegible] যাঁহাকে স্পর্শ (প্রাপ্তি) করেন [illegible] প্রণাম করি।

(৩৭) [illegible] তাঁহার করণে [illegible] শান্ত [illegible], [illegible], অ[illegible] আ[illegible] এবং

তাহাকেও [illegible] রহিত শুদ্ধ [illegible] বিলীন করিয়া যাহাতে অবশিষ্ট হয়, সেই [illegible] জ্ঞানস্বরূপ হরি, তোমাকে নমস্কার করি।

(১৭) [illegible] সুন্দর [illegible] বশীকরণচূর্ণ-প্রয়োগে বশীকৃত [illegible] সুন্দর গুণযুক্তা, [illegible]-([illegible]) [illegible] আলিঙ্গন করিয়া সুখে শয়ন করে অর্থাৎ যে [illegible] হরিকে নমস্কার করি।

(১৮) [illegible] — এই ছয় ভাববিকার যে [illegible], শোক, মোহ ও জরা-মৃত্যু [illegible] পাপাদি-দোষ-দুষ্ট যাঁহাকে কখনও [illegible] সর্বব্যাপী বিশুদ্ধ বাসুদেবকে প্রণাম করি।

(১৯) [illegible] প্রকাশে [illegible] অজ্ঞান ও অনাত্মায় আত্মবুদ্ধি [illegible] বিনাশ হয় — যাঁহার প্রকাশরূপ অগ্নিতে জগৎ [illegible] নিবৃত্ত হয় এবং যাঁহার প্রকাশরূপ [illegible] সংসারোচ্ছেদনে সুনিপুণ — সেই স্বপ্রকাশ [illegible], তোমাকে নমস্কার করিতেছি।

ফলশ্রুতি

(১) যেমন [illegible] শ্রীহরির সম্মুখে বিরাজ করে, [illegible] আমার সম্মুখেও শ্রীহরি বিরাজমান হউন। (২) যেমন [illegible] জগৎ ব্যাপিয়া বর্তমান — এই [illegible] আমাকে তাঁহার স্বরূপ দর্শন করান। (৩) হরিতে যেমন আমার ভক্তি আছে — তাহা হইতেও [illegible] যদি আমার উহাতে নিষ্ঠা থাকে, তবে এই [illegible] হরি আমার [illegible] হউন। (৪) তাঁহার এবম্বিধ সত্য শপথের সহিত [illegible] হইয়া তাঁহাকে দর্শন-

দান করিলেন। (৫) তাঁহাকে বর দিয়া, তাঁহার মনোরথ পূর্ণ করিয়া ও ব্রাহ্মণের স্তবে তুষ্ট হইয়া কমলাকান্ত অন্তর্দ্ধান করিলেন। (৬) সেই নারায়ণপরায়ণ ব্রাহ্মণও কৃতকৃত্য হইয়া শিষ্যগণের সহিত সেই স্তোত্র পাঠ করিয়া করিয়া সেই স্থানেই বাস করিতে লাগিলেন। (৭) যিনি এই স্তোত্র কীর্ত্তন করিবেন এবং যিনি শ্রবণ করিবেন — সেই মানব অশ্বমেধযজ্ঞের অধিক ফল প্রাপ্ত হইবেন। (৮) ব্রাহ্মণ আত্মবিদ্যার প্রবোধদাতা অর্থাৎ ব্রহ্মোপদেশাদি করেন, সদাগণের জন্ম পাপশূন্য হন এবং কোনও অমঙ্গল দর্শন করেন না। (৯) সকল মানবই এই স্তোত্রের কীর্ত্তন করিয়া মন, বুদ্ধি এবং ইন্দ্রিয়ের স্বাস্থ্য লাভ করেন। (১০) যে জন সংযত হইয়া শ্রদ্ধাসহকারে সদাচার পূর্ব্বক এই স্তোত্র জপ (পাঠ) করেন — তিনি সর্ব্বপাপ-নির্মুক্ত হইয়া এই জগতে বৈষ্ণবপদ লাভ করেন। (১১) তিনি বাঞ্ছিত বস্তু-সমূহ, অত্যুত্তম পুত্রাদি, দীর্ঘায়ুঃ, বল, বীর্য্য প্রভৃতি লাভ করেন — যিনি এই স্তোত্র সর্ব্বদা পাঠ করেন। (১২) সহস্র তিলপাত্র ও সহস্র গোদান করিয়া যে ফললাভ হয় — যিনি এই স্তোত্র কীর্ত্তন করিবেন, তিনি ঐ ফলই লাভ করিবেন। (১৩) সেই লোক ধর্ম্মার্থকাম-মোক্ষরূপ চতুর্ব্বর্গের যাহা যাহা প্রার্থনা করেন — তাহা তাহাই অচিরাৎ পাইবেন। (১৪) এই স্তোত্র শ্রবণ করিলে মানবগণের আচার, বিনয়, ধর্ম্ম, জ্ঞান, তপস্যা এবং অত্যুত্তম নীতি বিষয়ে নিত্যই বৃদ্ধি থাকে। (১৫) মহাপাতক-যুক্তই হউক, কিম্বা সর্ব্বপাতকযুক্তই হউক, একবারমাত্র এই স্তোত্র পাঠ করিলে তৎক্ষণাৎ শুদ্ধাত্মা হইয়া যায়। (১৬) সন্তান, লক্ষ্মী (শোভা, সম্পত্তি) যশঃ, কীর্ত্তি, জ্ঞান ও ধর্ম্ম প্রভৃতি বিশেষতঃ বর্দ্ধিত হয়। দুষ্ট-গ্রহশান্তি, সর্ব্ব অশুভ বিনাশ, সর্ব্বব্যাধিনাশন ও সর্ব্ব-অরিষ্টক্ষয় হয়। ইহাই পথ্য (হিতকরী) বলিয়া জানিবে। (১৭) দ্বিজাতিগণ দুর্গতির ত্রাণকারক এই স্তোত্র অবশ্য পাঠ করিবে — নক্ষত্রগ্রহপীড়ায়, রাজভয় কিম্বা দৈবভয়ে,

অমাবস্যাতে কিম্বা চৌরভয় হইলে সর্বদাই এই স্তোত্র পাঠ করা উচিত। (১৮-১৯) তখন আর সিংহ বা ব্যাঘ্রের ভয় থাকে না, কোনও অভিচারেরও শঙ্কা নাই; প্রেত, ভূত বা পিশাচ হইতে কিম্বা রাক্ষস অথবা পূতনা, জৃম্ভক প্রভৃতি যাবতীয় বিঘ্ন হইতে আর ভয় থাকে না। (২০) এই স্তব পঠিত হইলে মানবের আর কোনও ভয় থাকে না; বাসুদেবের পূজা করিয়া যিনি এই স্তব পাঠ করেন — তিনি পদ্মপত্রস্থ জলের ন্যায় পাতকে আর লিপ্ত হন না। (২১) এই পুণ্যজনক স্তোত্র পাঠ করিলে গঙ্গাদি সর্বতীর্থে স্নানের সমান ফল প্রাপ্তি হয়। (২২) একবার, দুইবার কিম্বা ত্রিকাল যিনি এই স্তব পাঠ করেন, তিনি সর্বদা সর্বকার্যে অক্ষয় সুখ প্রাপ্তি করেন। (২৩) সাঙ্গ চারি বেদ তিনবার পাঠ করিলে যে ফল প্রোক্ত হয় — এই স্তোত্র একবার পাঠ করিয়াও মানব সেই ফল লাভ করেন, তিনি অক্ষয় ধন লাভ করেন এবং স্ত্রীবল্লভ হন। (২৪) এই স্তুতির শ্রদ্ধাভরে সম্যক্ স্মরণেও এই লোকে পূজ্য হয়েন এবং সর্বদা, সর্বসম্পদ্‌-যুক্ত হইয়া আর বিপদে পতিত হয়েন না। (২৫-২৬) যিনি নিত্য এই স্তোত্র কীর্তন করেন — তাঁহার কখনও গোধন নাশ হয় না। ভক্তগণ এই স্তব সম্যক্ শ্রবণ করিলে অলক্ষ্মী, যমদৃষ্টি, দুঃস্বপ্ন ও দুষ্টচিন্তা প্রভৃতি সমস্ত নাশ হয়। যিনি প্রাতঃকালে গাত্রোত্থান করিয়া তদ্‌গতচিত্তে ও সাবধানে এই স্তবপাঠ করেন, তিনি অক্ষয় সুখ লাভ করেন এবং শেষে ইহলোকে ও পরলোকে অক্ষয় সুখভোগ করিতে পারেন। (২৭-২৮) সর্বপাপ-প্রশমক, বিষ্ণুপ্রীতিকর, মঙ্গলময়, বিষ্ণুপ্রসাদজনক ও বিষ্ণুদর্শন-কারণ 'যোগসার'-নামক এই পরম পাবন স্তোত্রটি যিনি সতত ভক্তিভরে পাঠ করেন — তিনি বিষ্ণুলোকে গমন করেন। (২৯) এই আমি তোমাকে পরম পবিত্র [illegible] স্তোত্র বলিলাম — অতঃপর পিশাচমুক্তির কথা বলিব।

শ্রীমদ্ গুরবে সমর্পণমস্তু।

Published by :— Haridasdas of Haribole Kutir, Nabadwip.
Printed by :— Sevabilas at Sri Bhagabat Press,
Sri Kunjakutir, Krishnagar, Nadia.

श्रीगोविन्द-वृन्दाबनम्

श्रीहरिदास शास्त्री

प्रकाशन सहायता १·५०

✻ श्रीगदाधरगौराङ्गौ विजयेताम् ✻

श्रीगोविन्द-वृन्दावनम्

श्रीवृन्दावनधाम वास्तव्येन

न्याय-वैशेषिकशास्त्र, न्यायाचार्य, काव्य, व्याकरण, सांख्य, मीमांसा

वेदान्त, तर्क, तर्क, तर्क, वैष्णवदर्शनतीर्थ, विद्यारत्नाद्युपाध्यलङ्कृतेन

श्रीहरिदासशास्त्रिणा सम्पादितम् ।

सद्ग्रन्थ प्रकाशक :—

श्री गदाधरगौरहरि प्रेस

श्रीहरिदास निवास कालीदह वृन्दावन

※ श्रीश्रीगौरगदाधरौ विजयेताम् ※

विज्ञप्तिः——

असीम नील गगन के अप्रकाशित असंख्य नक्षत्र पुञ्ज की ज्योति की भाँति सनातन शास्त्र भाण्डार के अनुपम रत्नों में "श्रीगोविन्द–वृन्दावन" अत्यद्भुत ग्रन्थ है, गोविन्द एवं वृन्दावन, स्वाभाविक प्रेमास्पद होने के कारण, उक्त शब्दद्वय, मानव मनमें अपूर्व शान्तिधारा प्रवाहित करते रहते हैं, श्रीगोविन्द वृन्दावन ग्रन्थ में उन दोनों का अनुपम नूतन विवरण अङ्कित है।

प्रस्तुत—शिव विरिञ्चि संवाद नामक प्रथम पटल में वृन्दावन वर्णना, योगपीठ की वर्णना, सखिगणकी प्रार्थना, उपपति भावसे श्रीकृष्ण प्राप्ति के लिए वरदान, श्रीकृष्ण नाम, लीलादिका वर्णन, श्रीकृष्ण के अनेक अश्रुतचर परिकरों के नाम, श्रीकृष्ण बलराम संवाद, एवं श्रीकृष्णकृत अभिनव श्रीराधास्तव वर्णित है।

श्रीश्रीमन्महाप्रभु श्रीगौराङ्ग देव के समय इस ग्रन्थ की प्रामाणिकता सर्वाधिक रही। फलतः श्रीराघव पण्डित कृत श्रीकृष्णभक्तिरत्नप्रकाश ग्रन्थमें इस ग्रन्थके अनेक स्थल उद्धृत हुए है, प्रस्तुत ग्रन्थ बृहद् गौतमीय तन्त्रका ही अंशविशेष है।

हरिदासशास्त्री

※ श्रीश्री गौरगदाधरौ जयतः ※

दुरूहाद्भुत वीर्य्य श्रीहरिनाम।

दुस्तर्क्य, दुर्ज्ञेय आश्चर्य प्रभाव सम्पन्न वस्तु एकमात्र श्रीहरि-नाम ही है। प्रभाव सम्पन्न वस्तु को कारण कहा जाता है, कारण वह होता है, जो विचित्र कार्योत्पादिका शक्ति सम्पन्न हो। शक्ति भी वह है जो कार्य समूह से मण्डित हो। सर्वत्र सर्वदा सक्रिय अव्य-भिचारी वास्तविक सामहित--शक्ति सम्पन्न वस्तु को ही एक सत् अद्वितीय परमानन्द रूप से विश्व का कारण कहा गया है। जब कार्य प्रत्यक्ष होता है। किन्तु कारण का निर्वचन करने में मति कुण्ठित हो जाती है, यदि उदाहरण के लिए विश्व को ही लिया जाय तो सुस्पष्ट होगा कि कार्यों के सदा प्रत्यक्ष होने पर भी ठीक कारण का निर्वचन करने में मानव की मति असमर्थ हो जाती है। किन्तु कार्य और कारण अपनी-अपनी कक्षा में सदा व्यवस्थित रूप में अवस्थान करते हैं। कारण एक ही है। किन्तु उसके परिचायक नाम विभिन्न हैं। विभिन्नता में अभिन्नता एवं अभिन्नता में विभिन्नता अद्वितीय वस्तु में दुस्तर्क्य शक्ति का ही परिचायक है। सुस्पष्ट रूप से इस तत्त्व का निर्वचन 'सत्यं परं धीमहि' रूप से श्रीव्यास जी ने ही किया है। आगे भी इस परम सत्य को परमपुरुष श्रीकृष्ण नाम से उल्लेख किया है। इस परम तत्त्व को जानने के लिए समग्र ऐश्वर्य, वीर्य, यश, श्री, ज्ञान और वैराग्य के साथ परिचय प्राप्त करना भी आवश्यक है। श्रीव्यास जी ने अपूर्व शक्तिमत् तत्त्व का अभिन्न रूप से ही दर्शन किया।

ग्रीष्म के अनन्तर नवीन जलधर जैसे परिवर्षण से आतप-तप्त पृथ्वी को शीतलता प्रदान करता है, वैसे ही अति शुद्ध सत्त्वगुणात्मक तेजोमय एवं ब्रह्मपद वाच्य आकाश स्वरूप श्रीकृष्ण भी त्रिताप-दग्ध जीव को, उनके चरण नख स्पृष्ट अमृत स्वरूप मुक्ति को प्रदान करते

है। इसीलिए ही आप नवीन नीरद सदृश हैं। आप श्रीकृष्ण घन-आनन्द कन्द मुरलीधर हैं, आपकी जनहित कर अनन्त लीलाएं हैं, जो मुरली मनोहर के साथ निरन्तर क्रीड़ा परायण है। वह लीला कुहकिनी श्रीराधा की कौतुक क्रीड़ा है। गोलोक में श्रीकृष्ण सुहागिनी श्रीराधा गोकुल में योगमाया श्रीराधिका कृष्णभाविनी है। गोलोक, जीवदेह रूप क्षुद्र ब्रह्माण्ड, गोलोक वृहद् ब्रह्माण्ड, गोलोक महद् ब्रह्माण्ड, ये ब्रह्माण्ड ही श्रीराधाके विभिन्न रूपहैं। जीव देह श्रीराधा जीवात्मा कृष्ण,आत्मा प्रणयिनी श्रीराधा,जीव प्रणयिनीभी श्रीराधिका है। श्रीकृष्ण चरण श्रीराधिका सेवित है, किन्तु श्रीराधिका चरण भी श्रीकृष्ण वाञ्छित है।

कृष्ण प्रेममें राधिका विधुराहै तो श्रीराधा नाम श्रवणसे कृष्ण भी मूर्च्छित है। कृष्ण की मुरली ध्वनि में श्रीराधा पागलिनी है, और राधा के अनिमेष नयन में कृष्ण बद्ध है। श्रीकृष्ण सम्पद् राधा है, और श्रीकृष्ण प्रेम में उन्मादिनी श्री राधिका है। ब्रजविहार के समय श्रीराधिका ने कृष्ण को कहा था, की तुम मेरा सर्वस्व धन हो, उत्तर में तत्काल कृष्ण ने भी कहा तुम तुम कहने में मै असमर्थ हूँ सर्वस्व धन कहना तो दूसरी बात है।

सूक्ष्म में श्रीराधा और स्थूल में भी श्रीराधिका है। श्रीकृष्ण की मुरली ध्वनि से श्रीराधा जीवन प्राप्त होकर नाच नाच कर श्री राधिका रूप ब्रह्माण्ड में परिणत हो गयाहै। राधा को छोड़कर कृष्ण नहीं, कृष्ण के बिना राधा नहीं है। राधा कृष्ण हंस:। श्रीकृष्ण राधिका विश्व जगत्।

श्री शक्तिमान् की शक्तिस्फूर्त्ति ही राधाकृष्ण विहार है, वह विहार अहरह: चलता रहता है। उभय के मध्य में चन्दन, अगुरु, कस्तूरी, तिलकादि का भी अन्तर नहीं है। मुरली ध्वनि के साथ राधा चरण नूपुर ध्वनि के समावेश से जो एकता की सिद्धि होती है उस के मध्य में भी श्रीकृष्ण वर्त्तमान हैं। यहाँ पर नाना मुनि नाना मत जल्पना--,कल्पना भी कृष्ण को सुचारु वन्धन से बांध देती है। वह

बन्धन भी श्रीराधा की रूप कल्पना को छोड़कर और कुछ भी नहीं है। वह बन्धन वेदान्त की माया, सांख्य की प्रकृति, तन्त्र की आद्या शक्ति, श्रीविष्णु पुराण, श्रीब्रह्मवैवर्त्त की राधा, ईश्वर की ऐशी शक्ति है। शिव का बन्धन कुण्डलिनी और कृष्ण का बन्धन श्रीराधा, कुण्डलिनी त्रिवलयाकार के द्वारा शिव को वेष्टन करके अवस्थित है। कृष्ण भी त्रिभङ्ग है, शिव के कुण्डलिनी फणा है और श्रीकृष्ण का शिरोभूषण भी मयूर पुच्छ है। कुण्डलिनी का आधार शिव है, राधा का आधार भी कृष्ण है, कुण्डलिनी राधा व्यक्त हैं, शिव कृष्णअव्यक्त है. तर्कराशी मे श्रीकृष्ण अनेक दूर में स्थित हैं, कणाद का परमाणु से भी कृष्ण सूक्ष्म है, क्षुद्र से भी क्षुद्र और आप महत् से भी धारणातीत महत् है।

मूल तत्त्व कृष्ण हैं, श्रीराधा उनकी प्रकृति हैं। सृष्टि सूचना के पहले कृष्ण अव्यक्त थे, और राधा भी अव्यक्त थीं। सच्चिदानन्द अव्यक्त कृष्ण की मुरली ध्वनि होने से काल शक्ति रूप। राधा त्रिगुण मयी प्रकृति रूप में प्रकाशित होती है, कृष्ण सान्निध्य प्राप्त होकर ही राधा राधा है,कृष्ण सरचर को प्राप्त न होने से राधा भी नाचती नहीं कृष्ण द्रष्टा, राधा दृश्य हैं। स्थूल दृष्टि से वास्तव जगत् में कृष्ण नव परिणीता कुलवधु, सीमन्त दीपिका सिन्दुरसे अलक्तक रञ्जित चरण युगल का शुभ्र नखसौन्दर्य पर्यन्त सब कुछ ही श्रीराधा का रूपान्तर परिणाम कृष्ण के विना राधा मूल्य हीन है।

जब श्रीराधा का आविर्भाव नहीं हुआ था अर्थात् सृष्टिके पहले जो अवस्था थी, प्राचीनगण उसको अव्यक्त नाम से पुकारते हैं, तब कृष्ण के अङ्क में श्रीराधा विलीन थी, द्रष्टा एवं दृश्य कुछ भी नहीं था, इसके बाद अव्यक्त अन्तर्यामी निराकार कृष्ण की अव्यक्त मुरली ध्वनि होने से नित्य परिवर्त्तनशील प्रकृतीश्वरी श्रीराधा का भी विवर्त्तन शुरु हुआ। इस घटना को उपलक्ष्य करके ही वङ्गीय कवि ज्ञान दास ने लिखा है,

अपरूप तुआ, मुरली ध्वनि ।
लालसा बाड़ल शब्द शुनि ।।

मुरली ध्वनि के साथ श्रीराधा की लालसावृद्धि नृत्य का प्रारम्भ ही सृष्टि की सूचना है। मुरली शब्द ब्रह्म है, श्रीराधा ध्वनि शब्द स्पन्दन है, कृष्ण मुरली श्रीराधा ध्वनि, कृष्ण ध्वनि श्रीराधा मूर्च्छना। ध्वनि मूर्च्छना वृद्धि के समान मूल प्रकृतीश्वरी जगत् प्रपञ्च रूप में विस्तीर्ण हो जाती है। गोलोक की रासेश्वरी श्रीराधा गोकुल में गोपनन्दन श्रीकृष्ण की प्रणयिनी हुई। जगत् के सूक्ष्मातिसूक्ष्म से स्थूलतम पदार्थ श्रीराधा की मोहाच्छन्न शक्ति से अभिभूत है। रूप सौन्दर्य से हतज्ञान जगत् की प्राण श्रीराधा है किन्तु प्राण का भी प्राण राधावल्लभ श्रीकृष्ण है। सर्वदा ही श्रीकृष्ण सर्वत्र समभाव से विद्यमान है। श्रीराधा ही स्वीय लालसा तृप्ति के लिए बारंबार श्री कृष्ण का नव-नव रूप में नूतन—नूतन साज – सज्जा के द्वारा उपभोग करती है। यहाँ पर ही सृष्टि का वैचित्र्य है। इस रीति से ही सृष्टि की प्रक्रिया आदि काल से चली आ रही है, श्रीराधा की नृत्य लीला रुकेगी नहीं, श्रीचरण की नूपुर ध्वनि का झंकार महाप्रलय के शेष मुहूर्त्त पर्यन्त विश्व ब्रह्माण्ड में झङ्कृत होता रहेगा। जन्म,–मृत्यु सुख – दुःख, भाव–अभाव सब ही उस झङ्कार का फल है। कान देकर सुनने से उस झङ्कार की अन्तरात्मा मुरली की ध्वनि श्रवणगोचर हो भी सकती है। प्राणबन्धु मुरलीधर भी मानस पट में उदित होंगे।

झङ्कार का मूलधन मुरली है। श्रीराधा का सर्वस्व धन भी श्रीकृष्ण है। श्रीकृष्ण से ही महामाया श्रीराधा का उन्मेष श्रीकृष्ण द्विधा विभक्त होते हैं। प्रथम कृष्ण द्वितीय श्रीराधा, कृष्ण में राधा उनकी वशीभूत शक्ति, कृष्ण निस्पन्द गुणातीत परम तत्त्व है, राधा तत्त्व में सस्पन्द प्रकृतिमयी राधा मिथ्या भेद ज्ञान की जननी महामाया रूप में प्रकटित होती हैं। विविध–तत्त्व–उद्भावन करके एक ही कृष्ण को अनेक रूप में प्रदर्शन करती है। वह पुरुष अनन्त ब्रह्माण्ड सृजन करनेके बाद अनेक मूर्त्तियों से उनमें प्रविष्ट हुआ। श्रीराधा की

लीला में कृष्ण का प्रथम विकार वासुदेव क्रमशः सङ्कर्षण, प्रद्युम्न, अनिरुद्ध है, अनन्तर सूक्ष्म-स्थूल सृष्टि होती है। विभिन्न ग्रन्थों में इस के विभिन्न नाम व्यवस्थित हैं। जैसे तुरीय सुषुप्ति, स्वप्न, जाग्रत, शब्द ब्रह्म, नाद, बिन्दु एवं बीज है।

परा, पश्यन्ती, मध्यमा, वैखरी, शक्ति, सदाशिव, ईश्वर एवं शुद्ध विद्या, महत् अहङ्कार, बुद्धि, मन इत्यादि। किन्तु एक कृष्ण ही नाना रूपों में विलसित है। कारण रूप में आप त्रिगुणमय अथवा सर्वगुणातीत वासुदेव, लिङ्गशरीरी, तमोमय सङ्कर्षण सूक्ष्म में आप प्रद्युम्न, स्थूल में सृष्टिकर्ता राजसी अनिरुद्ध हैं। जीवदेह के मूलाधार पद्म में अनिरुद्ध, स्वाधिष्ठान में प्रद्युम्न, नाभि में मणिपुर में सङ्कर्षण, हृदय में वासुदेव श्रीकृष्ण, कण्ठ में अनाहत पद्म में राधा-कृष्ण, भ्रूमध्य में परम कारण कृष्ण-चरण एवं शिरः पद्म सहस्रार में एकमेवाद्वितीय परमात्मपरम निर्विकार परम ज्योति भगवान् श्रीकृष्ण हैं। श्रीराधा उनकी बारंबार विभिन्न नाम रूपों में भजन करती है, इस परिवर्त्तन में कृष्ण का प्रथम नाम वासुदेव है। इस अवस्था में कृष्ण तुरीय भावापन्न हैं। सृष्टि का भी अतिक्षीण उद्रेक होता है, इसके पहले ही मुरली ध्वनि हुई है, उसकी ध्वनि से उद्भूत राधा वासुदेव के समीप उपस्थित होकर मैं और तुम को प्रकाश करती है,। ध्वनि विस्तार के साथ ही तुरीय अवस्था के बाद सुषुप्ति का आगमन हुआ, वासुदेवके बाद ही सङ्कर्षण, कर्षण आकर्षण का अधिपति ही सङ्कर्षण है। अध्यवसायिनी राधा अब स्वयं बुद्धि रूप में सृष्टि स्थित्यन्त-कारिणी कामना सङ्कर्षण में लगाकर प्रकाश कर दिया। तुम हुताशन और मैं स्वाहा त्रिगुणातीत वासुदेव।अहङ्कार रूप तम से आक्रान्त होकर कृष्ण काम और राधा इच्छा हुई है। काम की इच्छा रूप ही कामना सिद्धि है। सिद्धि है कृष्ण और कामना है, राधा। कामिनी राधा निज कामनावश दूरागत मुरलीधारी की मुरली ध्वनि के साथ नूपुर की ध्वनि विस्तार कर घूमती रहती हैं। उसकी उत्तेजना से ही ... सुषुप्ति के अनन्तर स्वप्न का उदय हो जाता है। श्रीराधा ने

उनको समझा दिया, तुम काम और मैं रति हूँ। रमण प्रिया राधा उससे भी सन्तुष्ट न होकर रमणी रूप होकर रमण को प्रकट किया। राधा आलम्बन, कृष्ण सन्तोष, कृष्ण बीज, राधाक्षेत्र, विश्व बीजा-रोपित हुआ।

विश्व योनि अव्यक्त कृष्ण का विज्ञानमय कोष है। कालशक्ति राधा है। काल शक्ति के विवर्त्तन से अव्यक्त का प्रथम रूपान्तर महत्तत्त्व है। कृष्ण यहाँ पर वासुदेव हैं। महत्तत्त्व से विद्युत् के समान शक्ति प्रकाश पाती है, उस के प्रथम है आदित्य पश्चात् ग्रहादि एवं नीहारमय तनु रूपमें पृथ्वी गठन के उपयुक्त उपादानउपकरणादि है। द्वितीयतः महत् के विकार से कर्षण-आकर्षण शक्ति का अधिपति एवं जीव का प्रकाशक संकर्षण है। इस के बाद ही विविध शक्ति सम्पन्न प्रद्युम्न है। अनन्तर उक्त समुदय एकत्र एवं सञ्चित होकर राधा रूप कारण सलिल में कृष्ण का तीर्थ स्वरूप बीज न्यस्त हुआ, उससे ही विश्व बीज की उत्पत्ति हुई एवं इस बीज में विन्यस्त कर्म उद्गत होनेके बाद ही पृथ्वी नामक पदार्थ की उत्पत्तिहुई। वह विविध नाम व रूप से अभिव्यक्त जगत् सृष्टि के पहले किरणमाला के आश्रयीभूत अंशु माली के समान स्वयं प्रकाश स्वयं सिद्ध कृष्ण में सन्निवेशित अधुना, यह प्रकाश पाया। आदि, मध्य, अन्तहीन श्रीकृष्ण की अपार अनन्त महिमा है, श्रीमती राधिका इस को अभिव्यक्त करती रहती है।

श्रीराधा का नृत्य अविराम गतिशील है। श्रीकृष्ण के बल से बलवती राधा निज सत्ता की प्रतिष्ठा में महाप्रयासी हैं। संसार की रचना में आप ही सक्रियहैं। श्रीकृष्ण कुटुम्बमात्रहैं। कृष्ण के निकट आपने प्रकट कर दिया है। कि मैं और तुम यह शब्द, अर्थ, प्रत्यय, मुरलीरव, मूर्च्छनापति--पत्नी व संसार है। शब्द पाठ, अर्थ कृष्ण महिमा है। रचना प्रत्यय--प्रीति है। रचना में लेखिका श्रीराधा, मसी कृष्ण हैं। शब्द राशि राधा, कृष्ण-उसका अर्थ है। उभय के योग से ही गोलोक निवासी परिपूर्ण एकतत्त्व है। आप ही शब्द का मूल कारण हैं, श्रवण का श्रवण है, रचना का भी एकमात्र उद्देश्य श्री

कृष्ण है। आप अघटन घटन पटीयसी श्रीराधाके आवरण में बद्ध है। कविवर चण्डीदास ने ठीक ही गाया है—

से राधारमणी रसशिरोमणि। तोमारे करिल बन्ध॥

श्रीगीतगोविन्दकार ने भी कहा है—

कंसारिरपि संसारवासनाबद्धशृङ्खलाम्।
राधामाध्याय हृदये तत्याजव्रजसुन्दरीः॥

महानुभाव के मत में—

नामश्चिन्तामणिः कृष्णश्चैतन्योरसविग्रहः।
नित्यः शुद्धः पूर्णो मुक्तोऽभिन्नत्वान्नामनामिनः॥

श्रीहरिदास शास्त्री

—*—

प्रस्तुत लेखमें निम्नलिखित ग्रन्थों से विवरण गृहीत हुआ है- गौतमीयतन्त्र, नील, बृहद्गौतमतन्त्र, उत्तरतन्त्र, गायतन्त्र, सारदा तिलक, कुलार्णवतन्त्र, विष्णु, वायु, ब्रह्माण्ड ब्रह्मवैवर्त्त, कालिकापुराण, वैष्णव पदावली चैतन्य चरितामृत, राधा कृष्णार्चन दीपिका: वेद, उपनिषद् ब्रह्मसूत्र, शाङ्करभाष्य, सांख्य दर्शन, योगदर्शन, व्यासभाष्य ब्रह्म संहिता, सिद्धान्तरत्न, हरिभक्ति विलास, श्रीमद्भागवत।

एक सत् अद्वितीय परमानन्द वस्तु को विभिन्न एवं अभिन्न रूप में देखना ही प्रस्तुतलेखका प्रधान लक्ष्य है, वह भी श्रीहरिनाम के आधार पर। पूर्ण शक्तिमत् तत्त्व श्रीकृष्ण है, श्रीराधा भी परिपूर्ण शक्ति तत्त्व हैं।

"कृष्णनामराधानाम उपासना रसधाम" इस रीति से प्रस्तुतलेख लक्ष्य में पर्यवसित हुआ हैं। एक उपास्य तत्त्व की चिन्तन धारा कितनीहै,-उसका नामतः सङ्कलन प्रस्तुत लेखमें है। जन्माद्यस्य यतः कार्येष्वभिज्ञः, स्वराट्, सत्यं परं धीमहि" लेखका मूल सूत्र है।

❀❀ श्रीश्रीगदाधरगौराङ्गौ जयतः ❀❀

❀ श्रीश्रीगोविन्दवृन्दावनम् ❀

❀❀ ॐनमः श्रीकृष्णाय ❀❀

एकदा शङ्करं द्रष्टुं स्वपुत्रं कृष्ण–तत्परम् ।
तस्याश्रमं ययौ प्रीत्या भगवांश्चतुराननः ॥१॥
ददर्श लोक नाथेशं ध्यायन्तञ्च जनार्दनम् ।
प्रेमवारि-समाकीर्णं रोमाञ्चित तनु श्रियम् ॥२॥
तमुत्थाप्य प्रियं दोर्भ्यां कृष्णभक्तं पितामहः ।
पुलकावलि--हृष्टाङ्गः सस्वजे प्रेम विह्वलः ॥३॥
दृष्ट्वा देवो महाभक्त्या शङ्करस्तु पितामहम् ।
तस्याग्रे भगवद् बुद्धया दण्डवत् पतितो भुवि ॥४॥
पाद्यार्घ्यमधुपर्काद्यं यथाविधि समर्च्चयत् ।
विश्रान्तं सुखमासीनं पप्रच्छ स्वागतं ततः ॥५॥

एक दिवस भगवान् चतुरानन कृष्ण तत्पर स्वपुत्र शङ्कर को प्रीति पूर्वक देखने के लिए उनके आश्रम पर पधारे थे ॥१॥

वहाँ जाकर आपने प्रेमवारि समाप्लुत रोमाञ्चित कलेवर श्री जनार्दनध्यान निमग्न लोकनाथ को देखा ।२।

आनन्द से पुलकायित शरीर, प्रेमविह्वल पितामहने प्रियकृष्ण भक्त को दोनों भुजायों के द्वारा उठाकर आलिङ्गन किया ।३

श्रीशङ्कर देवने पितामहको देखकर भगवद् बुद्धि से भक्ति पूर्वक उनके सम्मुख में दण्डवत् भूमि में गिर कर प्रणाम किया ।४।

पाद्य, अर्घ्य, मधुपर्क आदि के द्वारा आपने पितामहका यथा विधि पूजन किया, विश्राम के अनन्तर पितामह सुख पूर्वक आसन में

सन्तुष्ट तमथोवाच महाभागवतः प्रभुः ।
नन्दपुत्रे भगवति कृष्णे वृन्दावनेश्वरे ॥६॥
किन्ते भक्ति समुत्पन्ना सुदृढ़ा प्रेमलक्षणा ।
धर्मार्थ काम मोक्षेषु कच्चित्ते निस्पृहं मनः ॥७॥
कच्चित् कीर्त्तयसे कृष्ण–गुण--नामानिसर्वदा
गुरोः कारुणिकस्येदं श्रुत्वा च सह भाषितम् ॥८॥
विनयावनतो भूत्वा शङ्करो वाक्यमब्रवीत् ।
विधाय विविधा वाचः कृष्ण पादाब्जलालसः ॥९॥
प्रेमानन्दमदोन्मत्तः पपात धरणीतले
शंकरस्य प्रबोधार्थं ततो यत्नेमनो भृशम् ।
परमं सुस्थिरीकृत्य रहस्यं कथ्यते रहः ॥१०

ब्रह्मोवाच—

विनयादिगुणं स्त्वं हि दयितः परमो मम
विशेषतः कृष्णपादसरोजैकान्तभक्तितः ॥११

उपवेशन करने पर शंकर जीने स्वागत प्रश्न किया ।५।

महा भागवत प्रभुने शंकर जीके शिष्टाचार से सन्तुष्ट होकर कहा, वृन्दाबनेश्वर नन्दपुत्र भगवान् कृष्ण के प्रति प्रेमलक्षणा सुदृढ़ा भक्ति तुम्हारी उत्पन्न हुई ? एवं धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष, के प्रति भी तुम्हारे मन निस्पृह हुआ है, ? ।६।७।

तुम सर्वदा श्रीकृष्णके गुण नाम समूह का कीर्त्तन करते हो ? कारुणिक गुरुदेव के यह वचन शुनकर कृष्ण पादाब्ज लालस शङ्करने विनयावनत होकर अनेकानेक दैन्योक्ति की एवं प्रेमानन्दमदोन्मत्त होकर धरणीतल में गिर पड़ा । पितामह शङ्करके प्रबोधन के लिए अतिशय यत्न से मन को सुस्थिर कर एकान्तमें रहस्य वार्त्ता कहने लगे ॥८।९।१०॥

यद्विना नापि विज्ञातुं राधां वृन्दावनेश्वरीम् ।
तत्ते गुह्यं प्रबक्ष्यामि सावधान–मनाः शृणु ॥१२॥
वनं वृन्दावनं नाम तस्य धाम मनोहरम् ।
अमृतं शाखतं दिव्यं गुणातीतं सनातनम् ॥१३॥
अनन्तानन्दसंयुक्तं सर्वलोकैक--वाञ्छितम् ।
अनेक कोटि सूर्य्याग्नितुल्यवर्च्चसमव्ययम् ॥१४॥
सर्वदेवमयं गुह्यं सर्वप्रलयवर्जितम् ।
असंख्यमजरं सत्यं जाग्रत्स्वप्नादिवर्जितम् ॥१५
मनोरम निकुञ्जाढ्यं सर्वर्त्तु सुखसंयुतम् ।
तेजसात्यद्भुतं रम्यं नित्यमानन्दसागरम् ॥१६

ब्रह्माजीने कहा—

विनयादिगुणयुक्त होने से विशेष कर श्रीकृष्ण चरणार विन्द की भक्ति से आप्लुत अन्तःकरण होने के कारण तुम मेरा परम प्रिय हो ॥११॥

जिस के विना श्रीवृन्दावनेश्वरी श्रीराधा का परिज्ञान सम्भव नहीं है, उस गोपनीय तत्त्व को मैं कहता हूँ सावधान मानस होकर सुनो ॥१२॥

वृन्दावन नामक वन उनका धाम है, और अत्यन्त मनोहर है, वह अमृत, शाश्वत, दिव्य, गुणातीत, सनातन स्वरूप है, ॥१३॥

अनन्त आनन्द संयुक्त समस्त लोकों के एकमात्र वांछित अनेक कोटि सूर्य–अग्निके समान कान्ति विशिष्ट एवं अव्यय स्वरूप है ।१४

सर्व देवमय, गोपनीय, सर्व प्रलय वर्जित, असीम, अजर सत्य एवं जाग्रत–स्वप्नादि, वर्जित है ॥१५॥

मनोरम निकुञ्जके द्वारा परिपूर्ण, सकल ऋतुयों में सुखकर,

न तत्र तपते सूर्य्यो न शशाङ्को न पावकः ।
नहि वर्णयितुं शक्यं कल्प कोटि शतैरपि ॥१७॥
चतुर्दारसमायुक्तं रम्यं गोपुरसंयुतम् ।
नन्दाद्यैः द्वारपालैश्च सुनन्दाद्यैः सुरक्षितम् ॥१८॥
आरुढ़ यौवनोल्लास दिव्य गोपीभिरावृतम् ।
मध्ये तु मण्डपं दिव्यं राजस्थानं महोत्सवम् ॥१९॥
माणिक्य--स्तम्भ साहस्त्रं जुष्टरत्नमयंशुभम् ।
तन्मध्येऽष्टदलं पद्ममुदयार्क--समप्रभम् ॥२०॥
तन्मध्ये कर्णिकायान्तु सावित्र्यां शुभदर्शनम् ।
ईश्वर्य्या सह गोबिन्द स्तत्रासीनः परः पुमान् ॥२१॥
इन्दीवरदलश्यामः सूर्य्यकोटि--समप्रभः ।
युवा कुमारः स्निग्धाङ्गःकोमलावयवैर्युतः ॥२२॥

तेजके द्वारा अति अद्भुत,रम्य, एवं नित्य आनन्द सागर स्वरूप हैं ॥ वहांपर प्राकृत सूर्य, शशाङ्क, अनल, प्रकाशित नहीं होते हैं, उनकी महिमा का वर्णन कल्प कोटि शत के द्वारा भी नहीं होसकता है ।१७

चतुर्द्वार युक्त रम्य गोपुर संयुत है । एवं नन्दादि, सुनन्दादि द्वारपालों से वह सुरक्षित है ॥१८

आरुढ़ यौवनोल्लास युक्त दिव्य गोपीयों से आवृत हैं, एवं मध्य स्थल पर राजस्थान महोत्सव रूप दिव्य मण्डप शोभित हैं ॥१९॥

सहस्रमाणिक्यस्तम्भ है, जिस में रत्न मण्डित है, उस के मध्य में सद्योदित सूर्य के समान कान्तियुक्त एक अष्टदल कमल हैं ।२०

उसके मध्य में लीला विस्तार कारी एक कर्णिकाहै, जिसमें शुभदर्शन पर पुमान् ईश्वर श्रीगोविन्द श्रीभानुनन्दिनी के साथ उपविष्ट हैं । २१

आप इन्दीवर दल के समान श्याम वर्ण, कोटि सूर्य के समान

विलोल–पुण्डरीकाक्षः सुभ्रून्नत--युगाङ्कितः ।
कुन्द स्रज शुभ्रदन्ताढ्यो मधुराधरविद्रुमः ॥२३॥
परिपूर्णेन्दु सङ्काश सुस्मितानन पङ्कजः ।
तरुणादित्य वर्णाभ्यां कुण्डलाभ्यां विराजितः ॥२४॥
सुस्निग्ध-नील--कुटिल-कुन्तलैरूपशोभितः ।
स्वर्णहार स्रगासक्त कम्बुग्रीवाविराजितः ॥२५॥
बालार्क-कोटिशङ्काशैः कौस्तुभाद्यैः सुभूषितः ।
बालातपनिभ श्लक्ष्ण पीताम्बर-सभन्वितः ॥२६॥
अशेष-चन्द्र संकाश-नखपङ्क्तिभिरावृतः ।
श्यामै गौरैश्च रक्तैश्च शुक्लैश्च पार्षदै वृंतः ॥२७॥
दिव्य चन्दन लिप्ताङ्गो वनमालाविभूषितः ।

कान्ति, नव यौवन में स्थित, कोमल अवयवोंसे युक्त स्निग्धाङ्ग हैं ।२२

आप के पुण्डरीक के समान नयन द्वय अति चञ्चल है, भ्रू युगल भी समुन्नत है, कुन्दपुष्प के समान दन्तराजि अति शुभ्र है, मधुर अधर भी विद्रुम के समान रक्तिम है ।२३।

आनन पङ्कज परिपूर्णेन्दु के समानमनोरम हास्यसे शोभित है, तरुण आदित्य के समान सुन्दर कुण्डलद्वय के द्वारा भी वदन कमल सुशोभित है ।२४॥

आप सुस्निग्ध--नील–कुटिल कुन्तलों से शोभित है, स्वर्णहार माला के प्रति आसक्त कम्बुग्रीवा से भी सुशोभित हैं ।२५।

नवोदित कोटि सूर्य के समान कौस्तुभ आदि से सुन्दर भूषित है, बाल आतप की भांति कोमल पीताम्बर युक्त भी है ।२६

अशेष चन्द्र के समान नख पङ्क्ति से हस्त कमल चरण कमल सुशोभित है । एवं श्याम–गौर–रक्त–एवं शुक्ल वर्ण पार्षदों से आप परिवृत है ।२७

नाना केलि कलाधीशो रास लीला विशारदः ॥२८॥
कोटिकन्दर्पलावण्यः सौन्दर्यनिधिरच्युतः ।
वामाङ्गसंस्थिता देवी राधिका प्राणवल्लभा ॥२९॥
हिरण्य वर्णा हरिणी सुवर्णरजतस्रजा ।
सर्व लक्षण–सम्पूर्णा यौवनारम्भा विग्रहा ॥३०॥
रत्न कुण्डल-संयुक्ता नीलकुञ्जित-शीर्षजा ।
दिव्यचन्दनलिप्ताङ्गी दिव्यपुष्पोपशोभिता ॥३१॥
मन्दारकेतकीजाती-पुष्पाञ्चित सुकुन्तला ।
सुभ्रूः सुनासा सुश्रोणी पीनोन्नत पयोधरा ॥३२॥
परिपूर्णेन्दुसंसक्त–सुस्मितानन-पङ्कजा ।
नानारत्नविचित्राढ्या कनकाम्बुज शोभिता ॥३३

सर्वाङ्ग, दिव्य चन्दनों से लिप्त है, और वनमालासे विभूषित है। अनेक केलिकला का अधीशहै, एवं रासलीला विशारद है ।२८॥

श्रीअच्युत कोटि कन्दर्प के समान लावण्य युक्त सौन्दर्यनिधि है, वामाङ्ग में देवी प्राणवल्लभा राधिका विराजिता है, ।२९।

श्रीमति राधिका हिरण्यवर्णा, हरिणा, (स्त्री विशेष) सुवर्ण रजत मालायों से शोभिता, सर्वलक्षण सम्पूर्णा, एवं यौवन के आरम्भ वयः क्रम में स्थिता है ।३०।

रत्न कुण्डल संयुक्ता नील कुञ्चित केश पाश शोभिता, दिव्य चन्दन चर्चित कलेवरा, एवं दिव्य पुष्पों के द्वारा उपशोभिता हैं ।३१

मनोरम कुन्तल श्रेणी मन्दार केतकी–जाती पुष्पों से सुशोभित है, सुभ्रू, सुनासा, सुश्रोणी, पीनोन्नत पयोधरा है, ।३२।

आनन पङ्कज मनोरम हास्ययुक्त परिपूर्ण चन्द्रमा के समान है।, नाना रत्नों से भूषित, कनकाम्बुज से शोभित है, ॥३३॥

हार केयूर–कटकैरङ्गुरीयैर्विभूषिता ।
गृहीत्वा चामरान् रम्यान् सुधाकर समप्रभान् ॥३४॥
सर्वलक्षणसम्पन्ना मोदते पतिमच्युतम् ।
आद्यैः परिजनैर्व्यक्तं नृत्यैश्च परिसंयुतः ॥३५॥
मोदते राधया सार्द्धं नित्यैश्वर्य्या परः पुमान् ।
श्रुत्वैतद्ब्रह्मणो वाक्यं शिवः प्रोचेऽथसादरम् ॥३६॥
द्वापरान्तेऽभवत् कृष्णो नित्यत्व मुच्यते कथम् ।
ततो ब्रह्मा शिवं प्राह चिन्तयित्वा पुरातनम् ॥३७॥
वाङ्मनो गोचरातीतं सर्व वेदेसु गोपितम् ।
प्राकृते प्रलयं प्राप्ते व्यक्तेऽव्यक्तं गतेपुरा ॥३८॥
शिष्टे ब्रह्मणि चिन्मात्रे कालमायाति चाक्षरे ।
ब्रह्मानन्दमये लोके व्यापी वैकुण्ठ संज्ञकः ॥३९॥

हार केयूर-कटक–अङ्गुरीय आदि से विभूषित हैं, सुधाकर के समान शुभ्र रम्य चामर हस्त में लेकर सर्व लक्षण सम्पन्न श्रीअच्युत की सेवा करती है । नृत्य गीत सङ्गीत परायण परिजनोंके साथ विराजित है ।३४।३५॥

इस प्रकार नित्य ईश्वरी राधा के साथ श्रीपुरुषोत्तम नित्य आनन्दप्राप्त होतेहैं । श्रीब्रह्मा जी से वर्णन को शुनकर शिवजी आदर पूर्वक बोले ।३६॥

कृष्ण तो द्वापर के अन्तः काल में आविर्भूत होते हैं ? उनको नित्य रूप से आपने कैसे कहा । अनन्तर पुरातन कथा का चिन्तन कर ब्रह्मा शिव को कहे ।३७।

वाक्य मनके अगोचर, समस्त वेदोंमें गुप्तरूप मेरहनेवाले वैकुण्ठ नामक भगवल्लोक है । प्रकृति प्रलय होने के बाद, व्यक्त, अव्यक्त में लीन होने पर एकमात्र अक्षर चिन्मात्र ब्रह्म अवशेष रहजातेहैं, ब्रह्मा

निर्गुणो नाद्यमन्तश्च वर्त्तते केवलेऽक्षरे ।
अक्षरं परमं ब्रह्म वेदानां स्थानमुत्तमम् ॥४०॥
तल्लोकवासी तस्थौ च ततोवेदः परात्परः ।
चिरंस्तुत स्ततस्तुष्टः प्रत्यक्षं प्राह ता अपि ॥
तुष्टोऽस्मि श्रुतयः प्राह मनसा यदभीप्सितम् ॥४१॥

श्रुतय ऊचुः—

नारायणादि रूपाणि ज्ञानान्यस्माभिरच्युतः ।
सगुणं ब्रह्म तत् सर्व वस्तुबुद्धिर्न तेषु नः ॥४२
ब्रह्मेति पठ्यतेऽस्माभि र्यद्रूपं निर्गुणं परम् ।
वाङ्मनोगोचरातीतं ततो न ज्ञायते तु यत् ॥४३॥
आनन्दमात्रमपि यद्वदन्तीह पुराविदः ।
तद्रूपं दर्शयास्माकं यदि देयो वरो हि नः ॥४४॥

नन्दमय लोक में वैकुण्ठ नामक स्थान व्याप्त होकर रहता है ॥३९॥

वह प्राकृत गुणों से अतीत है, उनका आदि अन्त भी नहीं है, अक्षर स्वरूपहैं, अक्षर परम ब्रह्मही सववेदों का एकमात्र आधार है ४०

अनन्तर तल्लोक वासी जनगण परात्म पुराण पुरुष की उपासना करते हैं। वहुकाल स्तुति करने पर संतुष्ट होकर प्रत्यक्ष रूप से उन सब को कहा, श्रुतियों ने भी स्तुति की, अनन्तर 'मैं संन्तुष्ट हूँ-जो कुछ मन में है कहो' आपने कहा ॥४१॥

श्रुतियां बोलीं—

हे अच्युत ! हम सवने श्रीनारायणादि रूप को जाना है, वेसव सगुण ब्रह्म होने के कारण उन में हमारी वस्तु बुद्धि नहीं हुई ॥४२॥

हम सवने निर्गुण परम ब्रह्म का वर्णन किया है, वाक्य मनके अगोचर व अतीत होने से वह वस्तु ज्ञात होने में हमसव असमर्थ हैं।४३

प्राचीन मनीषीगण जिनको आनन्दमात्र ही कहते हैं, हमारे

श्रुत्वैतद्दर्शयामास स्वरूपं प्रकृते परम् ।
केवलानुभवानन्द मात्रमक्षरमव्ययम् ।।४५
यत्र वृन्दावनं नाम वनं कामदुघै द्रुमैः ।
मनोरम निकुञ्जाढ्यं वसन्त सुख सेवितम् ।।४६।।
यत्र गोवर्द्धनो नाम सुनिर्झर दरीयुतः ।
रत्न धातुमयः श्रीमान् सुपक्षिगण संकुलः ।।४७।।
तत्र निर्मल पानीया कालिन्दी सरितां वरा ।
रत्नवद्धोभयतटीहंसपद्मादिसंकुला ।।४८।।
नानारासरसोन्मत्तो यत्र गोपी कदम्वकः ।
तत् कदम्ब मध्यस्थः किशोराकृतिरच्युतः ।।४९।।
नित्य यौवन संयुक्तो नित्यानन्द कलेवरः ।
सुकुञ्चितकचस्तस्तो लसच्चारुशिखण्डकः ।।५०।।

प्रीति वर प्रदान की इच्छा हो तो वह रूप हमें दर्शन करावें ।।४४।।

वह वचन सुनकर स्वरूप को सन्दर्शन कराया, जो प्रकृति से पर है, एवं केवल--अनुभवानन्द मात्र अक्षर-अव्यय स्वरूप हैं ।४५।।

जहां वृन्दावन नामक वन है, वह वन कामद वृक्षों से ही परि पूर्ण है, मनोरम निकुञ्जों से शोभित व वसन्त सुखसेवित है ।४६।

जहांपर श्रीमान गोवर्द्धन गिरि विराजित है, सुन्दर निर्झर दरी युक्त है, रत्न धातुमय, एवं सुपक्षिगण परिव्याप्त है ।४७।

वहांपर समस्त नदीयों में श्रेष्ठा निर्मल जल पूर्ण यमुना विराजित है, उनके उभय तट रत्न से जटित है,हंस पद्मादिसे संकुल है ४८

जहांपर नाना रासरसोन्मत्त गोपी कदम्व विराजित हैं, उन गोपीकदम्ब के मध्य में किशोराकृति अच्युत विराजित है ।४९

आप नित्य यौवन संयुक्त, नित्यानन्द कलेवर सुकुञ्चित केश

लसल्ललाट पाटीर–तिलकालकमण्डितः ।
गण्ड मण्डल संसर्ग–चलन्मकर कुण्डलः ॥५१॥
प्रफुल्ल पुण्डरीकाक्षः सुस्मिताननपङ्कजः ।
कुन्द स्रगाभ-दन्ताढ्यो मधुराधरविद्रुमः ॥५२॥
प्रातरुद्यत् सहस्रांशुनिभः कौस्तुभ शोभितः ।
चन्दनागुरु कस्तूरी कुङ्कुमाक्ताङ्ग धूसरः ॥५३॥
सिंह स्कन्ध निभः श्रेष्ठः पीने रंसे विराजितः ।
सुरम्याधर संसक्त–कूजद्वेणु विनोदवान् ॥५४
संवीत पीत वसनः किङ्किणी विलसत् कटिः ।
शरज्ज्योत्स्ना प्रतीकाश–नखपङ्क्ति-विराजितः ॥५५

कलाप युक्त एवं मनोहर शिखिपुच्छ से शोभित हैं ।५०॥

शोभित ललाट फलक में मनोहर तिलक एवं इतस्तत विक्षिप्त अलकावली विराजित हैं। गण्डमण्डल संसर्गि चञ्चल मकर कुण्डल भी शोभित है ।५१।

प्रफुल्ल पुण्डरीक के समान नेत्रद्वय है। आनन्द पङ्कज मनोहर स्मित हास्यसे शोभितहैं। कुन्द पुष्प के समान दन्त श्रेणी व विद्रुम के समान मधुर अधर भी है ॥५२।

प्रातः कालीन नवोदित सूर्य की कान्ति की भाँति कण्ठ स्थल म कौस्तुभ शोभित है, श्रीअङ्ग चन्दन अगुरु कस्तुरी कुङ्कुम से धूसरित है, ।५३।

सिंह के स्कन्धके समान श्रेष्ठ पीन स्कन्ध से शोभित हैं, सुरम्य अधर में संसक्त वेणु वादन परायण हैं, ॥५४॥

पीत वसन के उत्तरीय व वसन शोभित है। कटि में किङ्किणी विलसित है। शरत् कालीन ज्योत्स्ना के समान नख पंक्ति विराजित हैं ॥५५॥

कृष्णै गौरैश्च रक्तैश्च शुक्लैः पारिषदैर्वृतः ।
सदारासरसामोदविहारामृतसागरः ।।५६
कोटिकन्दर्पलावण्यसौन्दर्य्यनिधिरव्ययः ।
दर्शयित्वेति प्राह वृन्दावनचरः स्वयम् ।।५७।।

श्रीवृन्दाबनचन्द्र उवाच—

युष्माभि र्यदिदं दृष्टं रूपं दिव्यं सनातनम् ।
निष्कलं निर्म्मलं शान्तं सच्चिदानन्दविग्रहम् ।।५८
पूर्णचन्द्र पलाशाक्षं नातः परतरं मम ।
इदमेव वदन्त्येते वेदाः कारण कारणम् ।।५९
सत्यं व्यापि परानन्दं चिन्मयं शाखतं शिवम् ।
यद्रूपमव्ययं ब्रह्म मध्याद्यन्त विवर्जितम् ।।६०।।
सर्वरूपमयं रम्यं सर्ववेदाद्यगोचरम् ।
मायातीतं महादिव्यं श्यामं सौम्यकलेवरम् ।।६१

कृष्ण वर्ण गौर वर्ण—रक्त वर्ण-एवं शुक्लवर्ण पारिषदों से आवृत हैं। सदा रास-रसामोद-विहारामृत सागर हैं ।।५६।।

कोटि कन्दर्प के समान लावण्य सौन्दर्य के अव्ययनिधि वृन्दावन विहारीने रूप को प्रदर्शन कराकर स्वयं कहा ।५७।

वृन्दावन चन्द्रने कहा—

तुम सबने दिव्य, सनातन, निष्कल, निर्मल, शान्त, पूर्णचन्द्र पलाशाक्ष सच्चिदानन्द विग्रह को देखा, इसके आगे और कोई रूप मेरा नहीं है। वेदगण इस रूप को ही सकल कारण के कारण कहते हैं ।।५८-५९

सत्य व्यापी, परानन्द, चिन्मय, शाखत, शिव, यद्रूप आदि मध्य-अन्त विवर्जित अव्यय ब्रह्म हैं ।।६०।।

नानागुण समाकीर्णं गुणातीतं मनोहरम् ।
सुप्रभं सच्चिदानन्दं भक्त्या जानाति विस्तरम् ॥६२
पश्य मदीयो लोकोऽयं यतो नास्ति परात्परः
तुष्टोऽस्मि श्रुतयः प्राह मनसा यदभीप्सितम् ॥६३

श्रुतय ऊचुः

कोटि कन्दर्प लावण्ये त्वयि दृष्टे मनांसि नः ।
कामिनीभावमासाद्य स्मरक्षुब्धान्यसंशयम् ॥६४
यथा तल्लोक वासिन्यः कामतत्त्वेनगोपिकाः ।
भजन्ति रमणं मत्वा चिकीर्षाजनि नस्तथा ॥६५॥

श्रीभगवानुवाच—

दुर्लभो दुर्घटश्चैव, युष्माकन्तु मनोरथः ।
मयानुमोदितः सम्यक् सत्यो भवितुमर्हसि ॥६६॥

सर्वरूपमय, रम्य, सर्व वेदादिके अगोचर मायातीत महादिव्य, सौम्यकलेवर श्यामरूप है ।६१।

नानागुण समाकीर्ण, गुणातीत, मनोहर, सुप्रभ, सच्चिदानन्द रूप को परिपूर्ण रूप से भक्ति के द्वारा ही जाना जाता है ।६२

मदीय लोक को देखो, जिस से परात्पर और कुछ भी नहीं है । श्रुतियो ! मैं सन्तुष्ट हूँ, जो कुछ इच्छा हो, प्रकट करो । ६३।

श्रुतियों बोलीं—

कन्दर्प कोटि लावण्य तुम्हें देखकर हमारेमन कामिनी भाव विभावित होकर सुनिश्चित स्मर क्षुब्ध होगये हैं ॥६४॥

जैसे तुम्हारे धाम के अधिवासी गोपिका काम तत्त्व से रमण मानकर भजन कर रही है, हमसब की भी वैसाभजन करनेकी इच्छा जगी है ॥६५॥

आगामिनि विरिञ्चौ तु जाते सृष्ट्यर्थमुद्यमे ।
कल्पं सारस्वतं प्राप्य व्रजे गोप्यो भविष्यथ ॥६७॥
पृथिव्यां भारते क्षेत्रे माथुरे मम मण्डले ।
वृन्दावने भविष्यामि मयान् वो रासमण्डले ॥६८॥
जारधर्मेन सुस्नेहं सुदृढ़ं सर्वतोऽधिकम् ।
मयि संप्राप्य सर्वापि कृतकृत्या भविष्यथ ॥६९॥
श्रुत्वैतच्चिन्तयत्यस्ता रूपं भगवतः परम् ।
उक्तकालं समासाद्य गोप्यो भूत्वा व्रजं गताः ॥७०॥
ततोऽयं द्वापरस्यान्ते कृष्णः सर्वेश्वरेश्वरः ।
श्रुतीनां वरदानार्थं सोऽपि तद् गोचरोऽभवत् ॥७१॥
यस्य पादनख ज्योत्स्ना परं ब्रह्मेति शब्दितम् ।

श्रीभगवान् बोले—

तुम सब को मनोरथ दुर्ल्लभ—एवं दुर्घट है, मेरे अनुमोदन से सब सफल होता है ।६६।

आगामी सृष्टि के लिए ब्रह्मा का आविर्भाव होनेपर सारस्वत कल्प नाम होगा, उस समय तुम सब व्रज में गोपी होकर आविर्भूत होगी, ।६७।

पृथिवीस्थ भारत क्षेत्रके मथुरा मण्डलस्थ वृन्दावन के रास मण्डल में तुम सबके प्रिय बनूँगा ।६८।

जार धर्म से सर्वतोऽधिक सुदृढ़ सुस्नेह होता है, मुझ को प्राप्त कर तुमसब कृत कृत्य होजाओगी ।६९।

ये वचन सुनकर श्रुतियां भगवान् के रूप का चिन्तन करने लगी, एवं उक्तकाल आनेपर व्रज में वे गोपीरूपमें आविर्भूत हुईं ।७०

अनन्तर द्वापर के अन्तिम भाग में सर्वेश्वरेश्वर श्रीकृष्ण श्रुतियों को वर देने के लिए प्रकट हुए ॥७१॥

स एव वृन्दावन भूविहारी नन्दनन्दनः ।।७२।।

कृष्णचन्द्र पदद्वन्द्व मकरन्देषु लम्पटः ।

प्रेमाश्रु लोचनो भूत्वा शङ्करो वाक्यमब्रबीत् ।।७३।।

वयञ्च वैष्णवा देव गुरोऽपि विद्वदात्मनः ।

यत् पिवामो मुहुस्तत्तः पुण्यं कृष्णकथामृतम् ।७४।

भगवान् देव देवेश लोकनाथ जगत्पते ।

ब्रूहि तत्त्वं पितर्मह्यं गोपोनांम युतं शुभम् ।७५।

कृष्णपारिषदादीनामग्रजस्य महात्मनः ।

सर्वेषां कृपया ब्रूहि नाम कर्मानु कीर्त्तनम् ।७६।

ब्रह्मोवाच—

साधु साधु कृतः प्रश्नोभवता भगवत् प्रियः ।

यतः साधु स्वभावस्त्वं कृष्णपादाब्जतत्परः ।७७।

जिनकी पादनखज्योत्स्ना को ही पर ब्रह्म कहा जाता है। वह ही श्रीवृन्दावन भूविहारी नन्दनन्दन है ।७२।।

कृष्णचन्द्र पद द्वन्द्वमकरन्द के प्रति समासक्त शङ्कर प्रेमाश्रुपूर्ण लोचन होकर अग्रिम वाक्य कहे थे ।७३।।

हे देव ! हमसब वैष्णव, सुविज्ञ गुरुवर्य्य आप से पुनः पुनः पुज्य कृष्ण कथामृत पान करते हैं ।७४।

हे देव, देवेश, लोकनाथ जगत् पति प्रभु आप गोपीनाम युक्त तत्त्व का वर्णन करें ।७५।

निखिल कृष्ण पारिषदों के अग्रणी व्यक्तियों के नाम कर्मानु कीर्त्तन का कृपया वर्णन करें ।७६।

ब्रह्माजीने कहा—

आपने उत्तम, सर्वोत्तम प्रश्न किया है, क्यों कि आप साधु स्वभाव, भगवत् प्रिय, कृष्ण पादाब्ज तत् पर हैं ।७७

शृणु देव महाभाग रहस्य वेदगोपितम् ।
यत् स्वयं पद्मनाभस्य मुखपद्माद्विनिसृतम् ।७८।

श्रीभगवानुवाच—

एकदाहं गतो हर्षान्महा वैकुण्ठधामनि ।
अपश्यं परमानन्दमूर्त्ति मद्भुतदर्शनम् ।७९।
अष्टबाहुधरं रम्यं महा विष्णुं सनातनम् ।
महार्हे–रत्नमासीनं चारुहासावलोकनम् ।८०।
सूर्यकोटिप्रतीकाश चन्द्रकोटिसुशीतलम् ।
चारुपीताम्बरधरं श्यामसुन्दरविग्रहम् ।८१।
वामाङ्गसंस्थिता देवी महालक्ष्मी महेश्वरी ।
दृष्ट्वैव तं प्रसन्नास्यं सुभ्रुवं सुस्मिताननं ।८२।
प्रवृद्ध प्रेम बाष्पाम्बु पूर्णनेत्रोऽतिविह्वलः ।
भूयोभूयः प्रणम्यैनं किञ्चिद्वक्तुं ततोऽस्म्यहम् ।।८३।।

हे देव ! हे महाभाग ! वेद गोपित रहस्य का श्रवण करें। जो रहस्य, स्वयं पद्मनाभ के मुख पद्म से विनिसृत हुआ है ।।७८

श्रीभगवान् ने कहा—

एकदिन मैं आनन्द से महावैकुण्ठ धाम गया, वहाँपर जाकर अद्भुत दर्शन परमानन्द मूर्त्ति का दर्शन किया ।७९।

अष्ट बाहु, रम्य, सनातन, महाविष्णु महार्ह रत्नासनमें उपविष्ट है, उनके अवलोकन चारु हास्य युक्त है ।८०।

कोटि सूर्य के समान कान्ति एवं कोटि चन्द्रके समान सुशीतल है, श्यामसुन्दर विग्रह चारुपीताम्बर धारण किएहुए हैं ।८१।

महा लक्ष्मी महेश्वरी वाम भागमें अवस्थित है, सुस्मिलानन सुभ्रुव–प्रसन्न वदन को देखकर प्रवर्द्धित प्रेम बाष्प से परि पूर्ण नेत्र

ततो मा पद्महस्तेन शीतलेनापि वत्सलः ।
उत्थाप्यालिङ्ग्य भगवान् प्रपच्छ स्वागतं यथा ।८४।
तस्येदं बचनं श्रुत्वा कथितं मे मुहुर्मुहुः ।
स्वागतं स्वागतं देव श्रुत्वा तवानुग्रह कारणम् ।८५।
ततो मां कथयामास भगवानादिपूरुषः ।
कृष्णस्य चरितं चित्रं मनोहरमनोहरम्
नित्यं सत्य गुणातीतं ब्रह्मानन्दैक सागरम् ।८६।

महाविष्णुरुवाच—

अहो मूढ़ा न जानन्ति कृष्णस्य नित्यसात्त्वतम् ।
यस्य पादनख ज्योत्स्ना परं ब्रह्मेतिशब्दितम् ।८७।
वनं वृन्दावनं नाम तस्य धाम मनोहरम् ।
नित्यं सत्यं गुणातीतं ब्रह्मानन्दैकसागरम् ।८८।

अतिविह्वल होकर पुनः पुनः प्रणाम करके कुछ निवेदन करने के लिए मैंने प्रणाम किया ।।८२।८३।।

इस के बाद परम वत्सल भगवान् अतिशीतल पद्म हस्त के द्वारा उठाकर आलिङ्गन करके स्वागत प्रश्न किये ।८४।

उनके वचन सुनकर मैंने पुनः पुनः कहा, 'स्वागतं स्वागतं देव तव अनुग्रह कारणम्' ८५।।

अनन्तर आदि पुरुष भगवानने चित्रमनोहर कृष्णके चरितको कहा, जो नित्य सत्य गुणातीत ब्रह्मानन्दैक सागर स्वरूप हैं ।८६।

महाविष्णुबोले—

आश्चर्यहै कि मूढ़ मानवगण नहीं जानते हैं कि जिन श्रीकृष्ण के पादनखकी ज्योत्स्ना को नित्य सात्त्वत परब्रह्म शब्दसे कहाजाताहै।

उनका धाम अतिमनोहर वृन्दावन नामक वन है, जो नित्य,

अमृतं शाश्वतञ्चैव चिदानन्दसुखात् परम् ।
रसानन्दं महानन्दं नित्यानन्दैककन्दरम् ।८८।
अनन्तं परमानन्दं प्रेमानन्दसुखाश्रयम् ।
यत्रापि गोपिकाः सर्वाः गायन्ति कृष्णमङ्गलम् ।८०।
कल्पद्रुमसमाकीर्णं सुपक्षिगण नादितम् ।
अशेषचन्द्र सूर्याग्नि तुल्यवर्च्चं समव्ययम् ।।८१।।
असंख्यमजरं रम्यं सर्ववेदान्तगोचरम् ।
नानापुष्पमयोद्यानं चिदानन्दैककन्दरम् ।।८२।।
प्राकारैश्च विमानैश्च सौरिरत्नमयैर्वृतम् ।
चित् स्वरूपं चिदानन्दं सदाकुण्ठं सनातनम् ।।८३।।
एवमादिरसोपेतं कृष्णधामाप्यनामयम् ।
चतुर्द्वारसमायुक्ता पुरी गोपुरसंयुता ।।८४

सत्य, गुणातीत, ब्रह्मानन्द का सागर स्वरूप हैं ।।८८।।

शाश्वत अमृत रूप है, चिदानन्द सुख से भी अतीतहै, रसानन्द महानन्द एवं नित्यानन्द का एकमात्र उत्स हैं ।८९।।

अनन्त परमानन्द रूप है, एवं प्रेमानन्द सुख का आश्रय भी है जहाँ निखिलगोपिकागण कृष्णमङ्गल गाती रहती है ।९०।।

वह कल्प द्रुमों से व्याप्त है। एवं उत्तम पक्षिगणों से निनादित है, अशेष चन्द्रसूर्य के समान अव्यय कान्ति युक्त हैं ।९१।

सर्व वेदों के अगोचर असंख्य, अजर, रम्य अनेक पुष्पमय उद्यानयुक्त है एवं चिदानन्द का मूल भाण्डार है ।९२।

प्राकार व विमानसमूह सूर्य कान्ति युक्त है, वह चित् स्वरूप चिदानन्द सदा अकुण्ठ, सनातनरूप है ।९३।

उक्त प्रकार अनामय श्रीकृष्ण धाम आदिरसयुक्त है। चतुर्द्वार समायुक्त पुरी है, और गोपुर से शोभिता है ।९४।

सुनन्दाद्यैश्च गोपालैः पार्षदैश्च सुरक्षिता
मणिकाञ्चन रत्नाढ्य प्राकारै स्तोरणैर्वृता ॥९५॥
आरूढ़ यौवनोल्लास दिव्यनारीभिरावृता ।
विमानै गृंह मुख्यैश्च प्रासादैर्बहुभिर्वृता ॥९६॥
तन्मध्ये नगरी दिव्या गोविन्दानन्द धामनी ।
तन्मध्ये मन्दिरं दिव्यं प्रेमधाम महोत्सवम् ॥९७॥
मध्ये सिंहासनं रम्यं सर्वलोकनमस्कृतम् ।
सूर्य कोटि प्रतीकाशं महापद्म मनोहरम् ॥९८॥
तन्मध्ये कर्णिकायान्तु सावित्र्यां शुभदर्शनम् ।
ज्योतिरूपेण मनुना कामवीजेन संस्कृतम् ॥९९॥
ईश्वर्य्या सह गोविन्द स्तत्रासीनः परः पुमान् ।
रसालजलदश्यामो नित्यानन्दकलेवर ॥१००॥

सुनन्द आदि पार्षद गोपालों के द्वारा वहपुरी सुरक्षिता है, जिस में मणि काञ्चन रत्न युक्त प्राचीर, तोरण आदि विद्यमान है ॥९५॥

आरूढ़ यौवनोल्लास से शोभित दिव्य नारियों से शोभित है, एवं विमान मुख्य गृह अनेक प्रासादों के द्वारा शोभित है ॥९६॥

उसके मध्यमें गोविन्दानन्द धामनी नामक दिव्यानगरी विराजित है, उसके मध्य में प्रेम धाम महोत्सव दिव्य मन्दिर विराजित है।

मध्य में सर्वलोक नमस्कृत कोटि सूर्य्य के समान कान्तियुक्त महा पद्ममणि के द्वारा मनोहर कारुकार्य युक्त मनोरमसिंहासन विराजित है ॥९८॥

उसके मध्यस्थ समूह लीलाविस्तारकारी कर्णिकामें ज्योतिरूप शुभ दर्शन कामवीज मन्त्र विन्यस्त है ॥९९॥

वहाँपर ईश्वरी भानुनन्दिनीके साथ रसाल जलदश्याम नित्या

नित्य यौवन संयुक्तो राधिकारतिसागरः ।
वृन्दावन कलाधीशः परमानन्दहेतुकः ॥१०१
प्रेमानन्द कलानन्द विहारामृत नागरः ।
कन्दर्प दर्पनाशाय भङ्गुरभ्रूभुजङ्गमः ॥१०२॥
नासामुक्ता समायुक्तश्चारु वक्त्रारुणेक्षणः ।
चारुचन्दन लिप्ताङ्गो वनमाला विभूषितः ॥१०३
श्रीखण्ड मण्डलोपेतः स्फुरन्मकरकुण्डलः ।
नानारत्नस्रगासक्तकम्बुग्रीवा विराजितः ॥१०४॥
बालार्कार्बुदसंकाशैः कौस्तुभाद्यैः सुभूषणः ।
चारुपीताम्बरधरो रसनां विलसत् कटिः ॥१०५॥

नन्दकलेवर परम पुरुष श्रीगोविन्द विराजित है ।१००।

आप नित्ययौवन संयुक्त, राधिकारति सागर, वृन्दावन कला धीश परमानन्द के एकमात्र हेतु है ।१०१

आप प्रेमानन्द कलानन्द-विहारामृत नागर स्वरूप है । कन्दर्प दर्प को विनाश करने के लिए आप की भ्रूलता अद्भुत रीति से विराजित है ।१०२।

नासिका चारु मुक्ता से शोभित है, मुखमण्डलभी अपूर्वशोभित है, भाव पूर्व ईक्षण से नेत्र भी मनोरमहै। श्रीअङ्ग चारु चन्दन से चर्चित है, गलदेश वनमाला से भूषित है ।१०३।

श्रीखण्ड मण्डल से युक्त वदन कमल शोभित है, उस में मकर कुण्डल शोभित हैं, अनेक रत्नों से जटित हार से कम्बुग्रीवा सुशोभित है ।१०४।

अर्बुद अर्बुद बालसूर्य के समान कान्ति युक्त कौस्तुभादि भूषणों से श्रीअङ्ग भूषित है । मनोरम पीताम्बर धारण किए हुए हैं रसना के द्वारा कटिदेश शोभित है ।१०५।

अनन्तचन्द्रसंकाशनखपङ्क्तिभिरावृतः ।
कृष्णैः श्वेतैश्च पीतैश्च रक्तैः पारिषदैर्वृतः ॥१०६॥
नाना केलि कलानाथो नृत्यलीला–विशारदः ।
कन्दर्पार्बुदलावण्यः सौन्दर्यनिधिरच्युतः ॥१०७॥
वामाङ्ग संस्थिता देवी राधिका वार्षभानवी ।
सुन्दरी नागरी गौरी कृष्णहृद्भृङ्गमञ्जरी ॥१०८
विचित्र पट्ट चार्वङ्गी पुष्पाञ्चित सुकुन्तला ।
गोविन्ददर्शनाह्लाद दृगञ्चल सु चञ्चला ॥१०९॥
कन्दर्पदर्पनाशाय भङ्गुर भ्रूभुजङ्गमा ।
पीतांशुकांशुकाकर्षि निस्तलस्तनदाड़िमा ॥११०
त्रिभङ्गी-रस आनन्दा प्रेमाङ्गी कृष्णवत्सला ।
मणि किङ्किण्यलंकारशोभितश्रोणिमण्डला ॥१११

अनन्त चन्द्र के समान नख राजि विराजित है। कृष्ण, श्वेत, पीत, रक्त वर्ण के पारिपद के साथविराजित हैं ।१०६।

अच्युत नाना केलिकलानाथ,नृत्यलीला विशारद, अर्बुदकन्दर्प के समान लावण्य युक्त, एवं सौन्दर्य के निधि हैं ।१०७।

आप के वामभाग में वार्षभानवी देवी सुन्दरी, नागरी गौरी, कृष्ण हृद् भृङ्ग--मञ्जरी राधिका विराजित है ।१०८॥

आप विचित्र मनोरम वसनोंसे भूषितहैं,मनोरमअङ्गसौष्ठव है, आपके कुन्तल पुष्पों से भूषित है, श्रीगोविन्द दर्शन के लिए आपके नयनाञ्चल चञ्चल हैं ।१०९

कन्दर्प दर्प विनाशकारी जापकी भ्रूलता विराजितहै, पीताम्बर को आकर्षण करने में सुदक्ष निस्तल वक्षोज से आप सुशोभित है ।११०

आप त्रिभङ्गी रस आनन्द स्वरूप है, प्रेमाङ्गी, कृष्णवत्सलाहैं

गोविन्दनेत्र सुखदा गोपी चूड़ाग्रमालिका ।
कृष्णप्रियारविन्दाक्षी विहारामृतदीर्घिका ॥११२॥
अनुरागसुधासिन्धो हिल्लोलान्दोलविग्रहा ।
कुमारी कृष्ण दयिता कृष्णकृष्णाङ्गभूषिता ॥११३॥
दिव्याङ्गविलसद्वासः प्रपदान्दोलिताञ्चला
रासोत्सवावेशिनीच कृष्णनीतरहः स्थली ॥११४॥
प्रकृत्यागुण रूपिण्यारूपेणपर्य्युपासिता ।
नित्यसत्या गुणातीता सर्वप्रलयवर्जिता ॥११५॥
गृहीत्वा चामरान् रम्यान् चन्द्रार्बुदसमप्रभान् ।
सर्वलक्षणसम्पन्ना मोदते पतिमच्युतम् ॥११६॥
अन्तःपुर–निवासिन्यो गोप्यश्चायुतसंख्यकाः ।
पद्महस्ताश्च ताः सर्वाः कोटि वैश्वानरप्रभाः ॥११७॥

आपके गोल मण्डल मणि किङ्किणी अलङ्कारों से शोभित है ।११११

आप गोविन्द नेत्र सुखदा है, गोपी चूड़ाग्रमालिका, कृष्णप्रिया अरविन्दाक्षी, विहारामृत दीर्घिका है ।११२।

श्रीअङ्ग अनुराग सुधासिन्धु के हिलोर से सदा आन्दोलित है, आप कुमारी, कृष्ण दयिता, कृष्ण कृष्णाङ्ग भूषिता हैं ।११३।

दिव्य अङ्ग में पादाग्रपर्यन्त मनोरम वसनाञ्चल शोभित है । आप रासोत्सवावेशिनी, कृष्णनीत रहः स्थली है । ११४।

आप गुण रूपिणी प्रकृति की उपास्या है, नित्या, सत्या, गुणातीता एवं सर्वप्रलय वर्जिता हैं, ।११५।

अर्बुद चन्द्रके समान धवल रम्य चामरव्यजन से सर्वलक्षण सम्पन्ना आप पति अच्युत के आनन्द विधान करती हैं, ।११६।

अयुत संख्यक गोपियां अन्तः पुर निवासिनी हैं, वे सब पद्म हस्ता कोटि वैश्वानर की भांति कान्ति युक्ता हैं, ।११७।

नानालक्षणसंयुक्ताः शीतांशुसदृशाननाः ।
ताभिः परिवृतः कृष्णः शुशुभे परमः पुमान् ॥११८॥
तस्याग्रेभगवान् राम आसीनः सुमहासने ।
नित्य यौवन संयुक्तो नयनानन्दविग्रहः ॥११९॥
अपाङ्ग ङ्गितसंयुक्तो रम्यवक्त्रारुणेक्षणः ।
कोटि कोटीन्दुसङ्काश–लावण्यामृत सागरः ॥१२०॥
नीलकुन्तल संसक्त-वामगण्ड–विभूषितः ।
सुस्निग्धनील कुन्तलनील वस्त्रोपशोभितः ॥१२१॥
नीलरत्नाद्यलङ्कार सेव्यमानस्तनुश्रिया ।
विलस्त नीलवसन रसना विलसत् कटिः ॥१२२॥
नीलमञ्जीर संसक्त सुपदद्वन्दराजितः ।
कोटि चन्द्र प्रतीकाशनखमण्डलमण्डितः ॥१२३॥

अनेक लक्षण संयुक्ता, शीतांशु सदृशानना: गोपियों से परिवृत परम पुरुष श्रीकृष्ण अतिशय शोभित होते हैं ।११८॥

श्रीकृष्ण के अग्रभागमें सुमहासनमें भगवान् बलराम उपविष्ट है । आप नित्य यौवन संयुक्त नयनानन्द विग्रह हैं ॥११९।

अपाङ्ग वीक्षण युक्त रम्य वदन कमल अनुराग पूर्ण भङ्गी से शोभित है, कोटि कोटि इन्दु के समान कान्ति एव लावण्यामृत का सागर स्वरूप है ।१२०।

आपका वामगण्ड नील कुन्तल के सम्पर्क से अतिशय भूषित है । सुस्निग्धनील कुन्तल एव परिधेय नील वसनसे सुशोभितहै ।१२१

तनुकान्ति के द्वारा नील रत्नादि अलंकारों को शोभित करती है । नील बसन, एवं रसना के द्वारा कटि देश सुशोभित हैं ।१२२।

मनोरम चरण कमल नील मञ्जीरों से शोभित है । उस में नख

रेवत्याद्यनुचर्यश्चशतसंख्यास्तु योषितः ।
ताभिः परिवृतो रामः शुशुभे परमः पुमान् ॥१२४॥
यथा कृष्ण स्तथारामः सुवाहुःसुवलोऽपिच ।
श्रीदामा वसुदामाच सुदामा च महावलः ॥१२५॥
लवङ्गश्च महावाहुः स्तोककृष्णोऽ र्जुनस्तथा ।
अंशुको वृषभश्चैव वृषलोजयमालवः ॥१२६॥
ऊर्ज्जस्वी च शुभप्रस्थो विनोदी च वरुथपः ।
रसिकश्च मदान्धश्च महेन्द्रश्चन्द्रशेखरः ॥१२७॥
रसालश्च रसान्धश्च रसाङ्गश्च महावलः ।
सुरङ्गो जयरङ्गश्च रङ्गश्चानन्द कन्दरः ।१२८।
नन्द सुनन्द आनन्दश्चञ्चलश्चपलोबलः ।
श्यामलो विमलो लोलः कमलः कमलेक्षणः ॥१२९॥

मण्डल और चन्द्र के समान सुशोभित है, ॥१२३॥

रेवती प्रभृति अनुचरी असंख्य नारियों से परिवृत परम पुमान् राम अतिशय शोभित है ।१२४॥

जैसे कृष्ण है, राम भी वैसे है, और उनके सहचर भी वैसे ही है । उन सबका नाम इस प्रकारहै । सुवाहु सुवल, श्रीदामा, वसुदामा महाबल ॥१२५॥

लवङ्ग, महावाहु, स्तोक कृष्ण, अर्जुन, अंशुक, वृषभ, वृषल, जय मालव, ।१२६।

ऊर्ज्जस्वी, शुभप्रस्थो विनोदी, वरुथप, रसिक, मदान्ध, महेन्द्र चन्द्रशेखर ।१२७।

रसाल रसान्ध, रसाङ्ग, महाबल, सुरङ्ग, जयरङ्ग, रङ्ग, आनन्दकन्दर ॥१२८॥

नन्द, सुनन्द, आनन्द चञ्चल, कमल, बल, श्यामल, विमल,

मधुरश्च रसान्धश्च माधवश्चन्द्रवान्धवः
सुरथश्च महानन्दो गन्धर्वश्चन्द्रवान्धवः ॥१३०॥
कन्दर्प केलिदर्पश्च रन्सेद्रः सुन्दरो जयः ।
महेन्द्रश्च सुगन्धर्वः सरसेन्द्रः कलालयः ॥१३१॥
सुमुखो यशसीन्द्रश्च सानन्दश्चन्द्र भावनः ।
रसभृङ्गो रसालाङ्गो विलासः केलिकाननः ॥१३२॥
अनन्तः कोलिवान् कामः प्रेमभृङ्गः कलानिधिः ।
सवलोनागरः श्यामः सुकामः सरसो विधिः ॥१३३॥
गौराङ्गः स्तोकगोविन्दो देवेन्द्रश्चन्द्रमालयः ।
श्यामाङ्गः परमानन्दो रसाङ्गश्चन्द्रयादवः ॥१३४॥
कृष्णाङ्गः स्तोकदामाच विभङ्गो रसमानवः ।
प्रेमाङ्गः स्तोक वाहुश्च हेमाङ्गो जययादवः ॥१३५॥

लील, कमल, कमलेक्षण ॥१२९॥

मधुर, रसान्ध, माधव, चन्द्रमाधव, सुरथ, महानन्द गन्धर्व श्चन्द्र वान्धव ॥१३०॥

कन्दर्प, कलिदर्प, रसेन्द्र, सुन्दर, जय, महेन्द्र सुगन्धर्व सरसेन्द्र, कलालय ॥१३१॥

सुमुख यशसीन्द्र, सानन्द चन्द्रभावन, रसभृङ्ग, रसालाङ्ग, विलास, कलिकानन ।१३२।

अनन्त, कोलिवान्, काम, प्रेमभृङ्ग, कलानिधि सवल, नागर, श्याम, सुकाम, सरस, विधि ।१३३

गौराङ्ग, स्तोकगोविन्द, देवेन्द्र चन्दमालय, श्यामाङ्गः परमानन्द, रसाङ्ग चन्द्रयादव ॥१३४॥ कृष्णाङ्गः स्तोकदामा विभङ्ग रसमानव, प्रेमाङ्ग, स्तोक, वाहुहेमाङ्ग, जय यादव ॥१३५॥ रक्ताङ्ग,

रक्ताङ्गः स्तोकदामा च त्रिभङ्गश्च सुनागरः
पवनेन्द्रः सुरेन्द्रश्च सुरथेन्द्रोजयद् व्रतः ॥१३६॥
सुखदो मोहनो दामा केलिदामा सुमन्मथः ।
सुचन्द्रश्चन्द्रमानिन्द्रो विजयोजयशेखरः ।१३७।
उपेन्द्रः स्तोकदामा व सुजयः स्तोकनागर ।
वसन्तश्च सुमन्तश्च रसवान् रसकन्दरः ॥१३८॥
कामेन्द्रः कामवान् कामोजितेन्द्रश्चन्द्र चञ्चलः ।
दम्भः सुदम्भो दाम्भिकः परदम्भो विदम्भकः ॥१३९
प्रेमदम्भः सुगन्धिश्च सुदम्भोदम्भनायकः ।
उपनन्दश्चारुनन्दो रसानन्दो विलोचनः ॥१४०॥
जयनन्दः प्रेमनन्दो दर्पनन्दः सुमोहनः ।
भद्रनन्दश्चन्द्रनन्दो वीरनन्द सुधाकरः ॥१४१॥
बलनन्दो बाहुनन्दः स्तोकनन्दो यशस्करः
उपनन्दो कृष्णनन्दो गौरनन्दोविशारदः ।१४२।
श्यामनन्दो दामनन्दः सुखनन्दः प्रियम्बदः ।

रक्ताङ्ग दामा त्रिभङ्ग सुनागर, पवनेन्द्र सुरेन्द्र सुरथेन्द्र, जयद्व्रत ।१३६ सुखद, मोहन दामा, केलिदामा, सुमन्मथ । सुचन्द्र, चन्द्रमान् इन्द्र, विजय जयशेखर ॥१३७॥ उपेन्द्र, स्तोक दामा, सुजय, स्तोक नागर, वसन्त, सुमन्त रसवान् रसकन्दर ॥१३८॥

कामेन्द्र, कामवान् काम, जितेन्द्र, चन्दचञ्चल, दम्भ, सुदम्भ, दाम्भिक, परदम्भ, विदम्भक ॥१३९॥ प्रेम दम्भ, सुगन्धि, सुदम्भ दम्भ नायक, उपनन्द, चारुनन्द, रसानन्द विलोचन, ॥१४०॥ जयनन्द प्रेम नन्द दर्पनन्द सुमोहन । भद्रनन्द चन्द्रनन्द्र वीरनन्द सुधाकर ॥१४१॥ बलनन्द, बाहुनन्द स्तोकनन्द यशस्कर । उपनन्द कृष्णनन्द गौरनन्द

उपकृष्णः कलाकृष्णः बाहुकृष्णः सुखाकरः ।१४३।।
उपसामा रसस्तोकः प्रेमदामाजयप्रदः ।
मधुकण्ठो विकुण्ठश्च सुधाकण्ठः प्रियव्रतः ।१४४।
रसकण्ठश्च वैकुण्ठः सुकन्दश्चन्द्र सुन्दरः ।
केलि कण्ठः प्रेमकण्ठो वरकण्ठो रसम्बदः ।१४५।
जयकण्ठ कलाकण्ठोऽमृत कण्ठः कलाकरः ।
नृत्यकेन्द्रो नृत्यशक्तो नृत्यमान नृत्यशेखरः ।।१४६।।
नृत्यरङ्गो नृत्यतुङ्गो नृत्यानन्दः सुयोधनः ।
रसचन्द्रः कामचन्द्रो रूपचन्द्रो विमोहनः ।१४७।
केलिचन्द्रः केलिदर्पः सदर्पो दर्पनागरः ।
प्रेमेन्द्रः प्रेमचन्द्रश्च प्रेमरङ्गाद्य स्तथा ।।१४८
अयुता युतगोपालो रामकेशवयोः सखा ।
तेषां रूपं स्वरूपञ्च गुणकर्मादयोऽपिच ।।१४९।।
नाहं वर्णयितुं शक्यः कल्प कोटिशतैरपि ।

विशारद ।।१४२।। श्यामनन्द, दामनन्द, सुखनन्द प्रियम्वद, उपकृष्ण कलाकृष्ण बाहुकृष्ण सुखाकर ।।१४३।। उपसामा रसस्तोक प्रेमदामा जयप्रद, मधुकण्ठ विकुण्ठ सुधाकण्ठ प्रियव्रत ।।१४४।। रसकण्ठ वैकुण्ठ सुकन्द चन्द्रसुन्दर केलिकण्ठ प्रेमकण्ठ वरकण्ठ रसम्बद ।।१४५।। जय कण्ठ कलाकण्ठ अमृतकण्ठ कलाकर नृत्यकेन्द्र नृत्यशक्त नृत्यमान् नृत्य शेखर ।।१४६।। नृत्यरङ्ग नृत्यतुङ्ग नृत्यानन्द सुयोधन रसचन्द्र काम चन्द्र रूपचन्द्र विमोहन ।।१४७।। केलिचन्द्र केलिदर्प सुदर्प दर्पनागर प्रेमेन्द्र प्रेमचन्द्र प्रेमरङ्गा प्रभृति ।।१४८।। अयुत अयुत गोपाल राम केशवके सखा हैं। उनके रूप स्वरूप गुण कर्म प्रभृति का ।।१४९।।

चन्द्रमण्डलसंकाश सुस्मितानन पङ्कजः ।१५०।
कृष्ण प्रेमरसामोदमदाघूर्णितलोचनः ।
सदानृत्यरसाह्लाद पुलकप्रेम विह्वलः ॥१५१॥
सुन्दरो नागरो गौरः सुबाहुः स प्रकीर्त्तितः ॥१५२॥
गौराङ्गो नादगम्भीरो महादम्भ समन्वित ।
रसभावः सदामोदः परमानन्दकन्दरः ॥१५३॥
कन्दर्प कोटिसौन्दर्यो नृत्य लीलाविशारदः
सदाप्रेमरसाह्लादः सुवलःपरिकीर्त्तितः ।१५४।
महारङ्ग रसोल्लास-रक्तोत्पल समप्रभः ।
पुलक स्वेद संयुक्तो रति लेखाविशारदः ।१५५॥
गायको नर्त्तकश्चैव माल्यश्चन्दन जीवनः
ईषदारक्त गौराङ्ग श्रीदामा स प्रकीर्त्तितः ॥१५६॥
सदानन्द रसोल्लासः श्यामसुन्दरविग्रहः

वर्णन करने में शत कोटि कल्प में भी कोई समर्थ नहीं है । चन्द्रमण्डल के समान सुस्मित आनन पङ्कज, कृष्ण प्रेमरस के आमोद मद से आघूर्णित लोचन, सदानृत्यरसाह्लाद से पुलकायित वपु एवं अन्तः करण प्रेमविह्वल सुन्दर, नागर, गौर सुबाहु को जानना होगा ॥१५० ॥१५२॥ गौराङ्ग, नादगंभीर, महादम्भ समन्वित रसभाव सदामोद परमानन्द कन्दर है ॥१५३॥ कन्दर्प कोटिसौन्दर्य नृत्यलीला विशारद सदाप्रेम रसाह्लाद सुवल है ॥ ५४॥

महारङ्ग रसोल्लास रक्तोत्पलके समान कान्ति पुलक स्वेद संयुक्त रति लेख में विशारद ॥१५५॥

गायक, नर्त्तक माल्य चन्दन जीवन, ईषद् आरक्त गौराङ्ग श्रीदामा है ॥१५६॥

गायको नर्त्तक श्चैव महानन्दैकसागरः ।१५७।
रमणीनां पराधीनः दृगञ्चल–मनोहरः ।
पुलक प्रेमसंयुक्तो वसुदामा प्रकीर्त्तितः ।१५८
रासको नागरो गौरः शरदम्बुरुहेक्षणः
अग्रन्थि सरल स्थूल उन्मादनृत्यसुन्दरः ।१५९।
महारास रसाह्लाद पुलको प्रेमविह्वलः ।
नानारङ्ग रसोपेतः सुदामा स प्रकीर्त्तितः ।१६०।
नवीन नीरदश्यामो वेणुनोत्पुलकावलिः ।
कृष्णानन्द रसोन्माद विह्वलो नृत्य चञ्चलः ।१६१।
सदारति-रसामोद–नाना रङ्गैक कन्दरः ।
नाति दीर्घो न खर्वश्च महाबलः प्रकीर्त्तितः ।१६२।
अनङ्गवृन्द सौन्दर्य्य-नानामृत रसायनः ।
महाशान्तो महादान्तो मधुराकृति सुन्दरः ।१६३।

सदानन्द रसोल्लास श्यामसुन्दर विग्रह गायक नर्त्तक महानन्द का सागर स्वरूप ।।१५७।। रमणियों के अधीन मनोहर नयनाञ्चल, पुलक प्रेम संयुक्त वसुदामा है ।।१५८।।

रासिक नागर गौर शरदम्बुरुहेक्षण, अग्रन्थि सरल स्थूल उन्मा नृत्य सुन्दर ।।१५९।। महारास रसाह्लाद पुलकप्रेम विह्वल, नानारङ्ग रस युक्त सुदामा है ।।१६०।।

नवीन नीरदश्याम, वेणु ध्वनि श्रवण से पुलकायित वप् कृष्णानन्द रसोन्माद विह्वल नृत्य चञ्चल । १६१

सदारति रसामोद नानारङ्गों के भान्डार स्वरूप नाति दीर्घ नाति खर्व भी नहीं, महाबल है ।।१६२।।

अनङ्ग, वृन्द सौन्दर्य, नाना अमृत रसायन, महाशान्त, महा

गोविन्द दर्शनाह्लाद–वेणुगान विशारदः ।
भ्रूभङ्गकामकोदण्डो लवङ्गः स प्रकीर्त्तितः ।१६४।
सदानन्द मनोन्माद रसामोदक–कन्दरः ।
महाबलभव श्रीमान् पुलकावलिविग्रहः ।१६५।
सुदीर्घः सुन्दरो गौरो महाप्रेमरसाकुलः ।
सदाप्रेमी रसाह्लादो महाबाहुः प्रकीर्त्तितः ।१६६।
प्रफुल्ल पुण्डरीकाक्षो मन्द हास्यारुणोदयः ।
कृष्णानन्द रसामोद उन्माद नृत्य सुन्दरः ।१६७।
पुलक प्रेम–संयुक्तो मात्सर्य्यादि निवारितः ।
चिरवास रसाह्लादः स्तोक कृष्णः प्रकीर्त्तितः ।१६८।
कृष्णप्रेम रसाह्लाद विह्वलो नृत्य चञ्चलः ।
अरुणेन्दीवरश्रेणीदलनिन्दितलोचनः ।।१६९।।
चारुचन्दनलिप्ताङ्गो बनमाला-विभूषितः
सदारासरसासक्तोऽर्ज्जुनः स परिकीर्त्तितः ।१७०।

दान्त, मधुरकृति सुन्दर, ।।१६३।। गोविन्द दर्शन से आनन्दित चित्त, वेणुगान विशारद भ्रूभङ्ग कामकोदण्ड लवङ्ग का स्वरूप है ।।१६४।।

सदानन्द मदोन्मादरसामोद के कन्दर महाबल युक्त श्रीमान् पुलकावलिशोभित देह ।।१६५।। सुदीर्घ सुन्दर, गौर महाप्रेम रसाकुल सदा प्रेमी रसाह्लाद महा बाहुकास्वरूप है ।।१६६।।

प्रफुल्ल पुण्डरीकाक्ष स्मित हास्य अनुराग पूर्ण प्रयत्न, कृष्णानन्द रसामोद उन्माद नृत्य सुन्दर ।।१६७।। पुलक प्रेम संयुक्त मात्सर्य्यादि रहित, महचर आनन्दित स्तोककृष्ण का स्वरूप है ।।१६८।।

कृष्ण प्रेम रसास्वाद में विह्वल नृत्य चञ्चल अरुण इन्दीवर श्रेणी–दल निन्दित लोचन, ।।१६९।।

सुदीर्घः सुन्दरो गौरो महाप्रेम रसाकुलः।
नृत्य रङ्गसमायुक्तोऽशुकः स प्रकीर्त्तितः ।१७१।।
कृष्ण प्रेम रसोन्मादः कृष्णवर्णं कलेवरः ।
वेणुगानमदामोदः वृषभः स प्रकीर्त्तितः ।१७२।
नृत्यगीत समापेतस्तप्तकाञ्चन विग्रहः ।
प्रेमवारि समाकीर्णो मालवः स प्रकीर्त्तितः ।।१७३।
सदा प्रेम रसोल्लासः श्याम सुन्दर विग्रहः ।
गायकोनर्त्तकश्चैव वृषलः स प्रकीर्त्तितः ।१७४।
सदाप्रेम रसामोदमदमुद्रित लोचनः ।
कृष्णातिनाद गम्भीर ऊर्ज्जस्वी स प्रकीर्त्तितः ।१७५।
कृष्ण प्रेम रसोन्मत्तः कृष्णहुंकृति विह्वलः
पुलकावलि संसक्तः शुभप्रस्थः प्रकीर्त्तितः ।१७६।

गात्र चन्दन लिप्त देह. वनमाला-विभुषित, सदारास रसासक्त अर्जुन है ।।१७०।।

सुदीर्घ सुन्दर,गौर महाप्रेम रसाकुल, नृत्यरङ्ग समायुक्त अंशुक का स्वरूप है ।।१७१।

कृष्णप्रेम रसोन्माद, कृष्णवर्णकलेवर वेणुगान मदसे आनन्दित वृषभ है ।१७२।

नृत्यगीत युक्त, तप्त काञ्चन के समान विग्रह है, प्रेम वारि से आप्लुत मालव है ।१७३। सदा प्रेम रसोल्लास, श्यामसुन्दर विग्रह, गायक—व नर्त्तक वृषल है ।।१७४। सदा प्रेम रसामोद मदसे मुद्रित लोचन कृष्णनाम लेकर गम्भीर नाद परायण उर्ज्जस्वी है ।१७५।

कृष्ण प्रेमरसोन्मत्त कृष्ण हूंकार से विह्वल पुलकावलि युक्त शुभप्रस्थ है ।१७६।

कृष्ण प्रेममदोन्मादः प्रेमवारि समन्वितः
वैवर्ण्य वलिताकारो विनोदी स प्रकीर्त्तितः १७७
गोविन्द दर्शनामोद-मद मुद्रित लोचनः
पुलकाकीर्ण-गौराङ्गो वरूथपः प्रकीर्त्तितः ।१७८।
रसिकश्च मदान्धश्च प्रेमरङ्गादयस्तथा ।
अगम्य महिमानस्त सर्वे कृष्ण समोपमाः ।१७९।
गोप्यश्च बहवः सन्ति वृन्दावन विहारिणः ।
कृष्णस्य रमणीनाञ्च नामानुकीर्त्तनं शृणु: ।१८०
राधा तिलोत्तमा पुष्पा शशिरेखा प्रियम्बदा ।
मानसा माधवीश्यामा चन्द्ररेखा च शारदा ।१८१
चित्ररेखा मधुमती चन्द्रा मदनसुन्दरी ।
विशाखा च प्रिया चन्द्रा चातिचन्द्रा सुनागरी ॥१८२
सुन्दरी प्रेमदा माया कामिनी चन्द्रसुन्दरी ।
भवानी भाविनी देवी चन्द्र कान्तिश्च नागरी ॥१८३॥

कृष्ण प्रेममदोन्माद प्रेमवारि समन्वित वैवर्ण्यवलित आकर विनोदी है ।१७७। गोविन्द दर्शनामोद मदमुद्रित लोचन पुलकों से शोभित गौराङ्ग वरूथप है ॥१७८॥ रसिक, मदान्ध, प्रेम रङ्ग प्रभृति का महिमा अगम्य है और सब कृष्ण के ही समान है ।१७९।

सम्प्रति वृन्दावन विहारी कृष्ण की रमणीयों के नाम सुनो, वे सब सख्या में अनेक हैं ।१८००।

राधा, तिलोत्तमा पुष्पा शशिरेखा, प्रियम्वदा, मानसा माधवी श्यामा,चन्द्ररेखा शारदा ।१८१। चित्ररेखा मधुमती,चन्द्रा मदन सुन्दरी, विशाखा प्रियचन्द्रा अति चन्द्रा सुनागरी ।१८२। सुन्दरीप्रेमदा माया, कामिनी चन्द्रसुन्दरी भवानी भागिनी देवी चन्द्रकान्ति नागरी ।१८३।

रसदा जयदा प्रेमा विजया च मनोहरा ।
वल्लभा वैष्णवी कृष्णा चपला चन्द्रचञ्चला ॥१८४॥
गौराङ्गी रङ्गिणी गौरी रसाङ्गी केलिचञ्चला ।
रसचन्द्रा केलिचन्द्रा कामचन्द्रमहावला ॥१८५॥
रसान्धा च मदान्धा च प्रेमान्धा चन्द्रकामिनी ।
विसदर्पा रासदर्पा प्रेमदर्पा विभाविनी ॥१८६॥
लासदर्पा वेशदर्पा लासदर्पा बिलासिनी ।
केलिकण्ठा चारुकण्ठामृतकण्ठा रसायनी ॥१८७॥
कमला चञ्चला लीला केलिलीला कलावती ।
रस लीला रास लीला प्रेमलीला सरस्वती ॥१८८॥
नृत्यभद्रा नृत्यचन्द्रा नृत्यकी नृत्यसेवकी ।
चन्द्राकला चन्द्रलीला चन्द्रावती सुरेश्वरी ॥१८९॥
इन्दुवती कलाकान्तिर्भारती कृष्णवल्लभा ।
नृत्यकला नृत्यलीला जयलीला सुदुर्ल्लभा ॥१९०॥

रसदा जयदा, प्रेमा विजया मनोहरा, वल्लभा, वैष्णवी कृष्णा चपलाचन्द्र चञ्चला ।१८४। गौराङ्गी रङ्गिणी गौरी रसाङ्गी केलि चञ्चला रस चन्द्रा केलि चन्द्रा काम चन्द्रामहावला ।१८५। रसान्धा मदान्धा प्रेमान्धा चन्द्र कामिनी विसदर्पा रासदर्पा प्रेमदर्पा विभाविनं ।१८६। लासदर्पा वेशदर्पा लासदर्पा विलासिनी, केलि कण्ठा चारुकण्ठा अमृतकण्ठा रसायनी ।१८७। कमलाचञ्चलालीला केलिलीला कलावती रसलीला रासलीला प्रेमलीला सरस्वती ॥१८८। नृत्यभद्रा नृत्यचन्द्रा नृत्यकी नृत्यसेवकी चन्द्रकला चन्द्रलीला चन्द्रावती सुरेश्वरी ।१८९। इन्दुवती कला कान्ति भारती कृष्ण वल्लभा नृत्यकला नृत्यलीला जयलीला सुदुर्ल्लभा ।१९०। रूपचन्द्रा विदम्भा केलिदण्डा मधुव्रता,

रूपचन्द्रा विदम्भा च केलिदण्डा मधुव्रता ।
मधुकण्ठा सुकण्ठा च प्रेमकण्ठा प्रियव्रता ॥१६१
लोककण्ठा च विकुण्ठा रस कण्ठा जयव्रता ।
अखिला सुखदा वृन्दा कालिन्दी केलिलालिता ।१६२।
सुकेलि चञ्चलानन्तापावनी सर्वमङ्गला ।
शान्ता सुकान्ता कान्ताच प्रेमदा श्यामसुन्दरी ॥१६३
पद्मिनी मालिनी वाणी सर्वेशा शक्तिरुत्तमा ।
रसाला सुमुखी चैव सानन्दानन्ददायिनी ॥१६४॥
रसवृन्दा केलिवृन्दा प्रेमवृन्दा सुरञ्जनी ।
प्रेमवृन्दा मुकुन्दा च रसवृन्दा रसोत्तमा ॥१६५॥
केलिभद्रा कलाभद्रा रासभद्रा मनोरमा ।
लासभद्रा वेशभद्रा प्रेमभद्रा रसाञ्चला ॥१६६॥
रूपकला रूपमाला चन्द्रमाला रसावली ।
कुमारी मालती भक्तिः सानन्दानन्दमञ्जरी ॥१६७

मधुकण्ठा सुकण्ठा प्रेमकण्ठा प्रियव्रता ॥ १६१ ॥ लोककण्ठा विकुण्ठा रसकण्ठा जयव्रता अखिला सुखदा वृन्दा कालिन्दी केलि लालिता ॥१६२॥ सुकेलि चञ्चला अनन्ता पावनी सर्वमङ्गला शान्ता सुकान्ता कान्ता प्रेमदा श्याम सुन्दरी ॥१६३॥

पद्मिनी मालिनी वाणी सर्वेशा शक्तिरुत्तमा । रसाला सुमुखी सानन्दानन्द दायिनी ।१६४। रस वृन्दा केलिवृन्दा प्रेमवृन्दा सुरञ्जनी प्रेमवृन्दा मुकुन्दा-रसवृन्दा रसोत्तमा ।१६५। केलिभद्रा कलाभद्रा रास भद्रा मनोरमा, लासभद्रावेशभद्रा प्रेमभद्रा रसाञ्चला ।१६६।

रूपकला रूपमाला चन्द्रमाला रसावती कुमारी मालतीभक्ति सानन्दानन्द मञ्जरी ।१६७॥ कृष्ण-प्रेममदा, भङ्गी त्रिभङ्गी रस

कृष्ण प्रेममदा भङ्गी त्रिभङ्गी रसमञ्जरी ।
प्रेमकला कामकला केशवा रासवल्लभा ॥१९८॥
चन्द्रमुखी महागौरी सुमुखी कृष्णमङ्गला
गन्धर्वा केलिगन्धर्वा सुदर्पादर्पहारिणी ॥
तुलसी मथुरा काशी प्रेयसी प्रेमकामिनी ॥१९९॥

श्रीभगवानुवाच —

प्रेममङ्गीति भगवान् महाविष्णुः सनातनः ।
नाशक्नोत् कीर्त्तितुं ब्रह्मन् पपात धरणीतले ॥२००॥
प्रेमाश्रुलोचनो भूत्वा आसीद्युग सहस्रशः ।
महानन्दरसायुक्तः पुलकावलि विग्रहः ॥२०१॥
इति सर्वं समालोक्य ईश्वरस्य विचेष्टितम् ।
अन्योन्यमुखमालोक्य सङ्गीतं कृष्णमङ्गलम् ॥२०२॥
ततो मम प्रबोधार्थं भगवानादिपूरुषः ।
रत्नपर्य्यङ्कमारुह्य रहस्यं कथयतेरहः ॥२०३॥

मञ्जरी प्रेमकला कामकला केशवा रास वल्लभा १९८

चन्द्रमुखी महागौरी सुमुखी कृष्णमङ्गला गन्धर्वा केलिगन्धर्वा सुदर्पा दर्पहारिणी, तुलसी मथुरा काशी प्रेयसी प्रेमकामिनी ।१९९।

श्रीभगवान् बोले —

हे ब्रह्मन् ! भगवान् सनातन महाविष्णु प्रेम परिपाटि का वर्णन करनेमें असमर्थ रहे और धरणीपर गिरपड़े ।२००।

सहस्र युग पर्यन्त महानन्दरसयुक्त, पुलकावलि विग्रह, प्रेमाश्रु लोचन होकर रहे ।२०१।

इस प्रकार ईश्वर की समस्त लीलाओं को देखकर अन्योन्य के मुख को देख कर कृष्णमङ्गल का गान किये ॥२०२॥

अनन्तर भगवान् आदिपुरुष मुझे जगानेके लिए रत्न पर्य्यङ्क

ध्याने रन्तर्गतं ज्योति ज्योतिरन्तर्गतंमनः ।
तन्मनो विलयं याति तद्विष्णोः परमं पदम् ॥२०४॥
तस्मात् कोटिगुणं रम्यं वृन्दावनसुखं विदुः ।
तस्मात् कोटिगुणं प्रोक्तं ममेदमिदं शाश्वतम् ॥२०५॥
तस्मात् कोटि गुणं रम्यं तस्या विलासिनाम् ।
तस्मात् कोटिगुण गोपी-गोपालानां सुखं विदुः ॥२०६॥
तस्मात् किं कथयिष्यामि कृष्णस्य सुखमीदृशम् ।
यस्यैकसुखलेशेन पूर्णो गोलोकमण्डलः ।२०७।
यत् सुखात् परमानन्द महावैकुण्ठ कोटिशः ।
यत् सुखात् सच्चिदानन्द श्वेतद्वीप निवासिनः ॥२०८॥
यत् सुखाद्वै चिदानन्दानन्तवैकुण्ठ–वासिनः ।

मैं आगे तुम्हें एकान्त में गोपनीय तथ्य कहे थे ।२०३।

ध्यान के अन्तर्गत ज्योति है, और ज्योति के अन्तर्गत मन है, यह मन भी जहाँ पर विलय को प्राप्त होता है, वह ही श्रीविष्णु का परम पद है ।२०४।

उस से कोटिगुण रम्य वृन्दावन सुख है, विद्वान गण इसे जानते है, उस से भी कोटि गुण कहा गया है, शाश्वत मेरा धाम ।२०५।

उस से भी कोटि गुण अधिक है, उनकी विलासिनीयों का रम्य सुख,, उस से भी गोपी गोपालोंके सुख अधिक है ।२०६।

इसलिए श्रीकृष्ण के ऐसे सुख को मैं कैसे कहूँ,, जिस के एक सुखलेश के द्वारा गोलोक मण्डल पूर्ण है ।२०७।

जिनके सुख से ही कोटि कोटि महा वैकुण्ठ परमानन्दित होते है, जिनके सुख से सच्चिदानन्द श्वेतद्वीप निवासियों को भी आनन्द है॥

जिनके सुख से ही चिदानन्द अनन्त वैकुण्ठ वासियों को भी

यस्य पाद नख ज्योत्स्ना परंब्रह्मेति शब्दितम् ॥

तस्मात् किं कथयिष्यामि कृष्णस्य सुखमीदृशम् ॥२०६

श्रीभगवानुवाच—

कदा पश्यामि हा नाथ श्रीकृष्णं नयनोत्सवम् ।

कदा पश्यामि हा नाथ तस्य धाम मनोहरम् ॥२१०॥

श्रीमहाविष्णु रुवाच—

एकदा द्वापरस्यान्ते कृष्णः सर्वेश्वरेश्वरः ।

श्रुतीनां वरदानार्थमाविर्भावो भविष्यति ॥२११॥

ब्रह्मोवाच—

एतत्ते कथितं देव भगवान् हरिरीश्वरः ।

अमुष्य द्वापरस्यान्ते कृष्णस्तुगोचरोभवेत् ॥२१२॥

परमुपनिषदर्थं गोप्यमात्यन्तिकं ते

आनन्द है, जिनकी पादनख ज्योत्स्ना को ही पर ब्रह्म कहा जाता है। अतएव श्रीकृष्ण के सुख का प्रकार मैं कैसे कहूँ ।२०६॥

श्रीभगवान बोले—

हा नाथ ! कब मैं नयनोत्सव श्रीकृष्ण को दर्शन करूँगा हा नाथ ! कब मैं उनका मनोहर धाम का दर्शन करूँगा ।२१०।

श्रीमहाविष्णु ने कहा—

एक समय द्वापर के अन्तभागमें सर्वेश्वरेश्वर श्रीकृष्ण श्रुतियों को वरदानार्थ आविर्भूत होंगे ।२११।

ब्रह्मा जी ने कहा—

हे देव ! भगवान् ईश्वर हरि का विवरण मैंने कहा। समीप वर्त्ती द्वापर के अन्त में कृष्ण लोक नयन गोचरी भूत होंगे ।२१२॥

एकान्त रूप से मननात्मक उपासना के लिए आत्यन्तिक एक

निगदित मिदमेकं प्राणनाथात्मनोऽपि
न खलु न खलु तस्मै भक्तिहीनाय वाच्यं ।
व्रजपुरवनितानां वल्लभः कृष्णचन्द्रः ॥२१३॥
इति श्रीगोविन्द वृन्दावने ब्रह्मशिव संवादे प्रथमपटलः ॥

॥ श्रीश्रीराधाकृष्णाभ्यां नमः ॥

श्रीबलरामउवाच—

ततः किमभवत् पश्चात्त्रिभङ्गत्वं गतेत्वयि ।
तन्मे कथय गोविन्द ! यदितेऽस्ति दयामयि ॥१॥

श्रीकृष्ण उवाच—

तत् प्रेमारक्तचित्तस्था स्पृहा तस्यांममाभवत् ।
तच्चित्ताकर्षणार्थञ्च चिन्तयित्वा पुनः पुनः ॥२॥
मन्त्ररूपः स्वयमहमभवं मोहनाकृतिः ।

माय गोपनीय प्राणनाथ का विवरण तुम्हें कहा । भक्ति हीन किसी भी व्यक्ति को इस विषय को न कहना न कहना । श्रीकृष्ण चन्द्र व्रज पुर वनिताओं का वल्लभ है । २१३।

इति श्रीश्रीगोविन्द वृन्दावने ब्रह्म शिव संवादे प्रथमपटलः ॥

॥ श्रीश्रीराधा कृष्णाभ्यां नमः ॥

श्रीबलरामने कहा—

जब तुम त्रिभङ्ग रूप होगये तब क्या हुआ, हे गोविन्द ! मेरे प्रति यदि दया हो तो, वे सब विवरण कहो ।१।

श्रीकृष्णने कहा—

उस के प्रेम से आसक्त चित्त होकर उस के प्रति मेरी स्पृहा हुई । उस को आकर्षण करने के लिए पुनः पुनः चिन्ता की ।२।

निजांशे प्रकृतिर्वंशी ह्यंशे वृन्दावनक्षितिः ।।३।।
ब्रह्मांशमेकतानीतमेकं ब्रह्माक्षरं परम् ।
तदेव हि तत् प्रकृतिः प्रकृतिस्तत् परं पदम् ।।४।।
ध्यात्वा तस्य परंरूपं जजाप मनुमुत्तमम् ।
मनुना तेन जप्तेन कामः समभवत्ततः ।।५।।
तेनैव मोहिता देवीमम वश्याभवत्तदा ।
सर्वो मे मोहनो मन्त्रः साक्षात् कामकलात्मकः ।।६।।
एषवै प्रकृतिः साक्षादेष वै पुरुषः परः ।
तस्मात् प्रकृतयः सर्वा भवन्ति हि न चापरात् ।।७।।
अस्मात् पुरुषाः सर्वे त्रैलोक्यं सचराचरम् ।
ब्रह्माण्ड कोटि–कोट्यश्च सत्यं सत्यं वदाम्यहम् ।।८।।

उस के बाद मोहनाकृति मन्त्ररूप में स्वयं ही होगया, निज, अंश से प्रकृति वंशीरूप धारण किया, और अंश से वृन्दावन भूमि भी बनगया ।३।

ब्रह्मांश के साथ एकतापन्न होकर ही परम ब्रह्माक्षर स्वरूप आविर्भूत हुआ, उसकी प्रकृति ही श्रीकृष्ण है, और वह प्रकृति ही परम पद है ।४।

उसके ब्रह्मात्मक का परम् रूप को ध्यानकर उत्तममन्त्र का मन जप किया, इस प्रकार मन्त्र जप के कारण काम का आविर्भाव हुआ, और उस से उसी समय देवी मेरी वश्याहो गयी, यह मेरा मन्त्र साक्षात् काम कलात्मक है, और सब का मोहन स्वरूप है ।५।६।

यह ही साक्षात् प्रकृति है, और साक्षात् पर पुरुष भी है । इस से ही समस्त होती है, अपर कोई मूल कारण नहीं है ।७।

त्रिलोक में इस मन्त्र से ही समस्त पुरुषों का आविर्भाव होता

मोहनस्तम्भनाकारो मारणोच्चाटने तथा।
भवत्यत्र न सन्देह स्वयमेवैष मोहनः ॥९॥

श्रीशिव उवाच—

ततस्तां सरसां मत्वा संप्रहृष्ट तनूरुहः।
तां राधां स्तोतु मारब्धः सर्ववागीश्वरेश्वरः ॥१०॥
शब्द ब्रह्ममयी वंशीं मूर्च्छयन् स्वरसम्पदा।
स्वराः सप्तविधा जाताः षड् जाद्यास्तु ततः क्रमात् ।११
ततो रागाः समभवन् रागिण्यश्च पृथग्विधाः।
तथा तालगणाश्चैव सप्तग्रामास्तथैव च ॥१२॥
ततो वाद्यास्त्रयश्चैव मूर्च्छनाद्यास्तथैव च।
ततो भगवती देवी गायत्रीति पदाभवत् ॥१३॥
ततो वेदाश्च चत्वारः श्रुतयश्च ततः पराः

है। कोटि कोटि ब्रह्माण्डभी इसीमें होते हैं, मैं सत्य करके कहता हूँ।८

यह मन्त्र मोहन और स्तम्भन स्वरूप है, मारण एवं उच्चाटन स्वरूप भी है, इस में कोई सन्देह नहीं है, यह मोहन भी है।९॥

श्रीशिवने कहा——

तत् पश्चात् आनन्दोत्फुल्लतनु होकर सर्व वागीश्वरेश्वर श्री कृष्ण श्रीराधा को एकमात्र रस स्वरूप जान कर स्तुति करने लगे।१०

स्वर सम्पद के द्वारा शब्द ब्रह्म मयी वंशी को भरकार बजाने लगे, उस से षड् जादि सप्तविध स्वर का क्रमसे आविर्भाव हुआ।११।

उस से पृथक् पृथक् प्रकार के राग रागिणी का आविर्भाव हुआ। तालगण एव सप्त ग्राम भी इसी से हुए हैं।१२।

तत् पश्चात् तिन प्रकार वाद्य मूर्च्छना का भी प्राकट्य हुआ। अनन्तर पद से भगवती देवी गायत्री का आविर्भाव हुआ।१३।

रागैश्च रागिणीभिश्च तालै ग्रामैश्च सप्तभिः ॥१४॥
तथा वाद्यै स्त्रिभि र्नादं मूर्च्छनाभिः समन्ततः ।
गायत्र्याच्च महादेव्या वेदैश्च श्रुतिभिः सह ॥१५॥
तुष्टाव भगवान् कृष्णः सर्वदेवेश्वरेश्वरः ।
ॐ अनादि रूप चिच्छक्ति परमानन्द रूपिणि ॥
आदि देवार्चिते नित्ये राधिके तं भजस्वमाम् ॥१६॥
इन्दुकोटि समानास्ये इन्दीवर दलेक्षणे ।
ईश्वरीशान-जननि राधिके त्वं भजस्वमाम् ॥१७॥
उत्तमे उज्ज्वलरस प्रिये सोत्कर्षरूपिणि ।
उद्ध्वाधो मोहिततनु श्रीविनिर्ज्जित मन्मथे ॥१८॥
ऋतुषट्क सुखामोद युक्ताङ्गे ऽनङ्गवर्द्धिनि ।
अक्षमालाधरे धीरे राधिके त्वं भजस्व माम् ॥१९॥

अनन्तर चार वेद और श्रुतिगण का भी प्राकट्य हुआ, राग रागिणी ताल गामाम, तिन प्रकार वाद्यनाद एवं सर्व प्रकार मूर्च्छना चारों वेद, श्रुति महादेवी गायत्री के साथ सर्व देवेश्वरेश्वर भगवान् कृष्ण श्रीराधिका की स्तुति करने लगे। ॐ अनादि रूप चिच्छक्ति, परमानन्द रूपिणि, आदि देवार्चिते नित्ये हे राधिके! मेरा भजन करो ।१४ १५ १६।

इन्दु कोटि समानास्ये इन्दीवरदलेक्षणे ईश्वरी ईशान जननि! हे राधिके तुम मुझ का भजन करो ।१७।

उत्तमे! उज्ज्वल रस प्रिये! सोत्कर्षरूपिणि! उद्ध्वाधो मोहित तनु श्रीविनिर्ज्जितमन्मथे ।१८। ऋतुषट्क-सुखामोद--युक्ताङ्गे अनङ्गवर्द्धिनि! अक्षमालाधरे! धीरे! हे राधिके! तुम मेरा भजन करो ॥१९॥

एकानेक स्वरूपासि नित्यानन्द स्वरूपिणि ।
ऐं कारानन्द हृदये राधेकिं मामुपेक्षसे ॥२०॥
ॐमित्येकाक्षरागम्येऽक्षराक्षर परावरे ।
ॐकार-ध्वनि संभूतानन्दरूपे–निरामये ॥२१॥
इन्दुरूपे निरालम्बे परब्रह्म स्वरूपिणि ।
विसर्गरूपेप्रकृतयोनिरूपे भजस्वमाम् ॥२२॥
कमले कामिनी–कान्ते काले कुटिल–कुन्तले ।
कामिनी कामदे वै राधेकिंमामुपेक्षसे ॥२३॥
सुधांशु कोटि संकाशे सुखदुःखविवर्ज्जिते ।
गगनाम्भोजमध्यस्थे त्राहि मां शरणागतम् ॥२४॥
धर्मविन्दुशोभनास्ये चारुघूर्णित लोचने ।
चन्दनागुरुकर्पूरचर्च्चिताङ्गि नमोऽस्तु ते ॥२५॥
छन्दांसि वेदाः श्रुतयो न जानन्ति परं पदम् ।

एक अनेक स्वरूपके हो ! नित्यानन्द स्वरूपिणि ! ऐंकारानन्द हृदये ! हे राधे ! मुझको क्या तुम उपेक्षा करोगी ? ।२०॥

ॐ मित्येकाक्षरागम्ये ! अक्षराक्षर परावरे ! ॐ कार ध्वनि संभूतानन्द रूपे ! निरामये ।२१। इन्दु रूपे ! निरालम्बे ! परब्रह्म स्वरूपिणि ! विसर्गरूपे ! प्रकृति योनि रूपे ! मुझ का भजन करो ॥२२

कमले कामिनी कान्ते ! काले ! कुटिल कुन्तले ! कामिनी कामदे ! राधे ! तुम क्या मुझे उपेक्षा करोगी ।२३॥

सुधांशु कोटि संकाशे ! सुख दुःख विवर्जिते ! गगनाम्भोज मध्यस्थे ! शरणागत हूँ मेरी रक्षा करो ॥२४॥

धर्म विन्दु शोभनास्ये ! चारु घूर्णित लोचने ! चन्दन-अगुरु चर्च्चिताङ्गि ! तुमको मेरा प्रणाम ।२५॥

यस्यास्तस्यै महादेव्यै राधिकायै नमोनमः ॥२६॥
जगद्योनि-स्वरूपासि जगतां जीवनौषधिः ।
दृष्टिं झटिति मे देहि राधिके त्वां नमाम्यहम् ॥२७॥
अट्टाट्टहास संघट्ट-नादोल्लासित मानसे ।
रसात्कृतिचमत्कारश्रृङ्खलारतिविक्रमे ॥२८॥
डिण्डिमानक षड्यन्त्र वेणुवाद्यप्रियप्रिये ।
ढक्कावाद्यानन्दयुक्ते शक्तिकैवल्यदायिनि ॥२९॥
तरुणीतरुणानन्दविग्रहे परमेश्वरि ।
स्थिरानन्दे स्थिरप्रज्ञे स्थिरप्रेमरसप्रदे ॥३०॥
देवादिदेवताराध्यचरणे शरणप्रदे ।
धर्माधर्मप्रदे राधे धर्माधर्मविवर्जिते ॥३१॥

छन्दसमूह वेदगण, श्रुतिगण जिनके चरण को नहीं जानते हैं, उन महादेवी राधिका को बारम्बार मेरा प्रणाम ।२६।

तुम जगत् की उत्पत्ति स्वरूप हो, जगत की जीवनौषधि भी हो ! जल्दी से जल्दी मेरे प्रति दृष्टि दो, मैं तुम को प्रणाम करता हूँ ।२७

अट्ट-अट्ट-हास संघट्ट-नादके द्वारा उल्लसित मानस के हो रति विक्रम की शृङ्खला में सराबोर हो ॥२८॥

डिण्डिम आनक वेणु आदि वाद्यों में प्रीति करने वाली तुमही हे प्रिये ! तुम ढक्का वाद्य से भी आनन्दित होती हो तुम शक्ति कैवल्य दायिनी हे ॥२९॥

तरुणी तरुण की आनन्द विग्रह रूप हो हे परमेश्वरि ! हे स्थिरानन्द ! स्थिरप्रज्ञ ! स्थिरप्रेमरसप्रदे ॥३०॥

देवादि देवताराध्य चरणे ! शरणप्रदे ! धर्माधर्मप्रदे ! धर्माधर्म विवर्जित ! राधे ! ।३१।

नित्ये नित्यविमानस्थे नित्यानन्दस्वरूपिणि ।
परं ब्रह्मस्वरूपासि परमानन्दवन्दिते ॥३२॥
स्फुरत् कान्तिकान्तदेहे स्फुरन्मकर कुण्डले ।
ब्रह्मज्योतिर्म्मये देवि राधिकेत्वां नमाम्यहम् ॥३३॥
भवानन्देऽभवानन्दे भावाभाव विवर्जिते ।
मन्दमन्दस्मिते मुग्धे राधिके रक्ष मां सदा ॥३४॥
यज्ज्ञानं ज्ञाननिष्ठानां ध्यानं ध्यानवतामपि ।
योगिनाञ्च यत्प्राप्यं तस्यै तुभ्यं नमोनमः ॥३५॥
रक्ते रक्तेक्षणे राधे राधिके रमणे रमे ।
रामे मनोरमे रत्नमाले मां रक्ष सर्वदा ॥३६॥
रकारः सर्वमन्त्राणामाधारः परिकीर्त्तितः ।
तदाधारस्वरूपा त्वं तेन राधेति कथ्यते ॥३७॥

नित्ये ! नित्य विमानस्थे ! नित्यानन्द स्वरूपिणि ! तुमपरब्रह्म स्वरूप हो । हे परमानन्दवन्दिते । ३२॥ स्फुरत् कान्ति कान्तदेहे स्फुरन्मकर कुण्डले ! ब्रह्म ज्योतिर्म्मये ! हे देवि ! हे राधिके तुम को मैं प्रणाम करता हूँ ।३३।

भवानन्दे ! अभवानन्दे ! भावाभाव विवर्जिते ! मन्द मन्दस्मिते मुग्धे ! हे राधिके ! मुझे सदा रक्षा करो ॥३४॥

ज्ञान निष्ठों का जो ज्ञानहै, वह तुमही हो, ध्यान कारियों का ध्यान स्वरूप हो योगियों के जो प्राप्य वह भी तुम ही हो, तुम्ह बार बार प्रणाम ।३५।

हे रक्ते ! रक्तेक्षणे ! राधे ! राधिके ! रमणे ! रमे ! रामे ! मनोरमे ! रत्नमाले ! मुझे सर्वदा रक्षा करो ।३६।

समस्त मन्त्र का आधार रकार है। तुम उस का भी आधार हो, इसलिए तुम्हें राधा कहते हैं ।३७।

रकारो वह्निराख्यातो यथा बह्निः प्रतिष्ठितः ।
देवाः प्रतिष्ठिता यज्ञे ततो वृष्टि स्ततोऽदनम् ॥३८॥
ततस्तु सर्वं भूतानि नानावर्णा कृतीनि च ।
तत् सम्यग्धार्य्यते यस्मात्तेन राधेति कथ्यते ॥३९॥
ममहृदिस्थितैः सर्वदेवै ब्रह्मपुरोगमैः ।
आराधिता यत स्तस्माद्राधिकेति निगद्यते ॥४०॥
लक्ष्मी सहस्रसंसेव्ये लक्षिते लक्षणान्विते ।
वासुदेवार्च्चिते नित्ये विद्ये त्वां प्रणमाम्यहम् ॥४१॥
शब्दातीते शक्ति करे शान्ते सर्वाधिवन्दिते ।
समस्त भुवनानन्दे सर्वेश्वरि नमोऽस्तुते ॥४२॥
षट् पदापूर्णित श्रीमद् वनमाला विभूषिते ।
षड़ाधारेक वसति-षट्शास्त्र ज्ञान दुर्गमे ॥४३॥

रकार वह्नि का वाचक है, वह्नि के द्वारा ही देवगण प्रतिष्ठित होते हैं। यज्ञ होने के कारण वृष्टि होती है, उससे अन्न होता है। अन्न से समस्त भूत नानाआकृति वर्ण भी होते हैं, ये सब के परम आधार होने के कारण ही राधा कही जाती है। ३८-३९।

मेरे हृदय स्थित ब्रह्मादि से लेकर समस्त देवताओंने जिनकी आराधना की है इस लिए राधा कही गई है।४०। सहस्र लक्ष्मीयों के संसेव्य लक्षणान्विते ! एवं वासुदेवके द्वारा नित्य अर्च्चिते ! हे विद्ये तुमको मैं प्रणाम करता हूँ।४१।

हे शब्दातीते ! शक्तिकरे ! शान्ते ! सर्वाधिवन्दिते ! समस्त भुवनानन्दे ! सर्वेश्वरि ! तुम्हारे प्रति मेरा नमस्कार ॥४२।

षट् पद विलसित श्रीमद् वनमाला विभुपिते। षड़ाधारके एक मात्र आश्रय- षट् शास्त्र ज्ञान दुर्गमे !।४३।

हंस रूपे हेमगर्भे हंसगामिनि हारिणि ।
हूं हूंकार प्रिये नित्ये राधिके त्वां नमाम्यहम् ॥४४॥
क्षमाशीले क्षमारूपे क्षीणमध्ये क्षमान्विते ।
अक्षमालाधरे देवि सिद्धे विद्ये नमोऽस्तुते ॥४५॥
एवं स्तुता तदा देवी कृष्णेन परमात्मना ।
राधा निरीक्ष्य सप्रेमं वशे कर्तुं जगद्गुरुम् ॥४६॥
आश्वास्य मनसा कृष्णं वह्नया भीतमुद्रया ।
वामेन पाणिपद्मेन पद्म युक्तेनशोभिना ॥४७॥
दातुकामा वरं प्रेम्णा किञ्चिन्नोवाच लज्जया ।
एतस्मिन्नेव काले तु तस्या देहात् समुद्गता ॥४८॥
पाशाङ्कुशधरा नित्या वराभय करा परा ।
रक्तवर्णाविशालाक्षी रक्ताम्बराधरावरा ॥४९॥

हंस रूपे ! हेमगर्भे ! हंस गामिनि ! हारिणि ! हूँ हूँकार प्रिये नित्ये ! हे राधिके तुमको मैं नमस्कार करता हूँ ।४४।

क्षमाशीले ! क्षमारूपे ! क्षीणमध्ये ! क्षमान्विते ! अक्ष माला धरे ! हे देवि ! सिद्धे ! विद्ये ! तुम्हारे प्रति मेरा नमस्कार ।४५।

परमात्मा कृष्णने देवी को इस प्रकार से जब स्तव किया, तो राधाने जगद् गुरुको प्रेम पूर्वक वशीभूत करने के लिए शोचा ।४६।

मनसे ही कृष्णको आश्वास प्रदान किया,और स्वाभाविक संकुचित भावसे वाम पाणि पद्म से मनोहर कमल को पकड कर कृष्णको वर प्रदान के लिए इच्छुक होकर भी लज्जासे कुछ भी नहीं कही । इसी समयउनके देह से वक्ष्यमाण स्वरूप आविर्भूत हुआ ।४७-४८।

पाशाङ्कुश धरा, नित्य, वराभयकरा, परा, रक्त वर्णा, विशालाक्षी, रक्ताम्बरधरा, वरा । रक्त आभरण व मालयों से

रक्ताभरण मालाढ्या समुत्तुङ्ग कुचद्वया ।
रत्न नूपुर युक्ताभ्यां पद्भ्यां संस्पृश्य वेदिकाम् ॥५०॥
नानारत्नमयीं देवी ज्वलत् पावकसन्निभाम् ।
जपन्ती मोहनं मन्त्रं हूंकारं सर्व मोहनम् ॥५१॥
अङ्कुशेन मनस्तस्य कृष्णस्याकृष्य यन्ततः ।
बबन्ध प्रेमपाशेन हसन्ती वामपाणिना ॥५२॥
मा भयं कुरु देवेश प्राप्स्यसि मां वराङ्गनाम् ।
वन्दितां सकलै देवै सर्वशक्तिशिखामणिम् ॥५३॥
वरं दास्यामि ते कृष्ण प्रसन्न वदनोभव ।
प्रकृतिस्त्वं पुमानेव त्वमहं त्वमियं विभो ॥५४॥
आत्मारामोऽसि भगवन् विमोहश्च कथंत्वयि ।
अहमस्यामहादेव्या द्वितीया मूर्त्तिरुत्तमा ॥५५॥
त्वत् सकाशमिहायाता वरदानार्थमुद्यता ।

शोभित, समुत्तुङ्ग कुचद्वया, रत्न नूपुर शोभित चरणों से नाना रत्न मयी अनल के समान कान्ति युक्त प्रकाश शील, सर्वमोहन हूंकार मन्त्र जप से पूत वेदिका का स्पर्श करके ।५०।५१।

यत्न पूर्वक हंसकर अङ्कुशके द्वारा कृष्णके मनको आकर्षण कर बायें हाथ से हंस हंस कर कृष्णको प्रेम पाशसे बांधलिया ।५२।

और कहा, हे देवेश ! डरो मत, सर्व शक्ति शिरोमणि सकल देव वन्दित मुझ वराङ्गनाको तुम प्राप्त करोगे ।५३॥

हे कृष्ण ! हे विभो ! प्रसन्न वदन हो जाओ, मैं तुम्हें वर दूंगी । प्रकृति और पुरुष, तुम और मैं तुम और ये ।५४।

हे भगवन् ! तुम आत्माराम हो, तुम्हें कैसे विमोह आया है । मैं उन महादेवी की उत्तमा द्वितीयामूर्त्ति हूँ ॥५५।

किमिच्छसि जगत् स्वामिन् तुभ्यं दास्यामि तद्वद ।५६।

श्रीकृष्ण उवाच—

प्रसन्ना यदि मे देवि ! वरमेकं प्रयच्छ मे ।
इयं भवतु मे वश्या गौराङ्गी विश्वमोहिनी ॥५७॥
तव प्रसादाद् यद्येषा मम वश्या भवेत्ततः
ममैव पूजिता त्वां वै भविता भुवनेश्वरी ॥५८॥

श्रीदेव्युवाच—

कृष्ण ! कृष्ण ! महायोगिन् प्रधान पुरुषेश्वरः ।
भविता तव वश्येयं राधा त्रैलोक्य सुन्दरी ॥५९॥
यदात्वया वर्ण्यमाना त्वत् कृता स्तुति रुत्तमा ।
तदेवेयं महादेवी स्वयं राधा वशङ्गता ॥६०॥
संनिरीक्ष्याभवद्रूपं त्रैलोक्यातिशयं शुभम् ।

वरदानार्थ तुम्हारे समीप मैं आई हूँ, हे जगत् स्वामिन् ! तुम क्या चाहते हो कहो, मैं प्रदान करूँगी ।५६।

श्रीकृष्ण बोले

हे देवि ! यदि मुझ पर प्रसन्न हुई हो, तो, एकही वर मुझे दो ये विश्व मोहिनी गौराङ्गी मेरे वशमें होजाय, तुम्हारे प्रसाद से यदि ये मेरी अधीन हो जाती है, ।५७। तो तुम मुझसे पूजिता होकर भुवनेश्वरी हो जाओगी ॥५८।

श्रीदेवी बोली—

हे कृष्ण ! हे कृष्ण ! हे महायोगिन् ! प्रधान पुरुषेश्वर हो । यह त्रैलोक्य सुन्दरी राधा तुम्हारी होगी ।५९।

जब तुमने राधाकी उत्तमा स्तुति की तब ही महादेवी राधा स्वयं वशीभूता होगयी है ।६०॥

श्रुत्वा च वंशीनिनदं कास्त्र्यङ्ग स्यान्न मोहिता ।६१।

सदाशिव उवाच

य एवं पठति स्तोत्रं राधामोहन–मोहनम् ।
तस्य तुष्टा महादेवी प्रदास्यति मनोगतम् ॥६२॥
परं तस्य जगत् सर्वं वशे तिष्ठति नित्यशः ।
तस्य दर्शन मात्रेण वादिनो निष्प्रभा गताः ॥६३॥
ध्यात्वा देवीं जगद्योनिमादिभूतां सनातनीम् ।
राधां त्रैलोक्य विजयां तथा सर्वाघनाशिनीम् ॥६४॥
जपेदष्टाक्षरं मन्त्रं पठेत् स्तोत्रं समाहितः ।
प्रणमेत् परया भक्त्या करस्थाः सर्वसिद्धयः ॥६५॥
कृष्ण प्रोक्तमिदं स्तोत्रं यः पठेद् यतिसाधकः ।
धर्मार्थ काम मोक्षा वै वशे तिष्ठन्ति सर्वदा ॥६६॥

त्रैलोक्यमोहिनि कृष्ण आपका रूप को दर्शन कर तथा वंशी निनाद को सुनकर हे देवी ! कौन सी ऐसी स्त्री है, जो मोहित नहीं होगी ॥६१॥

श्रीसदाशिव ने कहा।

जो जन राधामोहन–मोहन यह स्तोत्र का पाठ करेगा, उसके प्रति सन्तुष्ट होकर महादेवी मनोरथ को पूर्ण कर देगी ॥६२।

दूसरी बात भी यह है कि उसके वश में नित्य ही जन मानस वशीभूत होगा। उस के दर्शनमात्र से ही वादी निष्प्रभ हो जावेगा ।६३

जगद्योनि, आदिभूता सनातनी, सर्वाघनाशिनी त्रैलोक्य विजया राधा का ध्यान कर ।६४।

अष्टाक्षर मन्त्र का जप तथा एकाग्र मन से स्तोत्र का पाठ करे, और भक्ति से प्रणाम करे तो सर्वसिद्धि करतलगत हो जावेगी ।६५

कृष्ण प्रोक्त यह स्तोत्र यति--साधक यदि पढ़े तो उसके वश में

शीकारं वह्निसंयुक्तमनन्तं तदनन्तरम् ।
नादबिन्दुकलायुक्तं राधिकायै ततः परम् ॥६७॥
हृदयान्तं महामन्त्रमष्टाक्षरं परंविदुः ।
अस्य स्मरणमात्रेण किं न सिद्ध्यति साधनम् ॥६८॥
इमं सन्त्रोदितं स्तोत्रं यस्य वाचि प्रवर्त्तते ।
त्रैलोक्यसुन्दरी देवी तिष्ठेत्तस्यनिरन्तरम् ॥
वाक्सिद्धं जायते तेषां योगिनामपि दुर्लभम् ६९

इति श्रीगोविन्द वृन्दावने श्रीराधिका वर्णनास्तुतिः समाप्ता

मनोरथ [illegible] ॥६६॥

[illegible] अनन्त नाद और बिन्दु [illegible] पर होगा ॥६७॥

[illegible] अष्टाक्षर होगा । [illegible] साधन असिद्ध नहीं रहता ॥६८॥

[illegible] जिसके कण्ठमें स्थित होगा, [illegible] निरन्तर रहेगी, योगियों का दुर्लभ [illegible] भी प्राप्त होगा ॥६९॥

इति श्रीश्रीगोविन्द वृन्दावनेश्रीराधिकावर्णना-स्तुतिः समाप्ता ।

वेदाग्नि गगनैनेत्रे माधवे विधुवासरे
श्रीनृसिंह चतुर्दश्यां ग्रन्थोऽयं पूर्णतांगतः ।
भृगवान्वयजातेन वृन्दावननिवासिना
शास्त्रिणाहरिदासेन सानुवादः प्रकाशितः ॥

प्रकाशक :—

श्रीहरिदासशास्त्री

श्रीहरिदास निवास,

कालीदह वृन्दावन ।

प्रकाशनतिथि :—

श्रीजगन्नाथदेवकी स्नानयात्रा

१०।६।७६

प्रथम संस्करण ५०० प्रति

सर्वस्वत्वसुरक्षित ।

मुद्रक :—

श्रीहरिदासशास्त्री

श्रीगदाधरगौरहरि प्रेस,

श्रीहरिदासनिवास

कालीदह—वृन्दावन

श्रीहरिदासशास्त्रि सम्पादिता ग्रन्थावली

प्रकाशितग्रन्थरत्न	प्रकाशन सहायता
१। नृसिंहचतुर्दशी	०.७५
२। श्रीसाधनामृतचन्द्रिका	८.००
३। श्रीसाधनामृतचन्द्रिका (व्रजभाषायाम्)	८.५०
४। श्रीगौरगोविन्दार्चन पद्धति	३.५०
५। श्रीराधाकृष्णार्चन दीपिका	०.५०
६। श्रीगोविन्दलीलामृत मूल टीका अनुवाद सर्ग—१-८)	५.५०
७। ऐश्वर्यकादम्बिनी (मूल अनुवाद)	१.५०
८। संकल्पकल्पद्रुम सटीक, सानुवाद	२.००
९। चतुःश्लोकी भाष्यम् (सानुवाद)	३.००
१०। श्रीकृष्णभजनामृतम् (सानुवाद)	
११। श्री प्रेमसम्पुट (मूल टीका अनुवाद सह)	४.००
१२। भगवद्भक्तिसार समुच्चय (सानुवाद)	३.७५
१३। व्रजरीति चिन्तामणि (मूल, टीका, अनुवाद सह,)	४.००
१४। श्रीगोविन्दवृन्दावनम्	१.५०

प्रकाशनरतग्रन्थरत्न

१। श्रीगोविन्दलीलामृत (९-२३ सर्ग)

२। वेदान्तदर्शनम् भागवतभाष्यसहितम्

३। श्रीकृष्णभक्तिरत्नप्रकाश

४। हरिभक्तिसार संग्रह

শ্রীশ্রীনিবাসাচার্য্য-গ্রন্থমালা

শ্রীহরিদাস দাস

श्रीहरिदासगण

प्रकाशितग्रन्थरत्न

१। [illegible]
२। [illegible]
३। [illegible]
४। [illegible]
५। [illegible]
६। [illegible]
७। [illegible]
८। [illegible]
९। [illegible]
१०। [illegible]
११। [illegible]
१२। [illegible]
१३। [illegible]
१४। [illegible]

प्रकाशनरत्न

१। [illegible]
२। [illegible]
३। [illegible]
४। [illegible]

ভূমিকা

শ্রীশ্রীগৌরসুন্দরের অপার করুণায় শ্রীশ্রীনিবাস আচার্য প্রভু ও [illegible] ভাগবতীর চতুঃশ্লোকীর (২/৯/৩০—৩৫) টীকা শ্রীভাগবত-প্রেমী [illegible] সমীপে [illegible] হইয়াছে। এই চতুঃশ্লোকী ব্যাখ্যায় নিখিল [illegible] শ্রীভগবানের মুখনিঃসৃত বাণী এবং শ্রীমদ্ভাগবতের মূল [illegible]। এই শ্লোকচতুষ্টয় অবলম্বন করিয়াই অষ্টাদশ-সাহস্রীর প্রবৃত্তি। [illegible] শ্রীজীব গোস্বামিপাদের শিক্ষার শিষ্য-পরম্পরা [illegible] যাহা কিছু শিক্ষাসূত্রে অবগত হইয়াছিলেন, [illegible] তিনি এই টীকায় সুপ্রকারে বর্ণনা করিয়াছেন। [illegible] এই টীকা [illegible] অনাবৃত হইলেও জ্ঞানাবশেষে [illegible] [illegible] পড়িবে।

[illegible] মহাপ্রভুর দ্বিতীয় প্রকাশ বলিয়া [illegible] সুতরাং তাঁহার স্বকৃত এবং [illegible] অর্থ, সূচক প্রভৃতি [illegible] [illegible] হইতে সাধকগণের যথাযথ চিত্ত-বিনোদন [illegible] স্পষ্টতা লাভ করিবে।

[illegible] শ্রীভাগবতের অর্থসংগ্রহ হইতে [illegible] গোস্বামি-বিরচিত দীপিকাদীপনীতে [illegible] এই চতুঃশ্লোকীদ্বারা কি প্রকারে [illegible] [illegible] অর্থসংগ্রহ হইতে পারে? এই প্রশ্নের উত্তরে তিনি [illegible] 'আমিই অগ্রে (সৃষ্টির পূর্বে অথবা সর্বাবচ্ছেদাদি [illegible]) ছিলাম'—এই বাক্যে সর্বকারণের কারণ শ্রীভাগবত-[illegible] আশ্রয়-তত্ত্ব উক্ত হইল এবং ইহাতেই দ্বাদশ স্কন্ধের [illegible] হইল। 'পশ্চাতেও আমি, এই [illegible] পুরুষ,

প্রধানাদি সকল বিষয় বলা হইল এবং ইহাতে **দ্বিতীয়** ও **তৃ**[illegible] স্কন্ধের অর্থসংগ্রহ হইল। 'পরিদৃশ্যমান যাহা কিছু (জগৎ)'—এই ব[illegible] **বিসর্গ, স্থান, ঊতি, মন্বন্তর** ও **ঈশানুকথা** বলা হইয়াছে। ক[illegible] র্য এই জগৎ আমিই—ইহাই ঐ বাক্যের অর্থ; সুতরাং ই[illegible] **চতুর্থ, পঞ্চম, সপ্তম, অষ্টম** ও **নবম** স্কন্ধের অর্থ সংগ্র[illegible] হইয়াছে। 'তৎপরে যাহা কিছু অবশিষ্ট রহিল, তাহাও আমিই'—এই ব[illegible] **নিরোধ** বলা হইয়াছে এবং ইহাতে **দশম** স্কন্ধের অর্থেরই উপস[illegible] হইল। 'সর্বাত্মক' ইত্যাদি [illegible] বাক্যে মায়ার প্রস্তাবে [illegible] [illegible] জগৎ **স্থিতি** [illegible] [illegible] সংসার ও জীবের নি[illegible] বলা হইয়াছে। এই নিরূপণ [illegible] সমগ্র গ্রন্থে আমরা[illegible] [illegible] সূচিত হইল।—ইহাতে **প্রথম** স্কন্ধের অর্থ-স[illegible] উক্ত হইল। 'যেমন মহাভূতসমূহ,' ইত্যাদি বাক্যে **পোষণ** [illegible] হইয়াছে এবং **ষষ্ঠ** স্কন্ধের অর্থসংগ্রহ উক্ত হইয়াছে। 'এই জিজ্ঞাসা করিবে' ইত্যাদি বাক্যে সাধন-সমুদায় **মুক্তি** বলা হইল এবং তাহাতে **একাদশ** স্কন্ধের অর্থ-সমাবেশও হইয়াছে।"

চতুঃশ্লোকীতে সম্বন্ধ, অভিধেয় ও প্রয়োজন—এই তিনটি নির্দিষ্ট হইয়াছে। শ্রীচৈতন্যচরিতামৃতে মধ্য ([illegible]) বলিয়াছেন—

ভাগবতের সম্বন্ধ, অভিধেয়, প্রয়োজন।
চতুঃশ্লোকীতে প্রকট তার করিয়াছে লক্ষণ॥
'আমি'—'সম্বন্ধ' তত্ত্ব আমার জ্ঞানবিজ্ঞান।
আমা পাইতে সাধন ভক্তি—'অভিধেয়' নাম॥
সাধনের ফল প্রেম মূল 'প্রয়োজন'।
সেই প্রেমে পায় জীব আমার সেবন॥
এই তিন অর্থ আমি কহিনু তোমারে।
জীবে তুমি এই তিন নারিবে জানিবারে॥

যৈছে আমার 'স্বরূপ', যৈছে আমার 'স্থিতি'।
যৈছে আমার গুণ, কর্ম, ষড়ৈশ্বর্য-শক্তি॥
আমার কৃপায় এই সব স্ফুরুক তোমারে।"
এত বলি' পিতা তত্ত্ব কহিলা তাঁহারে॥
"সৃষ্টির পূর্বে ষড়ৈশ্বর্য-পূর্ণ আমি ত রহিয়ে।
প্রপঞ্চ, প্রকৃতি, পুরুষ, আমাতেই লয়ে॥
সৃষ্টি করি তার মধ্যে আমি ত পশিয়ে।
প্রপঞ্চ যে দেখ সব, সেহ আমি হইয়ে॥
প্রলয়ে অবশিষ্ট আমি পূর্ণ হইয়ে।
প্রাকৃত প্রপঞ্চ পায় আমাতেই লয়॥
'অহমেব' শ্লোকে 'অহম্'—তিনবার।
পূর্ণৈশ্বর্য-বিগ্রহের স্থিতির নির্ধার॥
যে বিগ্রহ নাহি মানে, নিরাকার মানে।
তারে তিরস্কারিবারে করিলা নির্ধারণে॥
এই সব শব্দে হয় জ্ঞান-বিজ্ঞান বিবেক।
মায়া-কার্য, মায়া হৈতে আমি ব্যতিরেক॥
যৈছে সূর্যের স্থানে ভাসয়ে আভাস।
সূর্য বিনা স্বতন্ত্র তার না হয় প্রকাশ॥
মায়াতীত হৈলে হয় আমার অনুভব।
এই সম্বন্ধ-তত্ত্ব কহিলুঁ, শুন আর সব॥
অভিধেয়-সাধনভক্তির শুনহ বিচার।
সর্বজন-দেশ-কাল-দশাতে ব্যাপ্তি যার॥
ধর্মাদি বিষয়ে যৈছে এ চারি বিচার।
সাধনভক্তি—এই চারি বিচারের পার॥
সর্বদেশ-কাল-দশায় জনের কর্তব্য।
গুরুপাশে সেই ভক্তি প্রষ্টব্য, শ্রোতব্য॥
আমাতে যে প্রীতি, সেই প্রেম প্রয়োজন।
কার্যদ্বারে কহি তার স্বরূপ-লক্ষণ॥
পঞ্চভূত যৈছে ভূতের ভিতরে বাহিরে।
ভক্তগণে স্ফুরি আমি বাহিরে অন্তরে॥"

… … ১

২। অনুবাদ … … ৬

৩। শ্রীশ্রীষড়্গোস্বাম্যষ্টকম্ … … ১২

৪ শ্রীনরহরি-ঠক্কুরাষ্টকম্ … … ১৪

৫। শ্রীপদাবলী … … ১৫

৬। প্রকীর্ণ-শ্লোকাঃ … … ১৭

৭। শ্রীনিবাসাচার্যপ্রভোঃ শাখাঃ … ১৮

শ্রীশ্রীনিবাসাচার্য-বিষয়ক-সংগ্রহঃ —

১। শ্রীমনমোহন-ঠক্কুর-কৃতঃ … … ১৯

২। শ্রীমদ্ গতিগোবিন্দ ঠক্কুর-কৃতঃ … ১৯

৩। আদেশামৃত-স্তোত্রম্ … … ২০

৪। শ্রীনিবাসাচার্যপ্রভোঃ স্তুতিকম্ … ২২

৫। … … … … … ২৩

৬। অনুক্রোশ-সূচকম্ … … ২৫

৭। … … অনুবাদ … … ৬১

— ০ —

শ্রীশ্রীনিবাসাচার্য্য-গ্রন্থমালা

১। চতুঃশ্লোকী-ভাষ্যম্

শ্রীকৃষ্ণচৈতন্যায় নমঃ[১]

শ্রীকৃষ্ণ কৃষ্ণচৈতন্য সসনাতন-রূপক !
গোপাল-রঘুনাথাপ্ত-ব্রজবল্লভ পাহি মাম্ ॥২

১। শ্রীভগবানুবাচেতি—ভগবন্তো জ্ঞান-শক্তি-বৈরাগ্যৈশ্বর্য্য তেজোবন্তঃ ষড়্গুণযুক্তাঃ, অতএব 'ঐশ্বর্য্যস্য সমগ্রস্য বীর্য্যস্য শ্রিয়ঃ। জ্ঞান-বৈরাগ্যয়োশ্চৈব ষণ্ণাং ভগ ইতীঙ্গনা' ॥ ভগবন্তো নিত্যৈশ্বর্য্যযুক্তাঃ শ্রীবৈকুণ্ঠনাথাদয়ঃ পূর্ণাঃ ; শ্রীকৃষ্ণস্তু স্বয়ং চাতুর্ভুজাদিব নিজস্বীয়মান্ শ্রীগোপালরূপী পূর্ণতমঃ। তথাহি শ্রীগে বাক্যং—(ব্রহ্মাণ্ডপুরাণে)

সন্তি ভূরীণি রূপাণি মম পূর্ণানি ষড়্গুণৈঃ।
ভবেয়ুস্তানি তুল্যানি ন ময়া গোপরূপিণা ॥ ইতি

অতএব সর্ব্বৈশ্বর্য্যানন্তগুণবান্ গোলকধামা এব বক্তা।

জ্ঞানমিত্যাদি—মোক্ষে ধীঃ জ্ঞানং, ভক্তৌ ধীঃ পরমজ্ঞানং ই ধীঃ পরমগুহ্যজ্ঞানং, বিজ্ঞানং শিল্পশাস্ত্রয়োঃ—শিল্পমত্র শ্রীবিগ্রহ-নি সুগঠন-করচরণ-রেখাবিন্যাসাদিত। শাস্ত্রমত্র শ্রীভাগবত-গীতা-পদ্মপুর

(ক) শ্রীশ্রীবৃন্দাবনীয়-শ্রীরাধাদামোদর-গ্রন্থাগারস্য ৪২১-৩সং করলি

(খ) প্রকাশক-সংগৃহীতা খণ্ডিতা চ দ্বিতীয়া।

১। শ্রীগৌরাঙ্গ-শ্রীরাধাগোপীনাথ (ক) ; ২। [illegible] নাস্তি

৩। চরণচিহ্নবেশ-বিন্যাসাদি (খ)।

সাত্ত্বিক-কম্পাদি। রহস্যমত্র রাস-নিকুঞ্জমোহনমন্দির-শ্রীরাধা-সম্ভোগ সুরসপূরং প্রধানমঙ্গ। অঙ্গমত্র বিভাবানুভাব-সাত্ত্বিক-সঞ্চারি-সুহৃদ্রূপ সখ্যাদি গৌররূপ-বংশ্যাদি-বিপ্রলম্ভ-পূর্ব্বরাগ-মান-প্রবাসাদি-দিব্যোন্মাদ চিত্র জল্পাদিকোটিশ্চ। চ-কারাদনন্তম্। সখা—স্বয়ংভগবতা রসিক শিরোমণিনা নিগূঢ়-নিজলীলা-বিশারদেন গদিতং বাক্যমুক্তং ভবতাদি মুনিমানসাগোচরস্বাদবাক্যম্। অতএব গৃহাণ পরমাগ্রহপূর্ব্বকং দুর্লভং বস্তু মহানিধিসম্ভারম্ ইতি দিক্।

২। যথা নিগদিতং—গোলোকধামা গোপবেশো গোপীপতিঃ।

কং প্রতি কথয়িতুমীশে, সংপ্রতি কো বা প্রতীতিমায়াতু।
গোপতি-তনয়া-কুঞ্জে, গোপবধূটীবিটং ব্রহ্ম ॥

(পদ্যাবলী ৯৮)

বিটঃ গোপীনাং সখা। অতঃ পতিঃ একদেশোপচারঃ১। যথা ভাগবতে ব্রজাঙ্গনাদি ভাবাশ্রয়ঃ। যদস্যা গুণকর্ম্মকঃ—শ্যামসুন্দরঃ কোটিকন্দর্প-লাবণ্যধামা অসাধারণ-স্বরূপ-ত্রিভঙ্গ-মুরলীমোহনত্বাদিমান্, কর্ম্ম রাস-লীলাবিনোদী। ত্রৈবেদ্যেতি—নিগম-নিগূঢ়ত্বাৎ, নিগমকর্ত্তেঽপি ব্রহ্মণে অবেদ্য আশীর্বাদঃ, তদগোচরস্বাদশব্দাত্মকঃ। "গোলোকনাম্নি নিজধাম্নি" (ব্রহ্মসং ৫।৪৩) "গোলোক এব নিবসতি" (ব্রহ্মসং ৫।৩৭) ইত্যাদি। "কৃষ্ণং গোপালরূপিণম্" (গোতমীয়তন্ত্রে), "তত্রৈব জ্ঞাত্বা ভুক্তিং ন কৃষ্ণ গোপালরূপিণঃ" (ব্রহ্মাণ্ডপুরাণে), "গোপবেশো মে পুরস্তাদাবির্ভবতু" (গোপালতাপনী পূঃ ২৮) ইত্যাদি। "গোপীজনবল্লভঃ," "স্বামী ভবতি" (গোপালতাপনী উত্তর) "কৃষ্ণবধ্বঃ" (ভা ১।১১।৩৭), "বল্লবো মোহনশ্চান্তঃ" ইত্যাদি। অধিষ্ঠাতৃত্বে "নৃসিংহো নন্দনন্দনঃ" (ভক্তি-রসামৃতে ২।৫।১১৯), "শৃঙ্গাররসসর্ব্বস্বম্" (কর্ণামৃতে ৯২), "জন্মাদ্যস্য যতঃ"

১। 'কং প্রতীত্যারভ্য একদেশোপচারঃ' ইত্যেতদংশঃ খ পুস্তকে নাস্তি।
২। 'বল্লবো মে সখীনামাঃ' ইত্যেব মুদ্রিত-শ্রীভাগবতে (১০।৪৮।৬) দৃশ্যতে।

(ভা ১১।১১), "শৃঙ্গারঃ সখি মূর্ত্তিমানিব" (গীতগোবিন্দে ১।৪৮) ইত্যাদি। "যং শ্যামসুন্দরং" (ব্রহ্মসং ৫।৩৮), "শ্যামমেব পরং রূপম্" (পদ্যাবলী ৮৩) ইত্যাদি। "কন্দর্পকোটিলাবণ্যঃ" (স্তবমালা মহানন্দ ২), "কন্দর্পকোটি রম্যায়" (স্তবমালা প্রণাম ১) ইত্যাদি। "বেণুং ক্বণন্তং" (ব্রহ্মসং ৫।৩০), "বেণুবাদামৃতোল্লাস"…(গৌতমীয়ে স্তবরাজঃ ১৩) "গোবিন্দং কলবেণুবাদনপরম্" (পদ্যাবলী ৪৬) ইত্যাদি। "গোবর্দ্ধনীগরো রসো [illegible] রাসরসোৎসুকম্" (গৌতমীয়ে স্তবরাজঃ ১১)। "ন হি জানে স্মৃতে রাসে মনো মে কীদৃশং ভবেৎ" (বৃহদ্বামন পুঃ); "অতন্দ্রাকুলিতো রাসঃ প্রমদাশতকোটিভিঃ।"[1] "রাসোৎসবঃ সংপ্রবৃত্তো গোপীমণ্ডল-মণ্ডিতঃ"[2] (ভা ১০।৩৩।৩)। "জয়তি শ্রীপতিগোপীরাসমণ্ডলমণ্ডিতঃ" (ক্রমদীপিকা [illegible]) ইত্যাদি।

৩। [illegible] গোপালরূপী **অগ্রে** সর্বলোক-[illegible] **আসমেব** রাসলীলয়া বিরাজমান এবাবতিষ্ঠম্, ভাসৃ দীপ্তৌ অত্র। নান্যাদিত্যাদি—**সৎ**, মদ্রূপকার্যসমূহ-বস্ত্বাদি, **অসৎ** প্রাকৃতপদার্থাদি, **পরং** নিজগাহনীয়ঃ গোপীষু, পরকীয়া ভাবম্। তদেবং মদ্বিনা (যৎ অসৎ) জগদাদিসর্বং কে কুর্বন্তি?— তত্রাহ **পশ্চাদহং**[3] সর্বলোকসৃষ্টে [illegible] সংকর্ষণ-কমঠাদিরূপেণ, **যোঽবশিষ্যেত** সর্বলোকমধ্যে বিলাস-পুরুষ-গুণাবতার-লীলাবতারাবেশ-প্রাভব-বৈভব-পূর্ণাবতার-[illegible]-প্রভৃতয়োঽংশকলা মম সর্বং [illegible], কার্যকারণয়োরভেদাৎ; পরন্তু [illegible] **অহং** গোকুলে সর্বং [illegible] ভাবঃ।

১। 'প্রমদাশতকোটীভিরাকুলিতে' ইতি ক্রমদীপিকায়াং (৫।২৩) পাঠঃ

২। মণ্ডনঃ ইতি মুদ্রিত-পুস্তকে পাঠঃ, খ-পুস্তকেঽপি।

৩। গোপরূপী (খ), ৪। এতদাদি সর্বং (ক, খ)।

৪। ননু ইদমর্থং সর্বং কথং নানুভবামি? তত্রাহ—**ঋতেঽর্থমিতি।** এতদেব পরমকৌতুকং তৎ তাং ভ্রূক্ষেপেণ সকলভুবনং নশ্বরাগ্রে নর্তয়ন্তীম্ **আত্মনো** মম মায়াং **বিদ্যাৎ, ঋতে** সত্যে **চাত্মনি** ময়ি ইদম্ **অর্থং** পরমপুরুষার্থরূপং প্রেমাণং **যৎ** যস্যাঃ প্রভাবেন ন করোতি, নঞঃ প্রথমপাদেনান্বয়ঃ। **আত্মনি** আত্মোপমেষু স্বপুত্রাদিষু **প্রতীয়েত** করোতি চ; বৈপরীত্যে দৃষ্টান্তঃ—যথাভাসঃ ঘটাদিজ্ঞানং ন করোতি **তমস্তু** করোত্যেবেতি। **মম মায়ৈব** আমাতৃশয়েন **বিদ্যাৎ** বিজানীতি।

৫। পুনরপি মহাশয়ঃ আত্মনো বিভুত্ব-পরিচ্ছিন্নত্বে লীলায়াঃ প্রবিষ্টাপ্রবিষ্টত্বে দৃষ্টান্তেন নিরূপয়তি **যথা মহান্তীতি**—পৃথিব্যপ্তেজোবায়্বাকাশানি বিভূনি পরিচ্ছিন্নানি চ, প্রকটাপ্রকটানি চ; পৃথিবী ব্যাপিকা অনন্তকোটি-ব্রহ্মাণ্ডাধারিকা, পরিচ্ছিন্না লোষ্ট্রাদিরূপা। জলং ব্যাপি কারণার্ণবরূপং ব্রহ্মাণ্ডাধারম্, পরিচ্ছিন্নং করকাদিরূপম্। তেজো ব্যাপি সূক্ষ্মং ব্রহ্মাদিরূপং, পরিচ্ছিন্নং দীপশিখাদিরূপম্। বায়ুর্ব্যাপী সর্বগতঃ, পরিচ্ছিন্নো ব্যজনাদিরূপঃ। আকাশং সর্বগতং ব্যাপি, পরিচ্ছিন্নং ঘটাকাশাদিরূপম্। **এবমহং**—'ন চান্তর্ন বহির্যস্য ন পূর্বং নাপি চাপরম্' (ভা ১০।৯।১৩) ইত্যাদিনা বিভুঃ। 'ববন্ধ প্রাকৃতং যথা' (ভা ১০।৯।১৪) ইত্যাদিনা পরিচ্ছিন্নঃ। অনন্তকোটিব্রহ্মাণ্ডান্তর্যামিতয়া বিভুঃ, দ্বিভুজচতুর্ভুজাদিরূপতয়া পরিচ্ছিন্নঃ। তথাহি—"বিভুরপি [illegible]মূর্তিঃ" (ভক্তিরসামৃতে ২।১।১৯৮) অচিন্ত্যানন্তশক্তিত্বাৎ। পরং পৃথিব্যাদ্যপঞ্চীকৃততন্মাত্রগন্ধাদিরূপাঃ প্রবিষ্টা অদৃশ্যাঃ, সূক্ষ্মরূপাঃ যোগিপ্রত্যক্ষাঃ। অপ্রবিষ্টাশ্চ স্থূলরূপাঃ

১। মম মায়ারূপাং (খ), ২। আত্মসেনোম্ (খ),
৩। [illegible]

পঞ্চীকৃতা মূর্ত্তির্মম চেৎ১। এবমহং বিরাড়ন্তর্যামিতয়া প্রবিষ্টঃ, দ্বিভুজাদি-রূপাপ্রবিষ্টঃ। তথাচ গীতোপনিষদি (বিভূত্বে) 'বিষ্টভ্যাহমিদং কৃৎস্ন-মেকাংশেন স্থিতো জগৎ' (গীতা ১০।৪২) 'ঈশ্বরঃ সর্বভূতানাং হৃদ্দেশেঽর্জুন তিষ্ঠতি' (গীতা ১৮।৬১) ইত্যাদি—'মামেব যে প্রপদ্যন্তে মায়ামেতাং তরন্তি তে' (গীতা ৭।১৪) 'মামপ্রাপ্যৈব কৌন্তেয়' (গীতা ১৬।২০), মাং কৃষ্ণরূপং পরিচ্ছিন্নম্। পরন্তু—"যস্যাগাহাশরীরিণী২ আকাশবাণ্যাদিরূপাপি শ্রূয়তে, তদপরিচ্ছিন্নম্। এবং মম লীলায়া অপি অপরিচ্ছিন্নত্ব পরিচ্ছিন্নত্বে৩ যথা—'সদানন্দৈঃ প্রকাশৈঃ স্বৈর্লীলাভিশ্চ স দীব্যতি' (লঘুভাগবতামৃতে ১।১৭) ইত্যত্রানন্ত-শব্দেনাপরিচ্ছিন্নত্বম্। 'গোকুলে মথুরায়াঞ্চ দ্বারবত্যাং ততঃ ক্রমাৎ' (ভাবার্থদীপিকা ১০, উপক্রমণিকা ২) ইত্যনেন পরিচ্ছিন্নত্বম্। ক্বচিৎ প্রকটত্বং ক্বচিদ-প্রকটত্বঞ্চ; যথা—'মথুরা ভগবান্ যত্র নিত্যং সন্নিহিতো হরিঃ' (ভা ১০।১।২৮) ইত্যাদিনা প্রকটলীলায়াং দ্বারকায়াং "শ্রিয়ঃপতেঃ স্বজ্ঞশ্মনা চক্ষুশোভেন চক্ষুষে" (ভা ১।১১।২৬) ইতি দ্বারকাবাসিবন্দমানানাং প্রয়োগাৎ গোকুলে চ অপ্রকটনিত্যলীলা সূচ্যতে ইতি দিক্।

২। তদেবং মধ্যেন সম্পাদ্য—এতাবদেবেতি। আত্মনো মম তত্ত্বং পূর্বোক্তং সুগোপ্যং সর্বগুহ্যতমং পরম-রহস্যং জিজ্ঞাসুনা জ্ঞাতুমিচ্ছুনা শিষ্যেণ এতাবদেব জিজ্ঞাস্যং পুনঃ পুনঃ জ্ঞাতব্যং, কুতঃ পরমস্তু? পরমসাধন-পরম-পুরুষার্থ-বিচারনিপুণ শ্রীভাগবতরস-রসিকাসঙ্গসঙ্গি-প্রসঙ্গোজ্জ্বলচিত্ত-জীবনীভূত-গোবিন্দ পাদপদ্ম-সুধাস্বাদক—শ্রীচৈতন্যচন্দ্র-চরণাব্জচঞ্চরীক-শ্রীরাধাপদনখচন্দ্রচকোর-শ্রীগুরুতঃ শিক্ষণীয়ং

১। 'পৃথিব্যাদি-পঞ্চ'কৃতাঙ্গুষ্ঠমাত্রগন্ধাদিরূপাঃ প্রবিষ্টাঃ অদৃশ্যাঃ, স্থূলরূপাঃ যোগিপ্রত্যক্ষা অপ্রবিষ্টাঃ পঞ্চীকৃতা মূর্ত্তিঃ স্থাচ্চ' ইতি ক-খয়োঃ পাঠঃ।
২। ভা ১০।১।৩৪ যস্যৈব সাহাশরীরিবাক্; ৩। প্রকটাপ্রকটত্বে (ক, খ)।

পূর্ব্বোক্তমেব, **শ্রীকৃষ্ণলীলা-রহস্যং**—স্বকীয়া পরকীয়া, গোপী পরকীয়া-ভাবাদিকং, নান্যৎ। কেন প্রকারেণ? ইত্যাহ—**অন্বয়-ব্যতিরেকাভ্যাম্**—অন্বয়েন অনুগমনেন অনুসেবয়েত্যর্থঃ। ব্যতিরেকেণ বিশিষ্টেন অতিরেকেণ ঔৎকট্যেন পরমার্ত্ত্যেত্যর্থঃ। যৎ শ্রীগুরোরনুগমনং **সর্ব্বত্র** সর্ব্বভজনসাধনে অনুসরণং **সর্ব্বদা** সর্ব্বকালে জীবনে মরণে বিপদি সম্পদি দূরে নিকটেদিনাদৌ নিশাদৌ সংকীর্ত্তনাদৌ মহাপ্রসাদে অনুশীলনে ইত্যাদি। অতএব—'তস্মাদ্ গুরুং প্রপদ্যেত' (ভা [illegible]) ইত্যাদি। 'তত্র ভাগবতান্ ধর্ম্মান্ শিক্ষেদ্ গুর্ব্বাত্মদৈবতঃ' (ভা০ ১১।৩।২২), গুরুরেবাত্মা দৈবতঞ্চ; 'ওঁ শ্রীগুরবে নমঃ।' 'যে ময়া গুরুণা বাচা তরন্ত্যঞ্জো ভবার্ণবম্' (ভা০ [illegible]), 'যথাহং জ্ঞানদো গুরুঃ' (ভা০ ১০।৮০।৩২); গুরুরনুগ্রহেণৈব পূর্ণঃ। হরিগুরুচরণারবিন্দযুগলানুশীলনেন "বহুবাদেরে যস্য ন স্যাদ্গুরুপাদাম্বুজে। শ্রুতৈরপাস্য সচ্ছাস্ত্রৈঃ কৃষ্ণে ভক্তির্ন জায়তে।" হরিরেব গুরুর্গুরুরেব হরিঃ। 'গুরু-কর্ণধারম্' (ভা০ [illegible]) 'গুরুষু নরমতিঃ' (পাদ্মে), 'গুরোরবজ্ঞা শ্রুতিশাস্ত্রনিন্দনম্' (পাদ্মে)। 'আচার্য্যং মাং বিজানীয়াৎ' (ভা০ ১১।[illegible]) ইত্যাদি। কিং বহুনা? নাস্তি তত্ত্বং গুরোঃ পরম্ ইতি দিক্।

শ্রীনিবাসাচার্য্য-বিরচিতা শ্রীচতুঃশ্লোকীব্যাখ্যা

২। তাৎপর্য্যানুবাদ

১। শ্রীভগবান (শ্রীকৃষ্ণ) বলিলেন—যাঁহাদিগেতে জ্ঞান, শক্তি, বৈরাগ্য, ঐশ্বর্য্য, বীর্য্য ও তেজোরূপ ছয়টি গুণ আছে, তাঁহাদিগকে 'ভগবান' বলা হয়। ত্রিপাদ্বিভূতিযুক্ত শ্রীবৈকুণ্ঠনাথাদি ভগবানরূপী

শ্রীগোপালরূপী এবং পূর্ণতম। ব্রহ্মাণ্ড পুরাণে শ্রীগোপাল-কর্তৃক ইহা উক্ত হইয়াছে—'আমার পূর্ণ ও ষড়্গুণযুক্ত বহুবিধ প্রকাশ আছে, কিন্তু আমার গোপরূপের সহিত তাহাদের তুলনাই হয় না।' অতএব এস্থলে সর্বৈশ্বর্যশালী অনন্ত-গুণময় গোলকবাসী শ্রীহরিই বক্তা। মোক্ষ-বিষয়িণী বুদ্ধিকে **জ্ঞান**, ভক্তিবিষয়িণী বুদ্ধিকে পরম জ্ঞান, প্রীতি-বিষয়িণী বুদ্ধিকে **পরম গুহ্যজ্ঞান** বলা হয়। **বিজ্ঞান**-শব্দ শিল্প ও শাস্ত্র-বিষয়ক অনুভবই বাচ্য, এস্থলে **শিল্প**-শব্দে শ্রীবিগ্রহের ত্রিভঙ্গিম সংস্থান ও করচরণাদির রেখাবিন্যাসাদি বোদ্ধব্য এবং শাস্ত্রও শ্রীমদ্ভাগবত, গীতা, পদ্মপুরাণাদি এবং সাত্বত কল্পাদি। **রহস্য**-শব্দে এস্থলে রাস এবং নিকুঞ্জ ও মোহন মন্দির প্রভৃতিতে শ্রীরাধার সহিত সম্ভোগাদি পরম সুখানুভূতি—ইহাই প্রধান ও অঙ্গী। **অঙ্গ** বলিতে বিভাব, (আলম্বন ও উদ্দীপন,) অনুভাব (চিত্তস্থিত ভাবের অববোধক নৃত্য, গান, হুঙ্কার, জৃম্ভা ইত্যাদি), সাত্ত্বিক (অশ্রু, কম্পাদি), ব্যভিচারী (ত্রাস, শঙ্কা, গ্লানাদি), সুহৃদ্রূপে সখ্যাদি, শত্রুরূপে বৎসলাদি রস, পূর্বরাগ, মান, বিলাস, বিবাদ, চিত্রজল্পাদি অনন্ত ব্যাপারই গ্রাহ্য। স্বয়ং ভগবান্ রসিকশিরোমণি নিগূঢ়লীলা-বিশারদ আমিই তোমাকে এই সব তত্ত্ব বলিতেছি। ইহা কিন্তু সনকাদি মুনিগণেরও মনোবৃত্তির অগোচর বলিয়া এতদিন অপ্রকটই ছিল, তথাপি আমি তোমাকে কৃপা করিয়া স্পষ্টতঃ বলিতেছি। হে ব্রহ্মন্! তুমি এই তত্ত্বকে মহানিধির ন্যায় মনে করিয়া পরমাগ্রহ সহকারে অবধারণ কর।

২। আমার অনুগ্রহে তোমার মদ্বিষয়ক সর্বপ্রকার তত্ত্বজ্ঞানের স্ফূর্তি হউক। শ্লোকস্থ 'যাবানহং' শব্দ আমার স্বরূপের দ্যোতক, আমি গোলকধামবাসী, গোপবেশ ও গোপীপতি। গোপীপতি-শব্দে গোপীগণের উপপতিই বোদ্ধব্য। 'যথাভাবঃ'-শব্দ দ্বারা উজ্জ্বলাদি [illegible]। 'যদ্রূপগুণকর্মকঃ' শব্দের 'রূপ' শব্দে

শ্যামসুন্দর, কোটিকন্দর্পলাবণ্যময় বিগ্রহাদি ধর্ম্মনত, 'গুণ' শব্দে অসাধারণ গুণচতুষ্টয় (লীলা, প্রেম রূপ ও বেণু-মাধুরী) বোদ্ধব্য এবং 'কর্ম্ম' শব্দ রাসলীলাদি বিনোদেরই বাচক। এই সব তত্ত্ব নিগম-নিগূঢ় বলিয়া নিগমকর্ত্তা ব্রহ্মারও অগোচর এবং দুর্বোধ্য, এইজন্যই তাঁহাকে আশীর্ব্বাদ দেওয়ার আবশ্যকতা।

৩। আমিই (পূর্বোক্ত মহানুভব গোপালরূপী) অগ্রে অর্থাৎ সর্বলোক-চূড়ামণি শ্রীগোলক-নামক ধামে শ্রীরাসলীলায় বিরাজমানই ছিলাম। তখন আর অন্য সদসৎপর কার্য্যাদি কিছুই ছিল না—শ্লোকের 'সৎ' বলিতে সাধুজনের রক্ষার জন্য অসুর-বধাদি, 'অসৎ' বলিতে প্রাকৃত দর্পনাদি এবং 'পর' শব্দে নিজ-গৃহিণী গোপীগণে পরকীয়া ভাবই বক্তব্য। যদি প্রশ্ন হয় যে শ্রীহরি যদি নিত্যই গোলোকে রাসলীলায় মগ্ন থাকেন, তবে জগদাদির সৃষ্টি-স্থিতি-লয়ের কার্য্যাদি কে করেন? তদুত্তরে বলিতেছেন যে সর্বলোক-মূলে মূলাধার পাতালে আমিই সংকর্ষণ ও কচ্ছপাদিরূপে থাকিয়া পৃথিবীর ধারণ পোষণ করি। আবার গোলক ও পাতালের মধ্যবর্ত্তী অবশিষ্ট (অনান্য) যাবতীয় লোক-মধ্যেও আমিই বিলাস, পুরুষ, গুণাবতার, লীলাবতার, প্রাভব, বৈভব, পদ্মনাভ, ক্ষীরোদশায়ী প্রভৃতিতে অংশকলারূপে অবস্থান করিয়া সকল কার্য্য সমাধান করিয়া থাকি (তাৎপর্য্য এই—কার্য্য ও কারণ বোধতন্ত্রে অভিন্ন বলিয়া বিলাসাদি দ্বারা যে সব কার্য্য সম্পন্ন হয়, তাহাতেও স্বয়ং ভগবানেরই শক্তি-প্রেরিত বলিয়া প্রকৃত পক্ষে ভগবান্‌ই মুখ্য কর্ত্তা, অন্যান্য সকলেই গৌণ বা প্রয়োজ্য কর্ত্তা)।

৪। এস্থলে আশঙ্কা—তবে কেন এই সব তত্ত্ব সকলে অনুভব করেন না? তদুত্তরে বলিতেছেন—ইহাই ত পরম কৌতুক, ইহাকে আমার মায়ার প্রভাব বলিয়াই জানিবে। মায়ার স্বরূপ নির্দেশ করিতেছেন—যাঁহার ভ্রূক্ষেপেই চতুর্দশ ভুবনকে নশ্বরাগ্রে নাচাইতেছেন,

তিনিই আমার মায়া। তাঁহার কার্য্য—সত্যস্বরূপ পরমাত্মা আমাতে তিনিই পরম পুরুষার্থরূপে প্রেম করান না, অথচ অসত্যস্বরূপ আত্মতুল্য স্ত্রীপুত্রাদিতেই প্রেম প্রয়োগ করান। এইরূপ বৈপরীত্যের দৃষ্টান্ত—চিন্ময় বস্তুর আভাসে (স্ফুরণে) ঘটাদিজ্ঞানের বাধা হয় অর্থাৎ যত্র তত্র ইষ্ট বস্তুর স্ফূর্ত্তি হইতে থাকিলে আর ঘটপটাদি বস্তুর পৃথক্ পৃথক্ সত্তার অনুভব হয় না অথচ চিন্ময় বস্তুতে অজ্ঞান থাকিলে ঐ ঘটপটাদি জ্ঞানের সাধন হয় অর্থাৎ ইষ্টবস্তু-বিষয়ক অজ্ঞানেই ঘটপটাদি পৃথক্ পৃথক্ বস্তুর অস্তিত্বজ্ঞান ঘটায়। আমার এই মায়াই বিদ্যাকে সম্যক্ প্রকারে আচ্ছাদন করিয়া রাখে।

৫। পুনরায় মহাশয় (শ্রীকৃষ্ণ) তাঁহার স্বরূপের বিভুত্ব ও পরিচ্ছিন্নত্ব এবং লীলার প্রকটত্ব ও অপ্রকটত্ব বিষয়ে দৃষ্টান্ত দ্বারা নিরূপণ করিতেছেন—পৃথিবী, জল, তেজঃ, বায়ু ও আকাশ প্রভৃতি পঞ্চ মহাভূত যুগপৎ বিভু ও পরিচ্ছিন্ন এবং প্রকট ও অপ্রকটরূপে বিরাজ করে। বিভুরূপে পৃথিবী অনন্তকোটি ব্রহ্মাণ্ড-ব্যাপিনী অথচ লোষ্ট্রাদিরূপে পরিচ্ছিন্না; বিভুরূপে জল কারণ-সমুদ্র ব্রহ্মাণ্ডাধার অথচ করকাদিরূপে পরিচ্ছিন্না; অগ্নি বিভুরূপে সূক্ষ্মা ব্রহ্মপ্রভৃতি-স্বরূপ এবং দীপাগ্নিখাদিরূপে পরিচ্ছিন্না; বায়ু সর্বগত হইয়া ব্যাপী এবং বাত্যাদিরূপে পরিচ্ছিন্না; আকাশও সর্বগত হইয়া ব্যাপী অথচ ঘটাকাশাদিরূপে পরিচ্ছিন্না (সীমাবদ্ধ) তদ্রূপ আমিও বিভু—এ বিষয়ে (ভাগবতে ১০।৯।১৩) প্রমাণ—যাঁহার অন্তবাহ্য নাই অর্থাৎ যিনি সর্বদেশব্যাপক এবং যাহার পূর্বপরবর্তী কাল-বিভাগ হয় না অর্থাৎ সর্বকালব্যাপী ইত্যাদি। বিভুত্ব সত্ত্বেও আবার আমি পরিচ্ছিন্না হইয়া থাকি—তাহারও প্রমাণ (ভা ১০।৯।১৮)—মা যশোদা যাঁহাকে প্রাকৃতবালকবৎ বন্ধন করিয়াছেন ইত্যাদি। অনন্তকোটি ব্রহ্মাণ্ডের অন্তর্যামিরূপে আমি বিভু (অসীম), আবার দ্বিভুজ-চতুর্ভুজাদি-স্বরূপে পরিচ্ছিন্না (সসীম)। ভক্তিরসামৃত

(১০।১৪।৮) বলিতেছেন—বিভু হইলেও যিনি মাতার ভুজদ্বয়মধ্যবর্তী ক্রোড়েই পর্য্যাপ্ত (পূর্ণ) রূপে প্রকাশিত হইয়াছেন ইত্যাদি। অসীমত্বে সসীমত্ব কিন্তু তাঁহার অচিন্ত্য অনন্ত শক্তিবলেই সাধ্য। অপরদিকে দৃ পৃথিব্যাদি পঞ্চভূত যখন অপঞ্চীকৃত (অবিমিশ্রিত) অবস্থায় তন্মাত্রাদিরূপে থাকে, তখন তাহারা প্রবিষ্ট অর্থাৎ সূক্ষ্মরূপে থাকে বলি সাধারণ লোকের অদৃশ্য হইলেও যোগিগণের প্রত্যক্ষ হয়; কি তাহারাই আবার পঞ্চীকৃত (মিশ্রিত) অবস্থায় স্থূলরূপে প্রকাশ পাই যখন মনুষ্যাদি করে, তখন তাহারা হয় অপ্রবিষ্ট (দৃশ্য); তদ্রূপ শ্রীভগবানও বিরাট্ পুরুষের অন্তর্যামি-স্বরূপে প্রবিষ্ট (অদৃশ্য) এব বিভুত্বাদিরূপে অপ্রবিষ্ট (দৃশ্য)। বিভুত্বের প্রমাণ—(গীতা ১০।৪২) আমি সমগ্র জগৎ ব্যাপিয়া আছি, আমারই একাংশে জগতের স্থিতি হ ইত্যাদি। আবার পরিচ্ছিন্নত্বের প্রমাণ—আমারই শরণাপন্ন হইলে এ মায়া পার হওয়া যায় (আমি শব্দে এই শ্রীকৃষ্ণরূপে পরিচ্ছিন্ন মূর্ত্তি বোদ্ধব্য) দেবকীর উদরেও অপরিচ্ছিন্নত্বের প্রমাণ। এইরূপে ভগবানের লীলারও অপরিচ্ছিন্নত্ব এবং পরিচ্ছিন্নত্ব আছে। অসীমত্বের প্রমাণ—(লঘুভাগবতামৃতে) 'শ্রীকৃষ্ণ নিত্যকাল অনন্ত প্রকাশে অসাধারণ লীলা বিনোদ করেন' এস্থলে অনন্ত-শব্দ লীলার অসীমতার বাচক, আবার 'প্রভু গোকুলে, মথুরায় ও দ্বারকায় ক্রমশঃ লীলা বিস্তার করেন,' এ ভাবার্থদীপিকার ([illegible]) প্রমাণে লীলার পরিচ্ছিন্নতাও বুঝাইতেছে। আবার যেখানেও প্রকটত্ব, তৎকালে অন্যত্র অপ্রকটত্ব বুঝিতে হইবে। শ্রীমদ্ভাগবতের (১০।১।২৮) 'মথুরায় শ্রীভগবান্ নিত্য বিরাজমান্' এই বচনে মথুরায় নিত্য বিরাজমানতায় দ্বারকায় (গোকুলে) অপ্রকট প্রকাশে নিত্যলীলার সূচনা করে। আবার শ্রীকৃষ্ণের দ্বারকায় অবস্থানকালেও দ্বারকাবাসিগণের উক্তিতে (এই শ্রীপতি কৃষ্ণ জন্মগ্রহণ করিয়া যদুবংশকে

* লীলাবিনোদে [illegible]

গোকুলেও অপ্রকটে নিত্যলীলারই ইঙ্গিত করিতেছে; সুতরাং স্বীকার করিতে হয় যে শ্রীকৃষ্ণের লীলামাত্রই নিত্য, একত্র আবির্ভাব হইলে অন্যত্রও অপ্রকটে সমজাতীয় লীলাবিনোদ নিত্যকালই চলিতেছে।

৬। এক্ষণে প্রসঙ্গটির মধুরভাবে সমাপন করিতেছেন—আমার (শ্রীকৃষ্ণের) পূর্ব্বোক্ত অগোপ্য পরমগুহ্যতম পরমরহস্য তত্ত্বটির জিজ্ঞাসা জাগিলে শিষ্য পুনঃ পুনঃ এই কথাই জিজ্ঞাসা করিবেন। জিজ্ঞাসার স্থল—একমাত্র শ্রীগুরুপাদপদ্মই। শ্রীগুরুদেবও আবার পরমসাধন পরম-পুরুষার্থাদি-বিষয়ে বিচার-নিপুণ হইবেন, শ্রীভাগবতে অনুরক্ত রসিকজনের সঙ্গপরায়ণ অত্যন্ত প্রসন্ন ও উজ্জ্বলচিত্ত হইবেন, জীবাতুস্বরূপ শ্রীগোবিন্দের পাদপদ্ম সুধার আস্বাদক, শ্রীচৈতন্যচন্দ্রের চরণপদ্মের মধুকর এবং শ্রীরাধার পদনখর চন্দ্রচকোর হইবেন। এবম্বিধ শ্রীশ্রীগৌর গোবিন্দ ভজননিপুণ শ্রীগুরুদেবের নিকট শ্রীকৃষ্ণলীলারহস্যই জ্ঞাতব্য। এই লীলা রহস্য শব্দে স্বকীয়া ও পরকীয়া ভেদে লীলার দ্বৈবিধ্য এবং গোপীগণ বিষয়ে পরকীয়া, ভাবাদি, অন্য কিছু (স্বকীয়াদি) নহে, ইহাই বোদ্ধব্য। কোন্ প্রকারে শিক্ষণীয়? —তাহার উত্তরে বলিতেছেন—অন্বয়ে ও ব্যতিরেকে। অন্বয় শব্দে আনুকূল্য অর্থাৎ নিরন্তর সেবা এবং ব্যতিরেক শব্দে উৎকণ্ঠা অর্থাৎ পরমার্ত্তিই বর্ণিত; সুতরাং পরমার্ত্তিভরে শ্রীগুরুপাদপদ্মের নিত্য আনুগত্যানুকূল সেবাদ্বারাই শ্রীকৃষ্ণলীলারহস্য জ্ঞাতব্য; যেহেতু শ্রীগুরু-চরণের আনুগত্যই সর্ব্বত্র—সর্ব্বভজনসাধনে সর্ব্বদা অর্থাৎ সর্ব্বকালে—জীবনে মরণে, বিপদে সম্পদে, দূরে নিকটে, প্রভাতে প্রদোষে, সংকীর্ত্তনারম্ভে ও মহাপ্রসাদ সেবায়, এক কথায় জীবনের প্রতিপদক্ষেপে শ্রীগুরুতেই অনুশীলনীয় কার্য্যে অত্যাবশ্যক ধর্ম্ম। এই বিষয়ে শ্রীমদ্ভাগবতাদি বহু শাস্ত্রই সাক্ষ্য বহন করিতেছেন—শ্রীগুরুদেবেরই প্রপন্ন হইতে হয়। শ্রীগুরু [illegible] দেবতার (পরমারাধ্য ইষ্ট বস্তুর) নিকট

হইতেই ভাগবত ধর্ম্ম শিক্ষা করিতে হয়' ইত্যাদি। অধিক বলা নিষ্প্রয়োজ
শ্রীগুরুই পরাৎপর তত্ত্ব।

শ্রীশ্রীনিবাসাচার্য্যপ্রভু-বিরচিতং

৩। শ্রীশ্রীমড়্গোস্বাম্যষ্টকম্

কৃষ্ণাকীর্ত্তন-গান-নর্ত্তনপরৌ প্রেমামৃতাম্ভোনিধী
রাধাধীরজনপ্রিয়ৌ প্রিয়করৌ নির্মৎসরৌ পূজিতৌ।
শ্রীচৈতন্যকৃপাভরৌ ভুবি ভুবো ভারাবতারকৌ
বন্দে রূপ-সনাতনৌ রঘুযুগৌ শ্রীজীব-গোপালকৌ ॥ ১

নানাশাস্ত্র-বিচারণৈকনিপুণৌ সদ্ধর্ম্ম-সংস্থাপকৌ
লোকানাং হিতকারিণৌ ত্রিভুবনে মান্যৌ শরণ্যাকরৌ।
রাধাকৃষ্ণ-পদারবিন্দ-ভজনানন্দেন মত্তালিকৌ
বন্দে রূপ-সনাতনৌ রঘুযুগৌ শ্রীজীব-গোপালকৌ ॥ ২

শ্রীগৌরাঙ্গ-গুণানুবর্ণন-বিধৌ শ্রদ্ধা সমৃদ্ধাশিষৌ
পাপোত্তাপ-নিকৃন্তনৌ তনুভৃতাং গোবিন্দ গানামৃতৈঃ।
আনন্দাম্বুধি বর্দ্ধনৈক নিপুণৌ কৈবল্য নিস্তারকৌ
বন্দে রূপ সনাতনৌ রঘুযুগৌ শ্রীজীব গোপালকৌ ॥ ৩

ত্যক্ত্বা তূর্ণমশেষ মণ্ডলপতি শ্রেণীং সদা তুচ্ছবৎ
তদ্ত্বা দীনগণেশকৌ করুণয়া কৌপীন কন্থাশ্রিতৌ।
গোপীভাব রসামৃতাব্ধিলহরী কল্লোলমগ্নৌ মুহুর্
বন্দে রূপ সনাতনৌ রঘুযুগৌ শ্রীজীব গোপালকৌ ॥ ৪

কূজৎ- কোকিল-হংস-সারস-গণাকীর্ণে ময়ূরাকুলে
নানারত্ন-নিবদ্ধ মূল-বিটপ-শ্রীযুক্তবৃন্দাবনে।
রাধাকৃষ্ণমহর্নিশং প্রভজতৌ জীবার্থদৌ যৌ মুদা
বন্দে রূপ-সনাতনৌ রঘুযুগৌ শ্রীজীব-গোপালকৌ ॥ ৫

সংখ্যা পূর্বক-নাম-গান-নতিভিঃ কালাবসানীকৃতৌ
নিদ্রাহার-বিহারকাদি বিজিতৌ চাত্যন্তদীনৌ চ যৌ।
রাধাকৃষ্ণ-গুণস্মৃতের্মধুরিমানন্দেন সম্মোহিতৌ
বন্দে রূপ-সনাতনৌ রঘুযুগৌ শ্রীজীব-গোপালকৌ ॥ ৬

রাধাকুণ্ড-তটে কলিন্দ-তনয়া-তীরে চ বংশীবটে
প্রেমোন্মাদ-বশাদশেষ-দশয়া গ্রস্তৌ প্রমত্তৌ সদা।
গায়ন্তৌ চ সদা হরের্গুণবরং ভাবাভিভূতৌ মুদা
বন্দে রূপ-সনাতনৌ রঘুযুগৌ শ্রীজীব-গোপালকৌ ॥ ৭

হে রাধে! ব্রজদেবিকে চ ললিতে! হে নন্দসূনো! কুতঃ
শ্রীগোবর্ধন-কল্পপাদপ-তলে কালিন্দী-বন্যে কুতঃ।
ঘোষন্তাবিতি সর্বতো ব্রজপুরে খেদৈর্মহাবিহ্বলৌ
বন্দে রূপ-সনাতনৌ রঘুযুগৌ শ্রীজীব-গোপালকৌ ॥ ৮

শ্রীশ্রীনিবাস-শ্রীনিধির্ভক্তেরমূতৈঃ
প্রত্যাশিতঃ পঠতি যঃ সকৃদেব রম্যম্।
হিত্বাশু কর্মবিষয়াদিকমেতি তূর্ণ-
মানন্দতত্ত্বচরণমেব হি নন্দসূনোঃ ॥ ৯

ইতি শ্রীশ্রীষড়্গোস্বামী-গুণলেশ-সূচকাষ্টকং সম্পূর্ণম্ ॥

শ্রীশ্রীনিবাসাচার্য্য-প্রভু-কৃতং

৪। শ্রীশ্রীমন্নরহরি-ঠক্কুরাষ্টকম্ ৯।

প্রেমাধারং মধুর-বিকারং, শ্রীচৈতন্যাঙ্ঘ্রিজলজ-সারম্।
শ্রীখণ্ডাখ্যে বিহিত-নিবাসং, বন্দে শ্রীলং নরহরি-দাসম্ ॥
গান্ধর্ব্বাসদ্গীতমতিধীরং, শ্রীখণ্ডাঙ্কাঞ্চিত-সুশরীরম্।
বক্ষোদেশং সুখদ্রুকটিদেশং, বন্দে শ্রীলং নরহরি-দাসম্ ॥
প্রীতাহবানং সুললিতগানং, ধারান্নেত্রং সুপুলকিত-গাত্রম্।
নভোহাহস্যানন্দ-বিবশোষং, বন্দে শ্রীলং নরহরি-দাসম্ ॥ ৩
যস্য প্রাণ সদাসি মুকুন্দে, মুক্তহৃদপূর্ণিবা নাগর-শিখিপুচ্ছে
তং নিশ্বাসং সুরধুনিভাসং, বন্দে শ্রীলং নরহরি-দাসম্ ॥ ৪
বংশীগতমে নিহিত-নিজাত্মা, গৌরাঙ্গোহভুং সুখদ সুলকাঙ্গ
তং প্রিয়বং বিহিত-বিলাসং, বন্দে শ্রীলং নরহরি-দাসম্ ॥ ৫
গোপাদৌপে মদন-সমীপে, জাতঃ সুস্নেহঃ প্রীতিদিনান্তে
সদাভক্তে তং সরহবং, বন্দে শ্রীলং নরহরি-দাসম্ ॥ ৬
চৈতন্য মতমভিমণ্ডিত-ভক্তান্, নিত্যানন্দ-প্রভৃতি-সমেতান্।
সারঙ্গাদ্যং সুর-খণ্ডিত-শ্রেষ্ঠং, বন্দে শ্রীলং নরহরি-দাসম্ ॥ ৭
সংসারেস্মিন্ প্রেম-প্রকাশং, দৃষ্টা খ্যাতো হি মধুমতী যঃ।
তং প্রাণেশং প্রেমভরেশোভং, বন্দে শ্রীলং নরহরি-দাসম্ ॥ ৮

শ্রীতালপত্রনৃত্যং হাষ্টকং বৈষ্ণবানাং
পরিপঠতি সুধীর্যঃ শ্রদ্ধয়া যঃ সুধীরঃ।
নরহরি-রতিপাত্রং প্রেমভক্তিং লভেত
প্রকটিত-যুগলশ্রেষ্ঠে গৌরচন্দ্রে সমস্তে ॥ ৯

ইতি শ্রীশ্রীমন্নরহরি ঠক্কুরাষ্টকং সম্পূর্ণম্ ॥

—— oo ——

৫। শ্রীশ্রীনিবাসাচার্য্যপ্রভুকৃত পদাবলী

বদনচাঁদ কোন্,   কুঁদারে কুঁদিলে গো,
কেনা কুঁদিলে দুই আঁখি।
দেখিতে দেখিতে মোর,   পরাণ যেমন করে গো,
সেই সে পরাণ তার সাখী॥
রতন কাড়িয়া অতি,   যতন করিয়া গো,
কে না গাড়িয়া দিল কাণে।
মনের সহিতে মোর,   এ পাঁচ পরাণী গো,
যোগী হবে উহারি ধেয়ানে॥
অমিয়া মধুর বোল,   সুধা খানি খানি গো,
হাতের উপর নাহি পাড।
প্রতীত করিয়া যদি,   বিধাতা গড়িত গো,
ভাঙ্গিয়া ভাঙ্গিয়া উহা খাও॥
মদনফাঁদ ও না,   চূড়ার টালনি গো,
উহা না শিখিলা আইল কোথা।
এ বুকে ভরিয়া মুঞি,   উহা না দেখিনু গো
এ বাড় মরমে মোর বেথা॥
নাসিকার আগে দোলে,   এ গজ-মুকুতা গো,
সোনায় মণ্ডিত তার পাশে।
বিজুরী-জড়িত যেন   চাঁদের কলিকা গো
মেঘের আড়ালে থাকি হাসে॥
করভের কর জিনি,   বাহুর বলনি গো,
হিঙ্গুল-মণ্ডিত তার আগে।
যৌবন-বনের পাখী,   পিয়াসে মরয়ে গো,
উহার পরশ-রস মাগে॥

নাচিয়া ঠমকে যায়   রহিয়া রহিয়া চায়,
চলে যেন গজরাজ মাতা।
শ্রীনিবাস দাস কয়,   লখিলে লখিল নয়,
রূপসিন্ধু গঢ়ল বিধাতা॥

[রূপানুরাগে—পদকল্পতরু ৭৯০]

২। প্রেমক মঞ্জরী,   শুন গুণমঞ্জরি,
তুহুঁ সে সকল শুভদাই।
তোহারি গুণগণ,   চিন্তই অনুখন,
মঝু মন রহল বিকাই॥
হরি হরি কবে মোর শুভদিন হোয়।
কিশোরী-কিশোর-পদ,   সেবন সম্পদ,
তুয়া সনে মিলব মোয়॥ ধ্রু
হেরই কাতর জন,   তুয়া কৃপানিরীক্ষণ,
নিজ-গুণে পূরবি আশে।
তুহুঁ নব ঘন বিন্দু,   বিন্দু বরিখণ,
কো পূরব পিপাস-পিয়াসে॥
তুহুঁ সে কেবল গতি,   নিশ্চয় নিশ্চয় অতি,
মঝু মন ইহ অভিলাষে।
কহই কাতর ভাবে,   পুন পুন শ্রীনিবাসে,
করুণায় করু অবধানে॥

[প্রার্থনা—শ্রী ৩০৮২]

৩। তুহুঁ গুণমঞ্জরি,   রূপে গুণে আগরি,
মধুর মধুর গুণ-ধামা।
ব্রজনাগরবন্দিত,   প্রেমসেবা পরবন্ধ,
বরণ উজোরল তনু শ্যামা॥

কি কহব তুয়া যশ, দনুহুঁ সে তোহারি বশ,
হৃদয়ে নিশ্চয় মঝু জানে।
আপনা অনুগা করি, করুণা-কটাক্ষে হেরি,
সেবা-সম্পদ কর দানে॥
৭৯ হোই বামন-তনু, চাঁদ ধরিতে জনু
মঝু মন হেন অভিলাষে।
এ জন কৃপণ অতি, তুহুঁ সে কেবল গতি,
নিজ গুণে পূরবি আশে॥
সন্ধ্যা অঞ্জলি করি, দশনে হ তৃণ ধরি,
নিবেদহুঁ বারহি বারে।
শ্রীনিবাস দাস নামে, প্রেমসেবা ব্রজধামে,
প্রার্থহুঁ তুয়া পরিবারে॥

[প্রার্থনা— ঐ [illegible]]

৬। শ্রীনিবাসাচার্য্যকৃত-শ্লোকাঃ

শ্রীরঘুনন্দন-শাখানির্ণয়ে ঃ—

রোমাঞ্চিত-বিগ্রহো বিগলিতানন্দাশ্রুধৌতাননো
গঙ্গাজল-বিভাবনাভিরভিতো নির্ধূত-মাহাস্পৃহঃ।
ভক্তিপ্রেম-পরম্পরা-পরিচিতঃ সদ্যঃ সমুৎপদ্যতে
সোহয়ং শ্রীরঘুনন্দনো বিজয়তামানন্দ-কল্পদ্রুমঃ॥

'শ্রীখণ্ডের প্রাচীন বৈষ্ণব'-নামক গ্রন্থে—(৬৩ পৃঃ)

মালাচন্দন-সন্দানাদপ্রতঃ করুণাকরঃ।
বহুমানাস্পদং চক্রে গৌরাঙ্গস্তং মহাত্মনাম্॥
কীর্তনান্তে হরিদ্রাক্ত-দধিভাণ্ডস্য ভঞ্জনে।
স এবৈকোঽধিকারিত্বং লেভে গৌর-প্রসাদতঃ॥

নিত্যানন্দযুতেষু কীর্ত্তনবিধেরন্তে মহাপ্রেমতঃ
সাশ্চর্য্যেষু গণেষু সৎসু কৃপয়া গৌরাঙ্গদেবঃ স্বয়ম্ ।
চক্রে তং রঘুনন্দনং দধি-হরিদ্রাভা ভক্তাধিপং
তস্মাদানাকুলস্য তত্র কৃতিতা নোলম্বনীয়ঃ প্রভুঃ ॥

তত্র ৬৭-তম পদ্যে—

লোকানাং কলিকালঘোর-তিমিরৈরাচ্ছাদিতানাং ঘনা-
মাতঙ্গাল মহামহোৎসবকরো যঃ কৃষ্ণসংকীর্ত্তনে ।
ভক্তিভাগবতী যদুক্তিসুধয়া সংসারসমুত্তীর্যতে
সোহয়ং শ্রীরঘুনন্দনো নিজরতাংশাবতারো হরেঃ ॥

তত্র ৬৮ তম পদ্যে—

শ্রীগৌরাঙ্গহরেরনন্যসদৃশং প্রেমস্বরূপাস্পদং
সর্ব্বাশ্চর্য্যকটীকৃতোঽতিবিকলসানন্দং স্বয়ং চেতসা ।
শ্রীরাধাব্রজনাগরেন্দ্র পরমপ্রেম স্বরূপাপ্তী তং
বন্দে শ্রীরঘুনন্দনং প্রভুবরং চৈতন্যভাবোদ্দীপনম্ ॥

৭। শ্রীশ্রীনিবাসাচার্য্য-প্রভোঃ শাখাঃ

শ্রীদাস গোকুলানন্দো শ্যামদাসস্তথৈব চ ।
শ্রীব্যাসঃ শ্রীলগোবিন্দঃ শ্রীরামচরণস্তথা ॥
ষট্ চক্রবর্ত্তিনঃ খ্যাতা ভক্ত্যাখ্যানুশীলনাঃ ।
নিস্তারিতাখিলজনাঃ কৃষ্ণচৈতন্যসেবনাঃ ॥
শ্রীরামচন্দ্র গোবিন্দ কর্ণপূর নৃসিংহকাঃ ।
ভগবান্ বল্লবীদাসো গোপীরমণ গোকুলৌ ॥
কবিরাজ ইতি খ্যাতা [illegible] ।

চট্টরাজ ইতি খ্যাতো রামকৃষ্ণাভিধানকঃ ।
কুমুদানন্দ সংজ্ঞকঃ কুলরাজঃ প্রকীর্ত্তিতঃ ॥
শ্রীরাধাবল্লভঃ খ্যাতো মণ্ডলঃ পরিকীর্ত্তিতঃ ।
চক্রবর্ত্তী সমাখ্যাতো জয়রামাভিধানকঃ ॥
শ্রীরূপঘটকশ্চাপি সর্ব্ববিখ্যাত এব চ ।
শ্রীমৎ ঠাকুরদাসাখ্যো ঠাকুরঃ পরিকীর্ত্তিতঃ ॥
মহারাজাধিরাজঃ শ্রীবীরহাম্বীর সিংহকঃ ।
মল্লভূপ কুলোৎপন্নো ভক্তিমান্ সুপ্রতাপবান্ ॥
এবমেতৌ কবীন্দ্রাদ্যা দ্বাদশৈতে ধরামরাঃ ।
মহাভাগবতশ্রেষ্ঠাঃ শাখা ইত্যেকবিংশতিঃ ॥

[প্রেমবিলাসে ১৮]

শ্রীশ্রীনিবাসাচার্য্য-বিষয়ক-শ্লোকাঃ

১। শ্রীমন্নরোত্তম ঠাকুরকৃতঃ (নরোত্তমবিলাসে ৩৩-তম পৃষ্ঠে) ঃ

শ্রীরূপ সনাতনোদিত-ভক্তিনিরূপণরীতি প্রাজ্ঞ-
প্রাজ্ঞেশাগ্রহং নিজনোচিত শক্তিপরশ্রী শ্রীশ্রীনিবাসাখ্যা ।
যে শক্তী প্রকটীকৃতে করুণয়া ক্ষোণীতলে যেন সঃ
শ্রীচৈতন্যদয়ানিধির্মম কদা দৃগ্গোচরং যাস্যতি ॥

২। শ্রীমদ্গোবিন্দদাস ঠাকুরকৃতঃ (কর্ণানন্দে ৮ম-পৃষ্ঠে) ঃ—

শ্রীচৈতন্য পদারবিন্দ মধুপো গোপালভট্ট প্রভুঃ
শ্রীমাংস্তস্য পদাম্বুজস্য মধুলিট্ শ্রীশ্রীনিবাসাহ্বয়ঃ ।
আচার্য্যপ্রভু সংজ্ঞকোঽখিলজনৈঃ সর্ব্বৈর্য্য নীবৃৎস্থ যঃ
[illegible]ব্যতোখ্যাবঃ ॥

৩। আদেশামৃত-স্তোত্রম্ *

শুদ্ধং সাত্বততত্ত্বমত্র ভগবান্ স্বভাবাশক্ত্যৈকয়া
শ্রীরূপাভিধয়া প্রকাশয়িতুমপ্যেতং স্বশক্ত্যানয়া ।
শ্রীমদ্বিপ্রকুলেঽধুনা১ প্রকটয়ন্ শ্রীশ্রীনিবাসাভিধং
লীলাসম্বরণং স্বয়ঞ্চ২ বিদধে নীলাচলে শ্রীপ্রভুঃ ॥ ১

গন্তুং শ্রীপুরুষোত্তমং কৃতমতিঃ শ্রীশ্রীনিবাসঃ প্রভু-
শ্চৈতন্যস্য কৃপাম্বুধের্জনমুখাচ্ছ্রুত্বা তিরোধানতাম্ ।
দুঃখোদধেঃ স মুহুর্মুহুর্মূর্চ্ছিতং৩ ভগবান্ দৃষ্টবানথ ভক্তবাধা-
মাশ্বাসয়ন্নতিশয়ং দয়ামতিরনুং৪ স্বপ্নে সমাদিষ্টবান্ ॥ ২

ত্বং তাবজ্জনিতো মমৈব নিজয়া শক্ত্যাতি তুর্ণং ব্রজ
শ্রীবৃন্দাবনমত্র সন্তি কৃতিনঃ শ্রীরূপজীবাদয়ঃ ।
আদিষ্টাঃ পুরতস্ত্বমী ত্বয়ি ময়া তদ্গ্রন্থরাশ্যর্পণে
নিঃসন্দেহতয়া গৃহাণ তদমূন্ গৌড়ে জনান্ শিক্ষয় ॥ ৩

ইত্যাদেশমবাপ্য তদ্ভগবতঃ শ্রীশ্রীনিবাসঃ পুনঃ
শ্রীবৃন্দাবন-কুঞ্জপুঞ্জ-সুষমাং দ্রষ্টুং৫ মনঃ সন্দধে ।
শ্রুত্বাথাপ্রকটত্বমত্রভবতাং গোস্বামিনাং শোকতো
হা হেত্যাকুলচিত্তপুষ্করপতন্নাগাত্ততো মূর্চ্ছিতঃ ॥ ৪

স্বপ্নে শ্রীলসনাতনোঽপি সহ তৈঃ শ্রীরূপনামাদিভিঃ
প্রাদিশন্ন হি তে বিষাদ-সময়ো গোপাল-ভট্টোঽস্তি যৎ ।
তস্মাদস্য করং গৃহাণ সকলান্ গ্রন্থাংস্তথাস্মৎকৃতান্
নীত্বা গৌড়ভুবং প্রচারয় মতং স্বং বৈষ্ণবাঞ্ছিক্ষয় ॥ ৫

---

* অমিত-বিজ্ঞাপিত-প্রাচীনলেখতঃ সমুদ্ধৃতম্

১। কুলেঽমলে, ২। স্বয়ং স, ৩। মূর্চ্ছমোহ, ৪। রসঃ, ৫। সুষমাদ্দৃষ্টৌ,

ইত্যাদেশ-রসামৃতাপ্লুতমনা বৃন্দাবনান্তর্গতো
গ্রন্থাদায় সমস্তভক্তমখিলং গোপালভট্টপ্রভোঃ।
তদ্‌গ্রন্থৌঘ-বিচার-চারুচতুরঃ সংপ্রেষিতঃ শ্রীমতা
তেন প্রেমভরেণ গৌড়গমনে তৎ প্রত্যুবাচোৎসুকঃ ॥ ৬

রাধাকৃষ্ণ-পদারবিন্দযুগল-প্রাপ্তঃ প্রসাদেন তে
মৎসংকল্পগতং ভবিষ্যতি যদি প্রায়ঃ প্রয়াস্যাম্যহম্।
নোচেদ্ যানি বিমথ্য মে তদখিলং শ্রুত্বাতিহর্ষোদয়া-
ত্তে গোস্বামিবরাস্তদর্থমুদগুর্গোবিন্দ-সান্নিধ্যকম্ ॥ ৭

শ্রীগোবিন্দ-পদারবিন্দ-যুগলধ্যানৈকতানাত্মনা-
মাদেশাৎ সফলো ভবিষ্যতি তথা শ্রীশ্রীনিবাসাশ্রয়াৎ।
এতদ্দৈবতয়া সমাদরবশান্নিষ্পাদিতঃ সাম্প্রতং
তস্মাদ্ গৌড়ভুবং প্রয়াতু ভবতাং কিং চিন্তয়াচানয়া ॥ ৮

শ্রীগোবিন্দ-মুখোদিতং নিগদিতমিদং পীত্বা নিদেশামৃতং
তং গোস্বামিগণং প্রসন্নমনসং নত্বা পরিক্রম্য চ।
কৃত্বা প্রাঞ্জলিকং প্রণম্য কুতুকী নির্গত্য গৌড়ীশতো
নানালোকনিধিঃ সদা বিজয়তে শ্রীশ্রীনিবাসঃ প্রভুঃ ॥

ইত্যাদেশামৃতস্তোত্রং যঃ পঠেচ্ছৃণুয়াচ্চ যঃ।
ভবেত্তস্য পদে বাসঃ শ্রীনিবাস-পদোদয়োঃ ॥ ১০

ইতি শ্রীশ্রীকরুণানিধি-চট্টরাজ-ঠক্কুর-গোস্বামি-বিরচিতম্
শ্রীআদেশামৃতস্তোত্রমাবির্ভাবরূপারম্ভনিরূপণং

সমাপ্তম্ *

---

* [illegible] ১০৮—১১৬ পৃষ্ঠায় দ্রষ্টব্য।

৪। শ্রীশ্রীনিবাসাচার্য্যপ্রভোঃ স্তবাষ্টকম্ *

কম্পিত-ঘন-গাত্রঃ সাত্ত্বিকৈঃ শোভমানঃ
জিতসিতকনকাঙ্গঃ পদ্মনেত্রোরুবক্ষাঃ ।
প্রভুগীতকমালৈর্ভাল-কণ্ঠোল্লসন্ যঃ
স্ফুরতু স হৃদয়ে শ্রীশ্রীনিবাস প্রভুর্নঃ ॥ ১

শ্রীচৈতন্য-তরুশাখী রামচন্দ্রাদিশাখঃ
কীর্তন-বলরামাদ্যোপশাখাশ্চ যস্য ।
নবরসকুসুমধারী চোজ্জ্বলং সৎফলং যঃ
স্ফুরতু স হৃদয়ে শ্রীশ্রীনিবাস প্রভুর্নঃ ॥ ২

বিদিত ভজন-ভক্তো ভক্তসেবী জিতাত্মা
মধুর মধুর-রাধাকৃষ্ণকৃষ্ণেতি রৌতি ।
সদাশা হরিলীলাগাননৃত্যাদি কুর্বন্
স্ফুরতু স হৃদয়ে শ্রীশ্রীনিবাসপ্রভুর্নঃ ॥ ৩

জগতি বিবিধভক্তি-গ্রন্থবিস্তারহেতো-
র্যশ্চ পতিতজনেভ্যো গৌরকৃষ্ণস্য শক্ত্যা ।
সকলগুণনিধানঃ প্রেমরূপাবতীর্ণঃ
স্ফুরতু স হৃদয়ে শ্রীশ্রীনিবাসপ্রভুর্নঃ ॥ ৪

ব্রজপুরীগতগ্রন্থং গৌড়মানীয় যত্নৈঃ
প্রচরিত জনমাত্রং শুদ্ধসিদ্ধান্তসারম্ ।
সদয়হৃদয়ভাবো জীবদুঃখেন দুঃখী
স্ফুরতু স হৃদয়ে শ্রীশ্রীনিবাসপ্রভুর্নঃ ॥ ৫

---

* প্রাচীনলেখকঃ সংগৃহীতম্ । ১ । 'বিধান-প্রেম' ইত্যাদি

অতুল-মধুর-রাধাকৃষ্ণয়োঃ প্রেমসেবাং
নিখিল-নিগম-গূঢ়াং ব্রহ্মরুদ্রাদ্যগম্যাম্ ।
সতত-নিজগণেভ্যঃ স্বাদয়ন্তং তনোতি
স্ফুরতু স হৃদয়ে শ্রীশ্রীনিবাসপ্রভুর্নঃ ॥ ৬

নিভৃত-কারুণ্যপাত্রো গৌরকৃষ্ণপ্রিয়াণাং
সুখদ-বিধি-বিরাগী জ্ঞানকর্মাদিরিক্তঃ ।
সদাবিরহিতমানো লোকমানপ্রদো যঃ
স্ফুরতু স হৃদয়ে শ্রীশ্রীনিবাসপ্রভুর্নঃ ॥ ৭

নিধুবন মধুরে হে শ্রীলগোবর্দ্ধনাদ্রে
ব্রজপতিসদন সুরভীকুণ্ড হে শ্যামকুণ্ড !
কমল-নয়ন রাধাকৃষ্ণ রাধেতি গায়ন্
স্ফুরতু স হৃদয়ে শ্রীশ্রীনিবাসপ্রভুর্নঃ ॥ ৮

য ইহ বিমলবুদ্ধিঃ প্রেমভক্তিঃ স্ফুরন্তং
পঠতি সুজনবৃন্দোঽষ্টকং কৃষ্ণচেতাঃ ।
কলয়তি সদানুসরণমাত্রে স নিত্যং
স সপদি রসিক [illegible] রাধানাথাঙ্ঘ্রিপদ্মম্ ॥ ৯

ইতি শ্রীশ্রীনিবাসাচার্যপ্রভোঃ স্তবাষ্টকম্

৫। শ্রীশ্রীনিবাসাচার্যপ্রভোরষ্টকম্

নিকষ-কাঞ্চন-রুচি-গৌরদেহং
আলোকিতে-ভাব-ভুজঙ্গম্ দেহম্ ।
অকুঞ্চিত-কোমল-কুন্তল-পাশং
[illegible]

উন্মদ-লোচন-খঞ্জন-যুগং
চঞ্চল প্রেম অবধি-অনুগম্ ।
নাসা-শিখরোজিত-তিলকুসুমং
তং প্রণমামি চ শ্রীশ্রীনিবাসম্ ॥ ২

কটিতটে জিনি অতি মধ্যশোভিতং
স্ফুটিত অনঙ্গে চম্পক ভূষিতম্ ।
করতল অরুণ কিরণোজ্জ্বিতং
তং প্রণমামি চ শ্রীশ্রীনিবাসম্ ॥ ৩

কম্বুকণ্ঠে হেমহার সুললিতং
কনককদলী সম ভুজ শোভিতম্ ।
কোমলতাজিনি বৃত-নাভিদেশং
তং প্রণমামি চ শ্রীশ্রীনিবাসম্ ॥ ৪

সততং জিনি উজ্জ্বল চন্দনং
চঞ্চল চারু চরণাতিসুচিরম্ ।
মালিনী চলিতে মৃদু মৃদু হাসং
তং প্রণমামি চ শ্রীশ্রীনিবাসম্ ॥ ৫

আজানুলম্বিত ভুজ সুন্দর দেহং
নিগালিত মধুর ভাব বিদেহম্ ।
অলকা নির্মিত গন্ধমন্দারং
তং প্রণমামি চ শ্রীশ্রীনিবাসম্ ॥ ৬

জগদুদ্ধারণ ক্রীড়িত বিহারং
গোরা চাঁদ হেন গুণাতি সুধীরম্ ।

নিরবধি কীর্তিং রাধাকৃষ্ণপ্রকাশং
সঙ্গে সহচর বৃন্দাবন-বাসম্ ।
জীবে দয়াময় করুণাবগাহং
তং প্রণমামি চ শ্রীশ্রীনিবাসম্ ॥৮

ইতি শ্রীরামচন্দ্র কবিরাজ-বিরচিতং
শ্রীশ্রীনিবাসাচার্যপ্রভোরষ্টকং সম্পূর্ণম্ *

—*—

৮। শ্রীশ্রীনিবাসাচার্যপাদানাং গুণলেশ-সূচকম্

শ্রীশ্রীকৃষ্ণচৈতন্যচন্দ্রায় নমঃ

আবির্ভূয় কুলে দ্বিজেন্দ্র-ভবনে রাঢ়ীয়-ঘণ্টেশ্বরৌ
নানাশাস্ত্র-প্রবিজ্ঞ নির্জিনিয়া বাল্যে বিজেতা দিশম্ ।
নীলাদ্রৌ প্রকটং শচীসুত-পদং শ্রুত্বা ত্যজন্ সর্বকং
সোঽয়ং মে করুণা-নিধির্বিজয়তে শ্রীশ্রীনিবাসঃ প্রভুঃ ॥ ১

গচ্ছন্ শ্রীপুরুষোত্তমং পথি প্রভুচৈতন্য-সঙ্গোপনং (?)
মূর্চ্ছীভূয় কচান্ স্বলুনন্ স্বশিরসো খাতং দদর্শাধিকৃতম ।
তৎপাদং হৃদি সংনিধায় গতবান্ নীলাচলং যঃ স্বয়ং
সোঽয়ং মে করুণানিধির্বিজয়তে শ্রীশ্রীনিবাসঃ প্রভুঃ ॥ ২

তত্রস্থং জরঠং গদাধরযুতং শ্রীপণ্ডিতং দৃষ্টবান্
তচ্চক্ষুঃ পিহিতং তদশ্রু পিহিতাং বৈয়াসকীং সংহিতাম্ ।
দৃষ্ট্বা চাধ্যয়নায় বোচিতমতো সন্দিগ্ধবান্ যঃ স্বয়ং
সোঽয়ং মে করুণা-নিধির্বিজয়তে শ্রীশ্রীনিবাসঃ প্রভুঃ ॥ ৩

---

* গৌড়-দেবভাষাভ্যাং লিখিতমেতৎ ।

(ক) বরাহ-নগর শ্রীগৌরাঙ্গগ্রন্থমন্দিরতঃ প্রাপ্তা করলিপিঃ জীর্ণা ত্রুটিতা ভ্রান্তি-বিজড়িতা চ । (খ) শ্রীবৃন্দাবনতঃ শ্রীমন্নন্দকিশোর-গোস্বামিনা

তৎপাদেঽকস্মাৎ স্বকনষ্টিমতং প্রস্তাবদং সোঽচিরাৎ
'মং সর্বং ভবত সুচারু-মতিনা দৃষ্টং প্রতেষ্যাপরম্ ।
তস্মাদ্ গচ্ছ গদাধরং প্রিয়তমং চৈতন্যচন্দ্রস্য বৈ'
সোঽয়ং মে করুণা-নিধির্বিজয়তে শ্রীশ্রীনিবাসঃ প্রভুঃ ॥ ৪

তৎপাদসংভবনা সত্বর-মতির্নীত্বা তদীয়াং লিপিং
নীলাদ্রেরপি নায়কস্য চরণং দৃষ্ট্বা তথা প্রার্থয়ন্ ।
প্রাপ্তৌ শ্রীচরণৌ গদাধর প্রভোর্দত্বা লিপিঞ্চানমৎ
সোঽয়ং মে করুণা নিধির্বিজয়তে শ্রীশ্রীনিবাসঃ প্রভুঃ ॥ ৫

সর্বং বর্ণনয়া কৃতং তদবদৎ শ্রীপাদপদ্মে প্রভো-
রুক্তং স স্যাত্তহীন দুর্বলমতির্দুঃখেন দগ্ধায়তে ।
তস্মাদ্গচ্ছ ব্রজং সনাতন যুতং রূপং প্রপদ্যো ভবেঃ
সোঽয়ং মে করুণা নিধির্বিজয়তে শ্রীশ্রীনিবাসঃ প্রভুঃ ॥ ৬

তস্যাজ্ঞাং বিনয়েন মস্তক ধৃত্বা পাদৌ কৃত্বা মস্তকে
কৃত্বা চৈব প্রদক্ষিণীং ধৃতপদো যস্য প্রভুঃ প্রীতিমান্ ।
সম্পুটং শিরসি প্রদায় সুকরং দদ্যা কথা চাশিষং
সোঽয়ং মে করুণা নিধির্বিজয়তে শ্রীশ্রীনিবাসঃ প্রভুঃ ॥ ৭

আসায়াং নিহিতং সমং প্রিয়তয়া প্রেম্ণং স্বভাবং সুখং
লব্ধা যো বিবিধার্ত সাগরজলে ... সদা প্লাবিতে ।
কৃষ্ণ ... হৃদি সংগতঃ স্ফুরতু তে চৈতন্যচন্দ্রঃ স্বয়ং
সোঽয়ং মে করুণা নিধির্বিজয়তে শ্রীশ্রীনিবাসঃ প্রভুঃ ॥ ৮

নত্বা তচ্চরণং পুনঃপুনরয়ং কায়েন বাচা হৃদা
ভক্ত্যা সংস্থিতমদ্বদীয় চরণোপান্তেঽহমিচ্ছাগ্রণী ।
উষ্মায় প্রীত গোকুলং হৃদি গতং বাক্যং মনো যো দধৎ
সোঽয়ং মে করুণা নিধির্বিজয়তে শ্রীশ্রীনিবাসঃ প্রভুঃ ॥ ৯

১ । রূপেণ যদ্যৈ প্রভুঃ (ক, খ); ২ । প্রেমণা (ক, খ)।

গচ্ছন্ যঃ পথি খণ্ড-সংজ্ঞ-নগরে চৈতন্যচন্দ্র-প্রিয়ং
নত্বা শ্রীসরকারঠক্কুরবরং নীত্বা তদাজ্ঞাং তথা ।
তৎপশ্চাদ্রঘুনন্দনস্য চরণং নত্বা গতো যঃ স্মরন্১
সোঽয়ং মে করুণা-নিধির্বিজয়তে শ্রীশ্রীনিবাসঃ প্রভু ॥ ১০
প্রীত্যা যো মনসঃ প্রয়াণ-সময়ে শ্রীবীরলোকেঽগমৎ
তত্র শ্রীঅভিরাম ঠক্কুরবরং প্রেম্ণা ববন্দে স্বয়ম্ ।
সর্বং তচ্চরণে নিবেদ্য চ বসন্ দ্বারে বাহঃসংজ্ঞকে
সোঽয়ং মে করুণা-নিধির্বিজয়তে শ্রীশ্রীনিবাসঃ প্রভুঃ ॥ ১১
সংবেশায় তৃণং দশার্ধ-বটিকং যস্যান্নিসন্ধ্যা তথা
রম্ভায়াঃ শতখণ্ডসংস্যূতদলং বৈরাগ্য-নির্ণীতয়ে ।
এতেনৈব সমুদ্বিজেদিতি ধিয়া যস্মৈ হাহং দাপয়েৎ
সোঽয়ং মে করুণা নিধির্বিজয়তে শ্রীশ্রীনিবাসঃ প্রভুঃ ॥ ১২
তল্লব্ধ্বা মনসঃ সুখেন পয়সা সংসিচ্য তৎ পত্রকং
সজ্জীকৃত্য বটেন লবণাদ্যো মস্তকেনানাহরৎ ।
দুর্যে পাপি বটস্য চন্দ্রিকমলে নূনং তু যস্ত্যাহিকীং
সোঽয়ং মে করুণা নিধির্বিজয়তে শ্রীশ্রীনিবাসঃ প্রভুঃ ॥ ১৩
তৎ শ্রুত্বা মনুজাদয়ং সমুচিতং পাত্রং মুরারেঃ পুনঃ
স তন্তুত্বীদমং বিলোক্য কৃপয়া দাস্যে বরং বাঞ্ছিতম্ ।
ইত্যুক্ত্বা নিজপাদসীমনি ধ্রুবং নীত্বাদদৎ যং মুদা
সোঽয়ং মে করুণানির্বিজয়তে শ্রীশ্রীনিবাসঃ প্রভু ॥ ১৪
জানে ত্বং বৃণুষে কুবের-সদৃশীমৃদ্ধিং কিমন্যং বরং
গানং বা জনমোহনং কিমথবা রূপং জগন্মোহনম্ ।
নাট্যং বাপ্সরসং ভুবো নৃপতিতামেতন্মুদা যং বদন্
সোঽয়ং মে করুণা-নিধির্বিজয়তে শ্রীশ্রীনিবাসঃ প্রভুঃ ॥ ১৫

১। [illegible] (ক) ।   ২। [illegible] (খ) ।

শ্রুত্বৈতচ্চরিতং মনোগত-বরং তৎপাদমূলে বসন্
শুদ্ধা শ্রীমধুসূদনস্য প্রিয়য়া রাগানুগাখ্যা তু যা ।
তাং ভক্তিং ময়ি দেহি চাশুকৃপয়া হৈত্যাদিকং যো বদন্
সোঽয়ং মে করুণা-নিধির্বিজয়তে শ্রীশ্রীনিবাসঃ প্রভু ॥ ১৬
স্মিত্বা বাকথয়ন্মুদা হি ভবতা প্রাপ্তং ন তাবৎ প্রিয়া
ইত্যুক্ত্বা জয়মঙ্গলাং করুণয়া চানীয় স্বীয়াং কথাম্ ।
স্পৃষ্ট্বা তৎপদুষি প্রহর্ষ-বদনো যস্মৈ জিতং চাবদৎ
সোঽয়ং মে করুণা-নিধির্বিজয়তে শ্রীশ্রীনিবাসঃ প্রভুঃ ॥ ১৭
এতস্মিন্ সময়ে প্রহর্ষবদনো নত্বাহবদস্মৈ প্রভো !
বাঞ্ছা যা হৃদি সঙ্গতা তদধুনা সিদ্ধিং গতা নিশ্চয়ম্ ।
আজ্ঞাং দেহি ময়ি ব্রজায় গমনে চোক্ত্বা প্রণম্যাব্রজৎ
সোঽয়ং মে করুণা-নিধির্বিজয়তে শ্রীশ্রীনিবাসঃ প্রভুঃ ॥ ১৮
কৃত্বা যো হৃদি পাদপদ্মযুগোলং শ্রীরূপ-গোস্বামিনঃ
জ্যেষ্ঠস্য সনাতনস্য চ মুদা গচ্ছন্ ব্রজং সত্বরম্ ।
শ্রুত্বা শ্রীমথুরাদ-গাম্নি নগরে তদ্গোপনং মোহপতৎ
সোঽয়ং মে করুণানিধির্বিজয়তে শ্রীশ্রীনিবাসঃ প্রভুঃ ॥ ১৯
হা হা রূপঃ কুতো গতঃ ক্ব গতবান্ হা হা তদীয়াগ্রজো
খিন্নো মে জীবনেত্রয়োরপি বিনা শ্রীপাদপদ্মেক্ষণম্ ।
যাতস্তদ্বাং কুল-ধাতিনং ধিগিতি বশ্চাশ্রুবা (?) ভুবং সিঞ্চয়ন্
সোঽয়ং মে করুণানিধির্বিজয়তে শ্রীশ্রীনিবাসঃ প্রভুঃ ॥ ২০
ভূয়ো ভূয় ইতি ব্রুবন্ পুনরয়মুত্থায় শীঘ্রং পতন্
কিং মে কারয়িতা বৃথা তনুভৃতো বৃন্দাবনোপেক্ষণম্ ।
তস্মাদ্যো গমনং ব্রজায় মনসা নিশ্চীয় বৈমুখ্যকৃৎ
সোঽয়ং মে করুণা-নিধির্বিজয়তে শ্রীশ্রীনিবাসঃ

বৃন্দাখ্যে বিপিনে সনাতন-প্রভুঃ শ্রীরূপ-সংজ্ঞ-প্রভু-
নীত্বা তু ত্বরয়া শিশুং কৃতমীতং শ্রীজীবগোস্বামিনম্ ।
কালিন্দ্যাঃ সলিলে তদীয়কতনুং শুদ্ধাং সুদাস্নাপয়ন্
শক্তিং তস্য দদৌ স্বকীয়-কৃপয়া সঞ্চারয়িত্বাবদৎ ॥ ২২
'বৎস ! ত্বং শৃণু মদ্বচো ব্রজভুবি হি স্থাপিতো হেতুনা
চানেনাপি কুরুষ্ব বাল-সরলাং টীকাং মদীয়স্য চ ।
গ্রন্থস্যাপি তথা মুরারি-পদয়োঃ সদ্ভক্তিকাং স্থাপয়ন্
পাষণ্ডস্য নিবারণং কুরু তথা গোবিন্দ-সং-সেবনম্' ॥ ২৩
শ্রুত্বৈতৎ প্রভু-পাদপদ্ম-যুগলে সংন্যাসিতশ্চাবদৎ
শ্রীজীবোঽপি শিশুস্ত্বহং দ্বিপদেনরয়ং জীবস্তথাল্পা মতিঃ ।
কা শক্তির্মম নাথ ! কর্মসু তথা চৈতেষু সঙ্গী ক্ব বা
আজ্ঞায়াঃ প্রতিপালনে বিমলধীঃ সঙ্গী ত্বয়া দীয়তাম্' ॥ ২৪
শ্রুত্বা তদ্বচনং বিভাব্য মনসা শ্রীরূপসংজ্ঞঃ প্রভু-
রপ্যেবং চাকথয়ৎ 'শৃণুষ্ব ভবতঃ সঙ্গী ময়া দীয়তে ।
গৌড়াৎ কোঽপি দ্বিজাত্মজঃ কৃশতনুর্বৈশাখমাসেঽশকে
বিদ্যোদ্যোগং ভাবিনি মাথুরেঽপি চ তথা গন্তা স তে সঙ্গকঃ' ॥ ২৫
এতদেবং কথিতং পুরা ব্রজভুবি শ্রীরূপগোস্বামিনা
কৃত্বা তস্মাদপি প্রতীক্ষা গমনং কুঞ্জাচ্চ বৃন্দাবনে ।
শ্রীজীবেন তথা স্থিতেন প্রহিতৈর্দূতৈস্তু যোঽহ দৃশ্যতে
সোঽয়ং মে করুণা-নিধির্বিজয়তে শ্রীশ্রীনিবাসঃ প্রভুঃ ॥ ২৬
সর্বং তৎ কথিতং জনৈঃ পথি শ্রুতং গোস্বামি-বাক্যন্তু যৎ
শ্রুত্বা লুপ্তমতির্ব্রজায় গমনে শীঘ্রং মনঃ সন্দধে ।
শুশ্রাব শ্রুত্বা জন্মতলে প্রকটিনং শ্রীভট্ট গোস্বামিনং
[illegible]

ত্যক্ত্বা পুলিনং কালিন্দ-দুহিতুঃ স্নাত্বা ব্রজে স ত্বর-
দণ্ডাঙ্গ-প্রণিপাত-সঙ্গমকরোদ্ভক্ত্যা প্রপশ্যান্ দিশম্১ ।
সিক্তস্তেত্রজলৈঃ স্বকীয়-বপুষং নীপ-প্রমূলে বসন্২
সোঽয়ং মে করুণানিধির্বিজয়তে শ্রীশ্রীনিবাসঃ প্রভুঃ ॥ ২৮

ক্ব (?) বৃক্ষে শিখিনং ক্ব চ ক্ব চ শুকং কাস্মিংস্তথা শারিকাং
ক্ব (?) বৃক্ষে চ কপোতকং ক্ব চ অলিং, কুত্রাপি সংকোকিলম্ ।
দাত্যুহং ক্ব চ চাতকং ক্ব চ তথা পশ্যংশ্চকোরং মুদা
সোঽয়ং মে করুণা-নিধির্বিজয়তে শ্রীশ্রীনিবাসঃ প্রভুঃ ॥ ২৯

ক্ব (?) পুষ্পং বিবিধং ক্ব কল্পতরুকং বেদীং ক্ব রত্নান্বিতাং
কুঞ্জং ক্বাপি মনোহরং ক্ব পুলিনং কুত্রাপি দিব্যং সরঃ ।
পদ্মং কুত্র ক্ব চোৎপলং ক্ব চ তথা পশ্যংশ্চ কহ্লারকং
সোঽয়ং মে করুণা-নিধির্বিজয়তে শ্রীশ্রীনিবাসঃ প্রভুঃ ॥ ৩০

ছায়াং কুত্র দিবাস্বিতাং ক্ব চ পুরং শ্রীকৃষ্ণতত্ত্বা যুতাং
ক্ব (?) বাসং ব্রজবাসিনাং ক্ব চ তথা গোস্বামিবর্গালয়ম্ ।
কুত্রাপি মণিকুট্টিমং বিমলকং দৃষ্ট্বা প্রহৃষ্টস্তু যঃ
সোঽয়ং মে করুণানিধির্বিজয়তে শ্রীশ্রীনিবাসঃ প্রভুঃ ॥ ৩১

কৌপীনং দধতং বহির্বসনকং মালাং তুলস্যা মুদা
রাধাকুণ্ডভুবাঽ বিধায় তিলকং গাত্রেষু নামাক্ষরম্ ।
গ্রন্থে নেত্রযুগং মনশ্চ ভুজয়োঃ সল্লেখনীপত্রকং
চানন্দেন সদোর্ণকাসনবরে তিষ্ঠং তদা বৈষ্ণবৈঃ ॥ ৩২

গোবিন্দেন পুরা পুরায় গমনারম্ভে তু যো যো যথা
দৃষ্টোঽদ্যাপি তথৈব গোকুলপুরে লোকা বসন্ত্যত্র তেঽ ।
কিন্ত্বেষ্বঃ কিল নীপ-ডিম্ভ-দিবদলৈঃ ফুল্লৈঃ প্রবদ্ধৈঃ কথং
নো জানে কথয়ন্তু বৈষ্ণব-গণাশ্চেতীতাহো বাদিনম্ ॥ ৩৩

---

১ । পশ্যান্ দিশং বৈদিশং (খ), ২ । প্রমূলৈঃ সমং (খ) ;

কদেহস্মিন্নিকটে মুদা পরিগতঃ শ্রীজীবগোস্বামিনং
দৃষ্ট্বা তন্মুখতো বচঃ প্রতি গতিং শ্রুত্বা বভাষে তু যঃ।
'গোস্বামিন্! শৃণু মদ্বচস্তব বচঃ[1] সিদ্ধান্তরূপং ত্বিদং'
সোঽয়ং মে করুণা-নিধির্বিজয়তে শ্রীশ্রীনিবাসঃ প্রভুঃ ॥ ৩৪

'গোবিন্দস্য মনোগতং ব্রজগতং ন হ্রাসবৃদ্ধিক্ষমং
নেতুং কালসমুত্রে কারণবরং গোবিন্দবাঙ্মানসম্।
কিঞ্চিত্ত্বমং প্রিয়নীপকং প্রতি মনঃ স্ফুল্লেতি ? তৎ যোঽবদৎ
সোঽয়ং মে করুণানিধির্বিজয়তে শ্রীশ্রীনিবাসঃ প্রভুঃ ॥ ৩৫

এবং শ্রুত্বা বচনং হি তস্য কথিতং সন্দেহ-ভেত্তোত্তম-[2]
কেনেদানীমিতি সম্মুখে স্মিতিকৃতং দৃষ্টৈব হৃষ্টঃ প্রভুঃ।
দৃষ্টেস্তৎ কথিতং স্বয়ং স চ বরগানেতুমেনং গতঃ
সোঽয়ং মে করুণা-নিধির্বিজয়তে শ্রীশ্রীনিবাসঃ প্রভুঃ ॥ ৩৬

উত্থায় ত্বরয়া সসম্ভ্রম-ধিয়া চালিঙ্গ্য গাঢ়ং মুদা
প্রেম্ণানীয় তথা স্বকাসনবরে[3] বংভাশিষ্ট বৃত্তান্তকম্।
শ্রীরূপেণ পুরা যথা হ্যভিহিতং তত্তত্তু যত্নৈ স্বয়ং
সোঽয়ং মে করুণা-নিধির্বিজয়তে শ্রীশ্রীনিবাসঃ প্রভুঃ ॥ ৩৭

আচার্যস্ত্বপি স্বয়া করুণয়া সন্দেহভেদঃ কৃতঃ[4]
তস্মাচ্চেত উক্ত্বা মুদা শৃণু বচো হ্যাচার্যনামা ভবান্।
ইত্থং প্রাহ পুনঃ পুনঃ প্রতিজনান্ সর্বৈক্ষবান্ যৎকৃতে
সোঽয়ং মে করুণানিধির্বিজয়তে শ্রীশ্রীনিবাসঃ প্রভুঃ ॥ ৩৮

১। মদ্বচঃ মুনীহৃতং (ক); ২। সন্দেহ-ছেদক্রমে (ক, খ);
৩। স্বকীয়াসনবরে (ক, খ); ৪। ত্বং মে হ্যাচার্য্য-কার্য্যং
[illegible] (ক, খ); ৫। তেন (ক, খ)।

আশীর্বাদান্ সাদরং প্রতি জনান্ শ্রীজীবগোস্বামিনি
স্তুত্বা তং চটুভিস্ত্বরান্বিতমনাঃ প্রত্যাহ এতদ্বচঃ।
'গোস্বামিন্! কিল দশ্যতামিতিজবং শ্রীভট্টপাদস্তু যঃ'
সোঽয়ং মে করুণা-নিধির্বিজয়তে শ্রীশ্রীনিবাসঃ প্রভুঃ ॥ ৩৯

শ্রুত্বৈতৎ খলু জীব-ঠক্কুরবরো নীত্বা চ তং বৈ স্বয়ন্
যত্রাদর্শয়দাসনে বিজয়িনং গোপালভট্টং প্রভুম্।
গৌরাঙ্গং কমলাননং সুনয়নং বিস্তীর্ণবক্ষঃস্থলং
সোঽয়ং মে করুণানিধির্বিজয়তে শ্রীশ্রীনিবাসঃ প্রভুঃ ॥ ৪০

অন্যানপি ব্রজবাসি-বৈষ্ণবগণানধ্যাপয়ন্তং মুদা
নানাশাস্ত্র-পয়োধি-মন্থন-ভবং সদ্ভক্তিসারামৃতম্।
উন্মজ্জন্নহো নিপত্য চরণে প্রীত্যা ননামেতি যঃ
সোঽয়ং মে করুণানিধির্বিজয়তে শ্রীশ্রীনিবাসঃ প্রভুঃ ॥ ৪১

নাহং মঙ্ক্ষু মদুদ্ধরন্নুপদমুত্তিষ্ঠ বৎসেতি তং
'ত্বং মে বান্ধব জন্মজন্মনি মুদে ধাত্রাদ্য দত্তঃ পুনঃ।'
ইত্যুক্ত্বা নয়নাম্ভসা অতিমুদা যং সিঞ্চয়ন্ বিহ্বলঃ
সোঽয়ং মে করুণানিধির্বিজয়তে শ্রীশ্রীনিবাসঃ প্রভুঃ ॥ ৪২

আভূয়ৈকো যমুনাতটীং ব্রজগতৈঃ সদ্বৈষ্ণবৈর্যো গতো
রাধাকৃষ্ণ যতো গিরা মধুরয়া সঙ্গীয়মানে ক্ষণে।
প্রীত্যা যে সমাপয়ন্ মুদা পঠনয়া যস্মৈ কৃপাভাজনোঽহং
সোঽয়ং মে করুণা-নিধির্বিজয়তে শ্রীশ্রীনিবাসঃ প্রভুঃ ॥ ৪৩

তৎপশ্চাদ্ ব্রজবাসিভিঃ প্রতিগতো যো বৈষ্ণবেন্দ্রৈশ্চ
গোবিন্দস্য পুরং তদীয়ক-মুখং পশ্যন্ সুধাব্ধৌ বিশন্।
পশ্চাত্তৈঃ স্মর-মোহনালয়-বরং গত্বা মুখং দৃষ্টবান্
সোঽয়ং মে করুণানিধির্বিজয়তে শ্রীশ্রীনিবাসঃ প্রভুঃ ॥ ৪৪

ইত্যুক্ত্বা ২। সঙ্গীয়মানে ক্ষণে (ক), সঙ্গীয়মানেক্ষণৈঃ (খ)।

নাথাদের্মধুরাং ত্রিভঙ্গি-কলনাদপ্রাবিসিক্তাঙ্গক-১
স্তৎকৃত্বা ব্রজবাসিনাং প্রতিগৃহং গোস্বামিনাং দর্শনম্ ।
প্রেম্ণা তৈঃ পরিপূরিতঃ প্রতিগতঃ শ্রীলোকনাথালয়ং
সোঽয়ং মে করুণানিধির্জয়তে শ্রীশ্রীনিবাসঃ প্রভুঃ ॥ ৪৫

ভক্ত্যা তচ্চরণং ববন্দ (?) কৃপয়া চালিঙ্গিতস্তেন বৈ
তত্রস্থেন নরোত্তমেন প্রভুণা তৎপাদপদ্মং শ্রিতম্ ।
তস্যালিঙ্গ্য মুদা তদাত্মবন্মাধুর্যযুক্তং বচঃ
সোঽয়ং মে করুণানিধির্জয়তে শ্রীশ্রীনিবাসঃ প্রভুঃ ॥ ৪৬

ধাতা কিং নয়নং কিমু স্বচকরং২ সংপাক্ষ্য কিং মে মনঃ৩
কিং রত্নং বহুমূল্যকং কিমথবা প্রাণশ্চ মে দত্তবান্ ?
কিম্বাহো সদয়ো ভবান্দ্বিতীয়কং৪ দাতা মুদা যোঽবদৎ
সোঽয়ং মে করুণানিধির্জয়তে শ্রীশ্রীনিবাসঃ প্রভুঃ ॥ ৪৭

গোবিন্দস্য মুখেক্ষণং হ্যপি তথা শ্রীভট্টগোস্বামিনঃ
সেবাঞ্চ ব্রজবাসিনাং প্রতিদিনং গোস্বামিনামীক্ষণম্ ।
গ্রন্থস্যাস্বাদনং তথাপি কৃতবান্৫ শ্রীজীবগোস্বামিনাং
সোঽয়ং মে করুণানিধির্জয়তে শ্রীশ্রীনিবাসঃ প্রভুঃ ॥ ৪৮

এবং৬ যো বহুকালমাশ্রমনয়ং কুর্বন্ ব্রজে প্রত্যহং
শ্রীজীবোঽপি যমাবদৎ—'শৃণু দয়াধীনো৭ মদীয়ং বচঃ ।
ভো আচার্যমহাশয় প্রতিদিনং ত্বং মে সহায়ো মহান্'
সোঽয়ং মে করুণানিধির্জয়তে শ্রীশ্রীনিবাসঃ প্রভুঃ ॥ ৪৯

---

১ । এবং নাথাদিমূর্তের্মধুরিমকলাসারসিক্তাঙ্গহৃদ (ক, খ) ; ২ । কিমদ্ভুত-রং (খ) ; ৩ । কিং পদ্মমেকং মণিং (খ) ; ৪ । হৃদ্বিতীয়কমিতো (ক) ; ৫ । তথৈব হ্যকরোৎ (ক) ; ৬ । প্রীত্যা (খ) ; ৭ । দয়াং কৃত্বা (খ) ।

'আজ্ঞা যা চ কৃতা মদীয়-প্রভুনা সা হি ত্বয়া পাল্যতাং
সদ্ভক্ত্যাশ্চ তথা মুকুন্দ-বিষয়প্রেমগুণঃ প্রদানঃ কুরু।
তদ্ গ্রন্থস্য প্রচারণং কলি-নরে কুর্য্যা দয়াং' যং বদন্
সোঽয়ং মে করুণা-নিধির্বিজয়তে শ্রীশ্রীনিবাসঃ প্রভুঃ ॥ ২০

'নীত্বা তদ্গ্রন্থরাশিং প্রবিহিত-জবো গৌড়দেশং ব্রজ ত্বং
চৈতন্যস্য পদাঙ্কিতং ন চ যথা পাষণ্ডবর্গাকুলম্।
এতদ্গোস্বামি-বাক্যাদবিহিতমতিভক্তিপাদং গতো যঃ
সোঽয়ং মে করুণানিধির্বিজয়তে শ্রীশ্রীনিবাসঃ প্রভুঃ ॥ ২১

সর্বং তৎ কথিতং প্রভোঃ পদযুগে যজ্জীব-কুঞ্জে শ্রুতং
শ্রুত্বা সোঽপ্যবদৎ —'শৃণুষ্ব তনয় ! শ্রীরূপকাজ্ঞাং কুরু।
গৌড়ং গচ্ছ মমাজ্ঞয়াপ্যতিজবং তত্ত্বং কুরুষ্বেতি' যং
সোঽয়ং মে করুণানিধির্বিজয়তে শ্রীশ্রীনিবাসঃ প্রভুঃ ॥ ২২

নীত্বাজ্ঞাং সাগুরোরতঃ পরমিতো গোবিন্দবাটীং মুদা
দৃষ্ট্বা তস্য মুখং প্রদোষ-সময়ে সুপ্তা চ রাত্রৌ তথা।
গোবিন্দেন হি সুস্থিতঃ প্রিয়তয়া দত্তাঞ্চ আজ্ঞাং দধৎ
সোঽয়ং মে করুনা- নিধির্বিজয়তে শ্রীশ্রীনিবাসঃ প্রভুঃ ॥ ২৩

গত্বা সোঽপি পুনঃ প্রহৃষ্ট হৃদয়ঃ শ্রীজীবকুঞ্জে স্মরন্
[illegible] তৎ নিবেদ্য গৌড়নগরীং গন্তুং মনঃ সন্দধে।
গবেষ্যাং ব্রজবাসিনামপি পুনর্নীত্বা চ আজ্ঞাং তু যঃ
সোঽয়ং মে করুনানিধির্বিজয়তে শ্রীশ্রীনিবাসঃ প্রভুঃ ২৪

গ্রন্থং রূপকৃতং সনাতন-কৃতং শ্রীভক্তিনাম্না কৃতং
যং শ্রীজীবকৃতং[১] কৃতঞ্চ গুরুণা শ্রীদাসগোস্বামিনা।
যচ্চান্যং কবিরাজজং প্রতি মুদা গৌড়ং ব্রজন্ যোহনয়ৎ
সোঽয়ং মে করুণানিধির্বিজয়তে শ্রীশ্রীনিবাসঃ প্রভুঃ ॥ ২৫

১। যদ্যঞ্জীবকৃতং (খ)।

গোবিন্দস্য মুখং বিলোক্য স্বগুরোঃ শ্রীপাদপদ্মে নমন্
নত্বা তান্ ব্রজবাসি-বৈষ্ণবগণান্ বৃন্দাবনস্থানমৎ ।
প্রেম্ণা শ্রীযমুনাং বিলোক্য চ গিরিং গোবর্দ্ধনং যো রুদন্
সোঽয়ং মে করুণানিধির্জয়তে শ্রীশ্রীনিবাসঃ প্রভুঃ ॥ ৫৬

শ্রীকুণ্ডং বিলোক্য লোচনজলৈঃ কুর্ব্বংস্তু যঃ কর্দমং
তত্রস্থান্ খলু বৈষ্ণবান্ প্রতি নমন্ যো বা রুদন্মূর্চ্ছিতঃ ।
তত্রস্থং নিজ লোকনাথ-চরণং নত্বা তদাজ্ঞাং নয়ন্
সোঽয়ং মে করুণানিধির্জয়তে শ্রীশ্রীনিবাসঃ প্রভুঃ ॥ ৫৭

ধৃত্বা তস্য করং নরোত্তম-করস্থানীয় সংযোজ্য চ
কিঞ্চিদ্বাক্যমিদানিদং 'শৃণু বিভো আচার্য্য তুভ্যং হ্যসৌ ।
দত্তো মম নরোত্তমস্তব' ইতি শ্রীলোকনাথস্তু যং
সোঽয়ং মে করুণানিধির্জয়তে শ্রীশ্রীনিবাসঃ প্রভুঃ ॥ ৫৮

নীত্বা চৈব নরোত্তমং পুনরসৌ শ্রীজীবকুঞ্জং ব্রজন্
গ্রন্থং ভারচতুষ্টয়ং স্বয়মসৌ নীত্বা ব্রজন্ গৌড়কম্ ।
শ্রীজীবোঽপি শতেন বৈষ্ণবজনৈঃ ক্রোশন্তু চানুব্রজৎ
সোঽয়ং মে করুণানিধির্জয়তে শ্রীশ্রীনিবাসঃ প্রভুঃ ॥ ৫৯

বিচ্ছেদাগ্নি-নিদগ্ধ-মূর্চ্ছিত-তনুর্বেগোনামূর্চ্ছং পতন্
হা হা ধাতরহো নির্দয়তনুঃ সংযোজ্য নৈত্রাং ভবান্ ।
কৈত্যাক্তাপি বিযোজ্য তর্হি ভবতা কিং লপ্স্যতে যো বদন্
সোঽয়ং মে করুণানিধির্জয়তে শ্রীশ্রীনিবাসঃ প্রভুঃ ॥ ৬০

ইত্যুক্ত্বা নয়নাম্ভসা পথি ভুবং সিঞ্চংস্তু উত্থায় চ
প্রেম্ণা গাঢ়মসৌ পুনঃ পুনরমুং চালিঙ্গ্য গোস্বামিনম্ ।
নীত্বা তচ্চরণাব্জরেণু-নিচয়ং নত্বা চ যো বৈষ্ণবান্
সোঽয়ং মে করুণানিধির্জয়তে শ্রীশ্রীনিবাসঃ প্রভুঃ ॥ ৬১

সোৎকম্পং করুণং নরোত্তম প্রভুর্যং বৈ রুদিত্বা মুহুঃ-
র্বাহুভ্যাং চরণৌ বিধৃত্য পতিতো ভূমৌ তথা রোরুদন্ ।
তত্তোন্মৃত্য নিবর্ত্তিতঃ পুনরিমঞ্চালিঙ্গ্য গাঢ়ং তু যঃ
সোঽয়ং মে করুণানিধির্বিজয়তে শ্রীশ্রীনিবাসঃ প্রভুঃ ॥ ৬২
তান্ নীত্বা খলু বৈষ্ণবানতিশুচো-দৃষ্ট্যাঽ মহত্যা পুরো
দৃষ্টবা যং কিল জীবঠক্কুরবরো বৃন্দাবনেঽসৌ গতঃ ।
এবঞ্চৈব নরোত্তমো হরিরিতি স্মৃত্বা ব্রজং প্রাপ্তবান্
সোঽয়ং মে করুণানিধির্বিজয়তে শ্রীশ্রীনিবাসঃ প্রভুঃ ॥ ৬৩
আচার্য্যোঽপি প্রভুর্বিধৃত্য চরণং শ্রীজীবগোস্বামিনাং
ভূয়োভূয় ইতঃ সরন্নতিজবং পশ্চাত্তাদূরং গতঃ ।
তেষাং বাক্যচয়ং স্মরন্নপি গতো যো গৌড়দেশং স্বকন্
সোঽয়ং মে করুণানিধির্বিজয়তে শ্রীশ্রীনিবাসঃ প্রভুঃ । ৬৪
আনীয় গ্রন্থমেঘঃ ব্রজগিরি-কুহরাদ্ গৌড়কুঞ্জ্যাং মুদা যঃ
কৃষ্ণপ্রেমাম্বু-বৃষ্ট্যা কলিরবি-কিরণাদ্দগ্ধজীব-প্রশস্যাম্ ।
সিঞ্চন্ কুর্ব্বন্ সজীবং পুনরপি কৃতবান্ বার্দ্ধন্যং প্রেমভক্তেঃ
পশ্যাংশ্চৈতৎ প্রহৃষ্টঃ ননু সুবিজয়তে শ্রীনিবাসঃ প্রভুর্নঃ ॥ ৬৫
যাজিগ্রাম পুরং প্রবিশ্য বসতিং প্রীত্যা চকার স্বয়ং
তং দ্রষ্টুং শতশোঽথ বৈষ্ণবগণা গচ্ছন্তি হি প্রত্যহম্ ।
তান্ প্রেমণা প্রতিভাষ্য গ্রন্থনিচয়ং যঃ শ্রাবয়ন্ যত্নতঃ
সোঽয়ং মে করুণানিধির্বিজয়তে শ্রীশ্রীনিবাসঃ প্রভুঃ । ৬৬
সর্ব্বেষামপি চোপরোধ-নিচয়ৈঃ কুর্ব্বন্ বিবাহং তথা
সদ্গ্রন্থ-ব্যবসায়-নামগ্রহণৈশ্চৈতন্যচন্দ্রেক্ষয়া ।
রাধে কৃষ্ণ ইতি গণন্ হি প্রতিদিনং গোবিন্দ-নাম্নানয়ং
সোঽয়ং মে করুণানিধির্বিজয়তে শ্রীশ্রীনিবাসঃ প্রভুঃ ॥ ৬৭

একস্মিন্ দিবসে সরোবর-তটে বাট্যাঃ প্রতীচ্যাং বসন্
কালে চৈব অনুগ্র মন্মথ-সমমেকং পুমাংসং পথি ।
দোলায়াং স্বপুরং কৃতাশ্বহনকং গচ্ছন্তমীক্ষেত যঃ
সোঽয়ং মে করুণানিধির্বিজয়তে শ্রীশ্রীনিবাসঃ প্রভুঃ ॥ ৬৮

দৃষ্টা তং হি১ স্বর্ণকেতকরুচং বিস্তীর্ণবক্ষঃস্থলং
সিংহস্কন্ধ-মহাভুজং ত্রিবলিতং গম্ভীরনাভিস্তথা ।
লোমশ্রেণিযুতং প্রকীর্ণ-জঠরং পম্বাহুরক্তং তথা
চম্পানাং স্বদতং সুঘোণতিলসং বিম্বাধরাব্জেক্ষণম্ ॥ ৬৯

বন্ধান্বীতঃ ততঃ প্রসাদ-হরেয়ং রম্ভোরু-সঞ্জানুকং
সুশ্রোণ্যাপি সুদীর্ঘ কুঞ্চিত-কচং সৎপট্টবস্ত্রাবৃতম্ ২ ।
পাদানং চ তথা শৃণোতি ভো ইত্থং সদা যোঽপদং
সোঽয়ং মে করুণানিধির্বিজয়তে শ্রীশ্রীনিবাসঃ প্রভুঃ ॥ ৭০

কোঽয়ং কিং রতি-নায়কঃ কিমথবা চান্দ্রী-কুমারো যুবা
দেবো বা তরুণস্তথা ভবতি বা গন্ধর্ব-পুত্রো হ্যয়ম্ ।
ইত্যেতৎ কথয়ন্ পুনঃ পুনরসৌ রূপং দৃশা যো পিবন্
সোঽয়ং মে করুণানিধির্বিজয়তে শ্রীশ্রীনিবাসঃ প্রভুঃ ॥ ৭১

ইত্থং প্রাপ্য তনুং হরেঃ পদযুগং যো বা ভজেৎ সো (?) মহান্
ইত্যুক্ত্বা পুনরাহ তৎসহগতং কুত্রাস্য বাসস্তথা ।
কিংনামেতি মহুর্মুহুঃ প্রতিজনং সংপৃচ্ছতি বৈষ্ণবান্ ৪
সোঽয়ং মে করুণা-নিধির্বিজয়তে শ্রীশ্রীনিবাসঃ প্রভুঃ ॥ ৭২

শ্রীলশ্রীরামচন্দ্রঃ কবিনৃপতিরসৌ পণ্ডিতো নানাশাস্ত্রৈঃ
সর্বৈর্বাদো যশস্বী ভিষগক্রীতাবধৌ দিগ্বিজেতা সভায়াম্ ।
বাটী যস্য প্রসিদ্ধে সরজানি-নগরে বিশ্ব-বিখ্যাতকীর্তেঃ ৫
শাস্ত্রং চৈতৎ প্রহর্ষঃ পথি স্ববিজয়তে শ্রীনিবাসঃ প্রভুর্নঃ ॥ ৭৩

১। ...নি, ... (খ) ; ২। বস্ত্রান্বিতং (খ) ; ৩। যো হি নৃদা (খ) ;
... (খ) ; ৫। বাটী যস্য কুমারপুরনগরে বিখ্যাত-

তস্মৈ তচ্চ বচো নিশম্য সুপ্রিয়ো [illegible] গাঢ়েন কর্ণেন চ
কিঞ্চিন্নো বদতিস্ম ধীরমতিমান্ বাটীং গতো ভাবয়ন্ ।
কৃষ্ণেন [illegible] দিনং প্রণীয় তু রয়াদ্ [illegible] রাত্রৌ গতো যৎপদং
সোঽয়ং মে করুণা-নিধির্বিজয়তে শ্রীশ্রীনিবাসঃ প্রভুঃ ॥ ১৪

রাত্রৌ চাগতা বাটী-নিকটজন-গৃহে সংবিশন্নুষসীদং চ
চোরৈর্বা চোরিতা [illegible] যঃ প্রণ [illegible] ।
ভূয়ো ভূয়ো প্রদিশ্য কথয়তি সুকৃতী পাদপদ্মং নু দেহি
[illegible] চৈতং প্রহর্ষঃ খলু স বিজয়তে শ্রীনিবাসঃ প্রভুর্নঃ ॥ ১৫

শ্রুত্বা তস্য করং স্ববাহু-লতয়া চোত্থাপ্য গাঢ়ং মুদা
চালিঙ্গ্যংশ্চ তথা শিরস্যাথ করং দত্ত্বাবদচ্চাশিষম্ ।
'ত্বং মে বান্ধব জন্মজন্মনি মুদে ধাত্রাদ্য দত্তঃ পুনঃ'
সোঽয়ং মে করুণা-নিধির্বিজয়তে শ্রীশ্রীনিবাসঃ প্রভুঃ ॥ ১৬

দত্ত্বা শ্রীনৃসিংহানুজা-গিরিধর-শ্রীপাদপদ্মাশ্রয়ং
[illegible] তথা তয়োশ্চ বিবিধাং তং প্রাপয়িত্বা পুনঃ ।
[illegible] প্রণম্য আশিষম্বকৃৎ 'ত্বং মৎস্বরূপো ভবেঃ'
সোঽয়ং মে করুণানিধির্বিজয়তে শ্রীশ্রীনিবাসঃ প্রভুঃ ॥ ১৭

বৃন্দায়া বিপিনে [illegible] দৃশং চৈকং প্রদাতাং বিধু-
[illegible] চাক্ষি পুরা যতো বহুদিনং চৈকাক্ষিণানপাহয়ন্ ।
যাত্রা ত্বং পুনরদ্য চক্ষুরপরং দত্ত্বাক্ষিবদং যোঽবদৎ
সোঽয়ং মে করুণা-নিধির্বিজয়তে শ্রীশ্রীনিবাসঃ প্রভুঃ ॥ ১৮

এবং তং বহু শিক্ষয়ন্ বহুজনং শিষ্যঞ্চ কৃত্বা তথা
শ্রীগোবিন্দং কবীশ্বরং গুণ [illegible] ধিং দত্ত্বা স্বপাদাশ্রয়ম্ ।
রাধাকৃষ্ণ-বিহার-গীতকরণে আজ্ঞাঞ্চ তস্মৈ দদৌ
সোঽয়ং মে করুণা-নিধির্বিজয়তে [illegible]

শ্রীবৃন্দাব্জ ভাগ্যবতীং নিজপদং গৌরপ্রিয়াং প্রেয়সীং
শ্রীমদ্ধেমলতাং স্বকীয়তনয়াং কৃষ্ণপ্রিয়াখ্যাং তথা ।
শ্রীগোবিন্দগতিং স্বকীয়তনয়ং শ্রীরাজনাথাং তু যঃ
সোঽয়ং মে করুণানিধির্বিজয়তে শ্রীশ্রীনিবাসঃ প্রভুঃ ॥ ৮০

শ্রীদাসেভ মহাশয়ং করুণয়া শ্রীগোকুলাখ্যাং তথা
শ্রীনন্দং নরসিংহকং কবিনৃপং শ্রীমদ্রঘুং মালতীম্ ।
শ্রীগোপীজনবল্লভ-ঠক্কুরবরান্ নারায়ণং গোকুলং
সোঽয়ং মে করুণানিধির্বিজয়তে শ্রীশ্রীনিবাসঃ প্রভুঃ ॥ ৮১

ব্যাসাচার্য্যং পরমকৃপয়া প্রাপয়ৎ স্বং পদাব্জং
গোবিন্দস্য প্রিয়পরিজনং শ্রীলগোবিন্দদাসম্ ।
নিত্যং বাল্যাৎ প্রণয়-ভজন-ভাবকং প্রেমমূর্ত্তিং
দৃষ্ট্বা তং বৈ পরমরসিকা হ্যাত্মগণং কারয়ন্ যঃ ॥ ৮২

যোঽসৌ শ্রীবনমালিনাম-দ্বিজবরং শ্রীমোহনাখ্যং তথা
প্রেম্ণা যো ঘটকারবংশ-প্রিয়জনং শ্রীরূপদাসঞ্চ বৈ ।
সঙ্গীতাদ্ভুত-অধ্যাপকং বিপ্রবরান্ গোপালগর্ভেষু যঃ
সোঽয়ং মে করুণানিধির্বিজয়তে শ্রীশ্রীনিবাসঃ প্রভুঃ ॥ ৮৩

স্বপাদাব্জেষু চুঁচুড়াপতিং শ্রীরামকৃষ্ণাভিধং
চট্টশ্রীকুমুদং তদীয়কনক চৈতন্যদাসং তথা ।
ভাগবতং বল্লভাদিং প্রিয়জনং বৃন্দাবনাখ্যং তু যঃ
সোঽয়ং মে করুণানিধির্বিজয়তে শ্রীশ্রীনিবাসঃ প্রভুঃ ॥ ৮৪

দীনং যঃ কর্ণপূরং নিজপদকমলং শ্রীগোপাল-সংজ্ঞং
শ্রীরাধাবল্লভং বল্লভমপি চ মথুরাদাস-সংজ্ঞং স্বপাদম্ ।
শ্রীমদ্বল্লভদাসং জগন্নাথ কৃষ্ণকং ভাগবতদাসং নয়ন্ যঃ

পশ্চাদ্ যঃ কবিবল্লভং তদনুজং শ্রীশ্যামভট্টং তথা
ব্যাসাচারামমতো নয়ন্ নিজপদং শ্রীনাড়িকং যো মুদা ।
শ্রীগোপীরমণাহ্বয়ং তদনুজং দুর্গাখ্যদাসং প্রিয়ং
সোঽয়ং মে করুণা-নিধির্বিজয়তে শ্রীশ্রীনিবাসঃ প্রভুঃ ॥ ৮৬

গচ্ছন্ শ্রীপুরুষোত্তমং বনপথা চৌরৈর্হৃতং পুস্তকং
তস্মাদ্রাজসভাং গতঃ প্রপঠিতং নিত্যেণ শ্রুত্বা তু যঃ ।
শ্রীমদ্ভাগবতীয়-ষট্পদগণে সন্দীতং প্রহাসাং কৃতং
সোঽয়ং মে করুণানিধির্বিজয়তে শ্রীশ্রীনিবাসঃ প্রভুঃ ॥ ৮৭

আজ্ঞা চৈব নিবেদিতঃ স্বয়মসৌ ব্যাখ্যাতু কর্ত্তুং ততঃ ১
গীতা যঃ কিল তস্য চার্য্যস্বমতাং ব ব্যাখ্যাং ততান প্রিয়াম্ ।
শ্রুত্বা তং চনৃপঃ প্রণম্য শিরসা নাকাশতৎ যৎপদে
সোঽয়ং মে করুণানিধির্বিজয়তে শ্রীশ্রীনিবাসঃ প্রভুঃ ॥ ৮৮

দৃষ্ট্বা চাপি স মল্লভূপতিবরং শ্রীবীরহাম্বীরকং
দত্বা স্বং চরণাশ্রয়ং হরিপদে ভক্তিং তথা নৈষ্ঠিকীম্ ।
কিং বক্তুঞ্চাম্যসৌ পাদযুগলস্যাহো মহত্ত্বং নৃভিঃ
সোঽয়ং মে করুণানিধির্বিজয়তে শ্রীশ্রীনিবাসঃ প্রভুঃ ॥ ৮৯

ভক্তেষ্বেষু কৃপান্বিতো বহুজনান্ শিষ্যান্ মুদা কারয়ন্
দেশে দেশে স্বকীয়কে পুনরয়ং কৃত্বা বহূন্ শিষ্যকান্ ।
নানা দেশনিবেশনাগত-জনান্ কুর্বন্ স্বপাদাশ্রয়ং
সোঽয়ং মে করুণানিধির্বিজয়তে শ্রীশ্রীনিবাসঃ প্রভুঃ ॥ ৯০

রাঢ়ং বঙ্গং সুগৌড়ং ব্রজমথ মগধঞ্চোৎকলং রাজকঞ্চ
পারেগঙ্গং বরেন্দ্রং গিরিজমপি তথা বৃন্দকঙ্কালকঞ্চ ।
গাঙ্গেয়ং মধ্যদেশং ভুবনমিদমপি প্রাবৃতং যৎপ্রশিষ্যৈঃ
কঃ শক্নোত বক্তুং গুণগণমুদধেঃ শ্রীনিবাসপ্রভোস্তু ॥ ৯১

ইতি শ্রীগোপীজনবল্লভদাস কবিরাজ কৃতং শ্রীশ্রীনিবাসাচার্য্য গুণলেশ-সূচকং সমাপ্তম্

১। নাতিদীর্ঘ

৭। অনুবাদ

(১) যিনি রাঢ়ীয় ঘণ্টেশ্বরি-কুলে ব্রাহ্মণবর্য্য শ্রীচৈতন্যদাস মহাশয়ের গৃহে আবির্ভূত হইয়া বিবিধ শাস্ত্রে সুবিজ্ঞ নির্ম্মল বুদ্ধিবলে বাল্যেও দিগ্বিজয়ী হইয়াছিলেন—শ্রীশ্রীশচীনন্দন নীলাচলে প্রকট আছেন শুনিয়া সর্ব্ববিধ সুখে তিলাঞ্জলী দিয়াছেন—আমার সেই করুণানিধি ঠাকুর শ্রীনিবাস প্রভুর জয় হউক, জয় হউক। (২) শ্রীপুরুষোত্তম ক্ষেত্রে যাইতে পথে শ্রীচৈতন্যদেবের সঙ্গোপনের কথা শুনিয়া যিনি নিজ ভাগ্যকে শত শত ধিক্কার দিয়া স্বমস্তকের কেশ ছিঁড়িয়া করাঘাত করিতে করিতে মূর্চ্ছিত হইয়াছেন এবং পরে শ্রীচৈতন্যচরণ বুকে ধরিয়া নীলাচলে গিয়াছেন—(৩) তত্রত্য বৃদ্ধ শ্রীগদাধর পণ্ডিত গোস্বামিপাদের দর্শন করিয়াছেন—তখন শ্রীপণ্ডিত গোস্বামির চক্ষু দৃষ্টিহীন হইয়াছে এবং অবিরত নয়নধারা-প্রপাতে শ্রীমদ্ভাগবতের অক্ষরাবলিও আবৃত হইয়াছে। ব্যাপার দেখিয়া শ্রীগদাধরের নিকট শ্রীমদ্ভাগবত অধ্যয়ন করিবার যে ইচ্ছা করিয়াছিলেন, তাহাতেও তিনি স্বয়ং সন্দিগ্ধ হইলেন। (৪) তখন শ্রীপণ্ডিত গোস্বামির শ্রীচরণে নিজ অভিপ্রেত-বিষয়ে প্রার্থনা জানাইলে শ্রীপাদ বলিলেন 'আমার সব বিষয় তুমি ত স্ববুদ্ধিবলে দেখিতেছ এবং অন্যান্য বিষয়ও সব শুনিয়াছ। সুতরাং তুমি এক্ষণে শ্রীচৈতন্যদেবের প্রিয়তনু শ্রীগদাধরের (দাস গদাধরের) নিকটেই যাও।' (৫) তখন শ্রীনিবাস পণ্ডিত শ্রীগদাধরের পত্র লইয়া তাঁহার চরণ বন্দনা করত শীঘ্র শ্রীনীলাচলচন্দ্রের চরণে প্রণতি করিয়া প্রার্থনা জানাইলেন এবং শ্রীদাস গদাধরের শ্রীচরণে আসিয়া দণ্ডবৎ প্রণতি করিয়া পত্রিকা দেখাইলেন। (৬) প্রভু গদাধরের পাদপদ্মে নিজ মনোবাসনার কথা সব

সুতরাং তুমি এক্ষণে ব্রজে গিয়া শ্রীরূপসনাতনের প্রপন্ন হও।' তাঁহার আজ্ঞা শিরোধার্য করতঃ শ্রীচরণে প্রণত হইয়া তাঁহাকে প্রদক্ষিণ করিয়া আবার চরণ ধরিয়া পড়িলেন। প্রীতিমান প্রভু গদাধরও সন্তুষ্ট হইয়া শ্রীনিবাসের মস্তকে হস্ত রাখিয়া আশীর্বাদ করিতে করিতে বলিলেন—(৮) 'শ্রীরাধাতে স্বয়ং নিহিত (স্বভাবতঃ) প্রিয়া-তিশয্যে যে সর্বোর্দ্ধশায়ী মাদনাখ্য মহাভাবময় প্রেমাবির্ভাব সেই প্রেম, তদীয় স্বভাব ও সুখ আস্বাদন করার অভিলাষে শ্রীকৃষ্ণ নিত্যকাল বিবিধ আর্ত্তি-মহাসাগরের তরঙ্গ-মালায় ইতস্ততঃ ঘূর্ণায়মান হইতেছেন—সেই চৈতন্যচন্দ্র স্বয়ং তোমার হৃদয়ে সংস্থিত হইয়া স্ফুরিত হউন।' (৯) শ্রীনিবাস তখন ভূলুণ্ঠিত হইয়া কায়মনোবাক্যে তাঁহার চরণ বন্দনা করিলেন—নয়নধারায় তাঁহার চরণ প্রক্ষালন করিলেন এবং তৎপরে গোকুলে যাইবার অভিলাষে মন স্থির করিলেন। (১০) ব্রজগমনের পথে তিনি প্রথমতঃ শ্রীখণ্ডে গিয়া শ্রীচৈতন্যপ্রিয় শ্রীনরহরি সরকার ঠাকুরের চরণে প্রণত হইয়া তাঁহার আজ্ঞা লইলেন। পরে শ্রীরঘুনন্দনকেও দণ্ডবৎ প্রণাম করিয়া স্মরণ করিতে করিতে যাত্রা করিলেন। (১১) অগ্রসর হইতে হইতে আবার প্রীতিভরে খানাকুল কৃষ্ণনগরে গিয়া প্রেমে শ্রীঅভিরাম ঠাকুরের চরণ বন্দনা করত আদ্যোপান্ত নিবেদন করিয়া বহির্দ্বারে অপেক্ষা করিতে লাগিলেন। (১২) শ্রীঅভিরাম তাঁহার বৈরাগ্য-নির্ণয় করিবার উদ্দেশ্যে ইঁহাকে বসিবার জন্য তৃণ, ভোজনের জন্য পাঁচটি বটক (কড়ি) এবং রন্ধন-শত্রুচ্ছিন্ন একটি পত্র দিয়া পাঠাইলেন এবং মনে করিলেন যে ইহাতে শ্রীনিবাসের মনে চাঞ্চল্য ঘটাইয়া দিবে। (১৩) ইনি কিন্তু দ্রব্যগুলি পাইয়া আনন্দিত মনে সেই পত্রখানিকে জলে ধুইয়া রন্ধনের সজ্জা করিলেন এবং একটি কড়ির লবন ও তাহার এক চতুর্থাংশেই তণ্ডুলের যোগাড় করিলেন। ...

(১৪) শ্রীঅভিরাম লোকমুখে এই কথা শুনিয়া বলিলেন—শ্রীনিবাস প্রভুরই ভক্ত ও যোগ্যপাত্রই বটে, তবে তাঁহাকে একবার দেখিয়া তবে বর দান করিব।' তারপরে তাঁহাকে শ্রীঅভিরাম ডাকাইয়া নিকটে নিয়া আনন্দে বলিলেন—(১৫) 'আমার বোধ হয় তুমি কুবের-সম্পদ সমৃদ্ধি অথবা অন্য কিছু বর প্রার্থনা করিতেছ; জনমোহন গান অথবা জগন্মোহন রূপই কি তোমার বাঞ্ছিত? অপ্সরাতুল্য নৃত্যবিদ্যা অথবা পৃথিবীর রাজত্ব তুমি চাহিতেছ কি?' (১৬) শ্রীপাদের মুখে [illegible]ভরে এই কথা শুনিয়া শ্রীনিবাস তখন তাঁহার চরণে কাতরে অভিপ্রেত বর চাহিলেন—'হে ঠাকুর! নিজ কৃপায় আমাকে কৃষ্ণপ্রিয়া বিশুদ্ধা রাগানুগা ভক্তিই দান করুন।' (১৭) তখন শ্রীপাদ আনন্দে হাসিয়া বলিলেন—'তুমি ত সুখসমৃদ্ধির বরের প্রস্তাবে ভুলিলে না!' ঠাকুর করুণাভরে জয়মঙ্গল চাবুক আনিয়া শ্রীনিবাসের অঙ্গে স্পর্শ করাইয়া সুহাস্যবদনে বলিলেন—তুমিই জয় করিলে হে!' (১৮) এই সময়ে শ্রীনিবাস আনন্দভরে তাঁহাকে দণ্ডবৎ করিয়া বলিলেন—'প্রভো! হৃদয়ের বাঞ্ছা যাহা ছিল, তাহা এক্ষণে নিশ্চয়ই সিদ্ধ হইয়াছে। ব্রজগমনে আদেশ দিয়া আমাকে কৃতার্থ করুন।' এই বলিয়া তখন তাঁহার চরণে প্রণত হইয়া তিনি শ্রীবৃন্দাবনোদ্দেশে চলিলেন। (১৯) শ্রীরূপসনাতনের পাদপদ্মযুগল হৃদয়ে ধারণ করিয়া তিনি আনন্দে সত্বর ব্রজে প্রবেশ করিলেন, মথুরানগরে তিনি শ্রীরূপ-সনাতনের অপ্রকটবার্তা শুনিয়া মূর্চ্ছিত হইয়াছিলেন। (২০) পরে 'হা হা রূপ! কোথায় গেলে? হা সনাতন? কোথায় রহিলে? ইহাদিগের পাদপদ্ম দর্শন বিনাও যে এ জীবন রহিয়াছে, ইহাকে শত শত ধিক্কার!! হে বিধাতঃ! তুমি দুর্বল লোকদেরই হত্যা করিতে জান। তোমাকেও শত ধিক্!' এইরূপে রোদন করিতে করিতে [illegible] বিলাপ করিলেন! (২১) পুনঃ পুনঃ ধিক্কার,

বারংবার উত্থান ও পতন ইত্যাদি চলিতে থাকিল। নিষ্ফল দেহ
করিয়া এই দুঃখী জীবের আর বৃন্দাবন দর্শনের কি ফল?
আর বৃন্দাবনে গিয়া কাজ নাই—মনে মনে এইরূপ নিশ্চয় করিয়া
ব্রজ-গমনে পরাঙ্মুখ হইলেন। (২২) এদিকে শ্রীরূপ ও শ্রীস
সুবুদ্ধি শিশু শ্রীজীবগোস্বামীকে সত্বর শ্রীবৃন্দাবনে আকর্ষণ
আনাইয়া যমুনাজলে স্নান করাইলেন, কৃপাপরবশ হইয়া শ্রী
হৃদয়ে আনন্দভরে শক্তিসঞ্চারপূর্ব্বক বলিলেন—(২৩) 'বৎস!
কথা শুন। ব্রজে তোমাকে এই একমাত্র কারণেই প্রতিষ্ঠিত করা
যে তুমি (শ্রীমদ্ভাগবতাদির) ও মদীয় গ্রন্থাদির বালবোধিনী
টীকা করিয়া শ্রীহরিতে বিশুদ্ধা ভক্তির স্থাপন কর; গোবিন্দসেবা ও প
নিবারণ কর।' (২৪) এইকথা শুনিয়া সংভ্রান্ত চিত্তে শ্রীজীবও শ্রী
পাদযুগলে নিবেদন করিলেন—'হে নাথ! আমি যে শিশু, ক্ষুদ্রবয়া
জীব, এত বৃহৎ কার্য্যে আমার সেই শক্তিই বা কোথায়? সঙ্গীই
কোথায়? আজ্ঞা যদি পালনই করিতে হয়, তবে শুদ্ধমতি সঙ্গী আ
দিউন।' (২৫) শ্রীজীবের বাক্যে শ্রীরূপপ্রভু একটু চিন্তা করি
বলিলেন—'শুন! আমিই তোমার সঙ্গী দিতেছি। আগামী বৈ
মাসে কৃশতনু এক ব্রাহ্মকুমার ব্রজে আসিয়া তোমার সঙ্গী হইবে।
(২৬) পূর্ব্বে ব্রজে শ্রীরূপগোস্বামি-কর্ত্তৃক কথিত এই বাক্য মনে রা
শ্রীজীব প্রভু তাঁহার আগমন প্রতীক্ষা করত শ্রীবৃন্দাবনে কুঞ্জে
করিতে লাগিলেন। একদিন তৎপ্রেরিত দূতগণ ইঁহাকে ঐ মথু
(বিশ্রামঘাটে) দেখিতে পাইলেন। (২৭) শ্রীনিবাস পথের লোকমু
শ্রীগোস্বামিবাক্য শ্রবণ করিয়া আবার লুব্ধমতি হইয়া শীঘ্র ব্রজগ
মন করিলেন এবং তাঁহাদের মুখে আরো একটি কথা শুনিলেন—
ব্রজমণ্ডলে তখনও শ্রীগোপালভট্টগোস্বামিপাদ প্রকটই আছেন। (২
তাঁহাদের সহিত যমুনা-পুলিনে গিয়া স্নান করত ব্রজে ভূতগো

হৃষ্ট হইয়া ভক্তিভরে সাষ্টাঙ্গ প্রণাম করিলেন—চারিদিকে দৃষ্টি নিক্ষেপ করিতে লাগিলেন এবং কদম্বমূলে বসিয়া নেত্রজলে নিজ দেহকে স্নান করাইলেন। (২৯) তিনি আনন্দে দেখিতেছেন—কোনও বৃক্ষে ময়ূর, কোনও বৃক্ষে শুক, কোথাও বা শারিকা, কোনও বৃক্ষে কপোত, কোথাও ভ্রমর, আবার কোথাও বা সুন্দর কোকিল, কোনও বৃক্ষে দাত্যূহ, কোথাও টিট্টিভ, কোথাও বা চকোর রহিয়াছে—(৩০) কোনও স্থলে বিবিধ দ্বীপ, কোথাও কল্পতরু, কোথাও রত্নবান্ধা বেদিকা, কোথাও [illegible]নারের কুঞ্জ, আবার কোথাও দিব্য পুলিন ও দিব্য সরোবর রহিয়াছে! কোন স্থলে পদ্ম, উৎপল ও কহলার বিকসিত হইয়া আছে! (৩১) কোথাও আলোকনিবারক ছায়া, কোথাও শ্রীকৃষ্ণবিগ্রহযুক্ত মন্দির, কোথাও শ্রীবৈষ্ণবদিগের গৃহ, আবার কোথাও বা গোস্বামিগণের কুটীর, কোথাও দুরস্থ [illegible]— এই সব দর্শনে শ্রীনিবাস পরম তুষ্ট হইলেন। (৩২) ইনি তখন কৌপীন, বহির্বাস ও তুলসী মালা ধারণ করিতেন, ললাটে [illegible] তিলক এবং গাত্রে নামাক্ষর লিখিতেন, নেত্রদ্বয় নাসিকাগ্রে ন্যস্ত এবং হস্তদ্বয়ে লেখনী ও পত্র রাখিয়া ইনি আনন্দে বৈষ্ণবগণের সহিত জ্ঞানের আসনে বসিয়া কাল কাটাইতেন। (৩৩) শ্রীগোবিন্দের মথুরা গমনকালে গোকুলে লোকগণ যে যে ভাবে অবস্থিত ছিলেন, অদ্যাপিও তাঁহারা সেই সেই ভাবেই অবস্থান করিতেছেন। কিন্তু শ্রীকৃষ্ণরোপিত এই কদম্ববৃক্ষের চারাটি কেন সদাই প্রফুল্ল ও প্রবৃদ্ধ দেখা যাইতেছে, তাহা ত বুঝিতেছি না! হে বৈষ্ণবগণ! আপনারা ইহার কারণ নির্দেশ করুন ত।' (৩৪) অহো! শ্রীজীব এই কথা বলিলে তৎক্ষণাৎ শ্রীনিবাস আনন্দ ভরে বলিলেন 'হে গোস্বামিপাদ! আমার বাক্য শ্রবণ করুন, ইহাই আপনার প্রশ্নের সিদ্ধান্ত। (৩৫) শ্রীগোবিন্দের মনের ভাব এই—

পক্ষে শ্রীগোবিন্দের বাক্য (শপথ) ও মনোবৃত্তিই একমাত্র অবলম্ব, কিন্তু এই কদম্বতরুটি (স্বহস্তে রোপিত বলিয়া) তাঁহার প্রিয়, এইজন্য তিনি মথুরায় থাকিয়াও ইঁহার কথা স্মরণ করায় ইহার প্রফুল্লতা দেখা যায়' । * (৩৬) শ্রীনিবাসের মুখে শ্রীজীব তাঁহার হিতের জন্য সন্দেহ-নিরসনের এই উত্তম তথ্য জানিয়া সম্মুখেই অবস্থিত শ্রীনিবাসকে দেখিয়া পরম তৃপ্ত হইলেন । ভক্তগণ তখন বলিলেন, ইনিই সেই শ্রীনিবাস যাঁহাকে আনয়ন করিবার জন্য আমরা গিয়াছিলাম । (৩৭) সসম্ভ্রমে সত্বর উঠিয়া শ্রীজীব তখন ইঁহাকে গাঢ় আলিঙ্গন করত প্রেমভরে নিজের আসনে আনিলেন এবং শ্রীরূপপ্রভু কর্ত্তৃক পূর্ব্ব-কথিত আমূল সকল বৃত্তান্ত পুনঃ পুনঃ বলিতে লাগিলেন । (৩৮) আবার শ্রীজীব বলিলেন—'তুমি করুণায় আমার আচার্য্যকার্য্য (সন্দেহচ্ছেদন) করিয়াছ, অতএব আনন্দমনে আমার কথা শুনে—অদ্য হইতে তুমি 'আচার্য্য' নামেই অভিহিত হইবে' প্রত্যেক বৈষ্ণবকেও শ্রীজীব এই কথাই বারংবার বলিতে লাগিলেন । (৩৯) শ্রীজীব যখন সাদরে সকলকে এইরূপে বলিতেছিলেন, তখন শ্রীনিবাস সত্বর কাকুভরে নিবেদন করিলেন—'হে গোস্বামিপাদ ! শ্রীভট্টপাদকে ত একবার অতিসত্বর দেখাইয়া দিন' । (৪০) শ্রীজীব পাদও তখন সত্বর ইঁহাকে লইয়া স্বাসনে উপবিষ্ট শ্রীগোপালভট্টকে দেখাইলেন । শ্রীভট্ট গোস্বামী—গৌরবর্ণ, পদ্মবদন, সুনয়ন, বিশালবক্ষঃ । (৪১) তখন তিনি নিকটে সমাগত বৈষ্ণবগণকে আনন্দে নানাশাস্ত্র-সমুদ্রমন্থনে উদ্ভূত বিশুদ্ধ-ভক্তিশাস্ত্ররূপ অমৃত অধ্যাপনাব্যাজে বিতরণ করিতে ব্যাপৃত ছিলেন । শ্রীনিবাস শ্রীচরণে প্রণত হইলে তিনি প্রীতিভরে ইঁহাকে উঠাইলেন । (৪২) বাহুদ্বারা মস্তক উঠাইয়া ভট্টপাদ মৃদুকণ্ঠে 'উঠ হে বৎস' ইত্যাদি

ভট্ট বলিলেন—'হে বান্ধব! তুমি আমার জন্মজন্মেরই দাস, আমার আনন্দের জন্য অদ্য বিধাতা আবার তোমাকে মিলাইয়া দিলেন !!' এই বলিয়া আনন্দে নয়নজলধারায় শ্রীনিবাসকে স্নান করাইয়া ভট্টপাদ বিহ্বল হইলেন। (৪৩) তৎপরে ভট্টপাদ ব্রজবাসী বৈষ্ণবগণের সহিত অত্যুৎকণ্ঠায় যমুনাতটে গেলেন—শ্রীরাধাগোবিন্দের মধুর কথায় ও বিবিধ প্রসঙ্গে কিছুক্ষণ অতিবাহিত করিয়া শ্রীনিবাসকে প্রীতিভরে যমুনায় স্নান করাইয়া পরমানন্দে কৃপাও (দীক্ষা) করিলেন। (৪৪) তদনন্তরে শ্রীনিবাস ব্রজস্থ বৈষ্ণবগণ ও ভট্টপাদের আনুগত্যে শ্রীশ্রীগোবিন্দমন্দিরে গিয়া তাঁহার মুখচন্দ্র-দর্শনে প্রমানন্দে প্রীত হইলেন, আবার শ্রীশ্রীমদনমোহন মন্দিরে যাইয়া শ্রীমুখারবিন্দ দর্শন করিলেন। (৪৫) এইরূপে শ্রীশ্রীগোপীনাথ প্রভৃতি বিগ্রহের বিভঙ্গিদর্শনে ইনি অশ্রুস্নাত হইলেন। তৎপরে ব্রজবাসী ও গোস্বামীগণের প্রতিগৃহে প্রেমভরে দর্শন করত বৈষ্ণবগণ-কর্ত্তৃক শ্রীলোকনাথ গোস্বামিপাদের গৃহে নীত হইলেন। (৪৬) ভক্তিভরে তাঁহার চরণে প্রণত হইলে শ্রীপাদ তাঁহাকে কৃপা করিয়া আলিঙ্গন করিলেন। তত্রত্য শ্রীনরোত্তম প্রভু শ্রীনিবাসের চরণে প্রণাম করিলে তিনি তাঁহাকে আনন্দে গাঢ় আলিঙ্গন করত মধুর বাক্যে বলিলেন—(৪৭) বিধাতা অদ্য আমাকে কি নয়নই দিলেন, না নেত্রাহ্লাদক পক্ষ্মই দিলেন? অথবা মনই দিলেন না বহুমূল্য রত্নই দিলেন? অথবা আমাকে প্রাণই দিয়াছেন কি? অহো! তিনি সদয় হইয়া বুঝি আমাকে অদ্বিতীয় স্বত্বই (তোমায় সঙ্গী) দিলেন॥' (৪৮) এক্ষণে তিনি প্রত্যহ শ্রীগোবিন্দ ও শ্রীভট্টগোস্বামির মুখারবিন্দদর্শন, ব্রজবাসীগণের সেবা ও গোস্বামিদের দর্শন করিতেন। আবার শ্রীজীব-

করিলে একদিন শ্রীজীব তাঁহাকে বলিলেন—'দয়াবান্ হইয়া আমার একটি বাক্য শুন, যেহেতু হে আচার্য্য মহাশয় ! তুমিই প্রতিদিনে আমার একমাত্র মহাসহায় — (৫০) মদীয় শ্রীগুরুপাদ আমাকে যে আজ্ঞা করিয়াছেন, তাহা তুমিই পালন কর। তুমি বিশুদ্ধা ভক্তি ও মুকুন্দ-বিষয়ক প্রেমের প্রদান করিতে থাক। শ্রীগোস্বামি-গ্রন্থের প্রচার প্রসার পূর্ব্বক কলিহত মানবে দয়া কর। (৫১) সেই গ্রন্থ সমূহ লইয়া তুমি অতি সত্বর গৌড়দেশে যাও, শ্রীচৈতন্য-পরাঙ্কিত স্থানে যাহাতে পাষণ্ডমতের প্রসার না হয়, তদ্বিষয়ে সচেষ্ট হও।" শ্রীজীবের এই বাক্যে বুদ্ধি স্থির করিতে না পারিয়া তিনি ভট্টপাদের নিকটে গেলেন। (৫২) শ্রীজীব-কুঞ্জে শ্রুত সব বৃত্তান্ত শ্রীপ্রভুর চরণ-প্রান্তে নিবেদন করিলেন। শ্রীভট্টপাদও সব কথা শুনিয়া বলিলেন— 'বৎস ! শুন। শ্রীরূপের আজ্ঞাই পালন কর, আমারও আজ্ঞায় অতি-শীঘ্র গৌড় যাও এবং তাঁহাদের নির্দ্দেশানুযায়ী সকল কার্য্য করিতে থাক।' (৫৩) শ্রীগুরুর আদেশ পাইয়া তিনি তৎপরে আনন্দে শ্রীগোবিন্দ-মন্দিরে প্রদোষকালে গিয়া শ্রীমুখচন্দ্র দর্শন করিলেন, রাত্রিতে স্বপ্নচ্ছলে শ্রীকৃষ্ণ তাঁহাকে প্রীতিভরে বলিলেন—'ঐ আজ্ঞাই প্রতিপালন কর।' তিনি তাহা শিরোধার্য্য করিয়া (৫৪) আবার আনন্দচিত্তে শীঘ্র শ্রীজীবকুঞ্জে গিয়া স্বপ্নাদেশের কথা বলিয়া গৌড়গমনের জন্য মনঃস্থির করিলেন। ব্রজবাসী সকল বৈষ্ণবের আদেশ লইয়া তিনি (৫৫) গৌড়গমনে উন্মুক্ত হইয়া শ্রীরূপ, শ্রীসনাতন, শ্রীগোপালভট্ট, শ্রীজীব, শ্রীরঘুনাথ, শ্রীদাস গোস্বামী এবং শ্রীকবিরাজ-প্রভৃতি গোস্বামিপাদগণের আশীর্ব্বাদ লইলেন। (৫৬) শ্রীগোবিন্দের মুখারবিন্দ দর্শন করত শ্রীগুরুদেবের পাদপদ্মে প্রণাম করিলেন, ব্রজবাসী বৈষ্ণবগণকে ও শ্রীবৃন্দাবনকে দণ্ডবৎ প্রণত হইলেন। তৎপরে প্রেমে শ্রীযমুনার দিকে

লাগিলেন। (৫৭) শ্রীরাধাকুণ্ডের দর্শন করত নয়নজলে স্থানটিকে পঙ্কিল করিয়া তত্রত্য বৈষ্ণবগণকে প্রণিপাত পূর্ব্বক ক্রন্দন করিতে করিতে মূর্চ্ছিত হইয়াছিলেন। তত্রস্থ শ্রীলোকনাথ প্রভুর চরণেও দণ্ডবৎ প্রণত হইয়া তাঁহার আদেশ লইলেন। (৫৮) শ্রীলোকনাথ তাঁহার হস্ত ও শ্রীনরোত্তমের হস্ত ধরিয়া সংযোজন করত এই কথা বলিলেন—'হে আচার্য্য প্রভো! শুন — তোমার করে অদ্য এই নরোত্তমকে সমর্পণ করিলাম—নরোত্তম তোমারই।' (৫৯) পুনরায় শ্রীনরোত্তমকে লইয়া তিনি শ্রীজীবকুঞ্জে গেলেন। স্বয়ং চারি ভার গ্রন্থ লইয়া তিনি গৌড়ে যাত্রা করিলে শ্রীজীবও বহু বহু বৈষ্ণবের সহিত এক ক্রোশ পর্য্যন্ত অনুগমন করিলেন। (৬০) পরস্পরের বিরহানল প্রজ্বলিত হইয়া তখন পরস্পরের তনু দগ্ধ করিতে লাগিলে তাঁহারা মূর্চ্ছিত হইলেন। পরে তিনি বলিলেন—'হা বিধাতঃ! তুমি অতি নিষ্ঠুর, কেননা প্রথমতঃ জীবগণকে প্রণয়াবদ্ধ করিয়া পরে আবার তাহাদিগকে বিযুক্ত করিয়া থাক, ইহাতে তোমার কি লাভ হয় হে!!' (৬১) এই বলিয়া নয়নজলে পথের মৃত্তিকা সিঞ্চন করিতে করিতে তিনি পুনঃ পুনঃ শ্রীগোস্বামীকে প্রেমে গাঢ় আলিঙ্গন করত তাঁহার চরণকমল-রেণু লইলেন এবং আবার বৈষ্ণবগণকে প্রণাম করিলেন। (৬২) শ্রীনরোত্তম প্রভু কম্পিত দেহ ও করুণ শ্রীনিবাসের চরণদ্বয় বাহু দ্বারা জড়াইয়া ভূমিতে পড়িয়া দারুণ রোদন করিতে থাকিলে শ্রীনিবাস কাঁদিতে কাঁদিতে তাহাকে উঠাইয়া গাঢ় আলিঙ্গন করত নিবেদন করিলেন। (৬৩) তখন শ্রীজীব প্রভু মথুরা নগর হইতে বৈষ্ণবগণের সহিত শ্রীনিবাসের প্রতি মহাশোক সহকৃত দৃষ্টি নিক্ষেপ করত শ্রীবৃন্দাবনের দিকে অগ্রসর হইলেন এবং নরোত্তমও হরি স্মরণ করত ব্রজে চলিলেন *। (৬৪) শ্রীআচার্য্য প্রভুও পুনঃ পুনঃ শ্রীজীব-গোস্বামিপাদের চরণে পড়িয়া তথা হইতে অতিদ্রুত যাইতে চলিলেন এবং অদূরে যাইতে না যাইতেই আবার ফিরিয়া ফিরিয়া দেখিতে লাগিলেন। তৎপরে তাঁহাদের বাক্য স্মরণ করিতে করিতে গৌড়দেশের দিকে সত্বর গমন করিলেন। (৬৫) ব্রজগিরির গহ্বর (সমীপদেশ) হইতে গ্রন্থরত্ন আনয়ন করত গৌড়ভূমিতে যিনি আনন্দসহকারে কৃষ্ণপ্রেমরূপ

---

* ভক্তিরত্নাকর, প্রেমবিলাসাদির সহিত এখানকার ঘটনার সামঞ্জস্য নাই।

বর্ষায় কান্তিরূপে সূর্য্যতাপে দগ্ধ জীবরূপে শস্যসমূহকে সিঞ্চন করিয়া পুনরায় সজীব এবং প্রেমভক্তির বাদল করিয়াছেন এবং এই ব্যাপারে মহানন্দিত হইয়াছেন, সেই শ্রীনিবাসপ্রভুর জয় হৌক, জয় হৌক। (৬৬) যাজিগ্রামে প্রবেশ করিয়া ইনি প্রীতিভরে বাস করিতে লাগিলেন; তাঁহার দর্শনাশে প্রত্যহ শত শত বৈষ্ণব আসিতে লাগিলেন, তাঁহাদের সহিত প্রেম-সম্ভাষণপূর্ব্বক ইনি যত্নসহকারে গোস্বামি-গ্রন্থসমূহ শ্রবণ করাইতেন। (৬৭) সকলের অনুরোধে ইনি দার-পরিগ্রহ করিলেন, ভক্তিগ্রন্থের ব্যবসায় (পঠন পাঠনাদির অনুষ্ঠান) হরিনাম-গ্রহণ, শ্রীচৈতন্যচন্দ্রের দর্শনাশা, 'রাধে কৃষ্ণ' এই নাম গ্রহণ ইত্যাদিতে তিনি রাত্রিদিনই কাটাইতেন। (৬৮) একদিন বাটীর পশ্চিম দিকে সরোবরতটে তিনি বসিয়াছিলেন—তিনি দেখিলেন যে ঠিক সেইকালে ঐ পথ দিয়া মন্মথতুল্য দিব্যকান্তি একজন বিবাহ করিয়া দোলায় চাপিয়া নিজগৃহে যাইতেছেন। (৬৯) ঐ লোকটির কান্তি স্বর্ণকেতকীর তুল্য, সিংহের ন্যায় উন্নত স্কন্ধ, প্রকাণ্ড বাহু, ত্রিবলী ও গম্ভীর নাভি, লোমরাজিযুক্ত বিশাল উদর; চরণ ও বাহু আরক্ত; মুখমণ্ডল চন্দ্রসম, দন্তপংক্তি সুন্দর, নাসাটি উন্নত, অধরটি বিম্বফলবৎ রক্তবর্ণ এবং লোচনদ্বয়ও আকর্ণবিশ্রান্ত। (৭০) গ্রীবাতে শঙ্খবৎ তিনটি রেখা, হৃদয় প্রশস্ত, উরুটি কদলীর তুল্য উরুদ্বয়, জানুদ্বয়ও সুন্দর, কেশদাম সুদীর্ঘ ও কুঞ্চিত, সুন্দর পট্টবসনে দেহটি আচ্ছাদিত—পরম মনোজ্ঞ সেই ব্যক্তিকে আনন্দে দর্শন করত তিনি বারংবার সকলকে বলিলেন—"শুন হে! (৭১) এই যুবা কে? কামদেব কি? না অশ্বিনীকুমার? কোনও তরুণ দেবতা কি? অথবা ইনি গন্ধর্ব্ব পুত্রই কি হইবেন?" এই কথা বারংবার বলিয়া তাঁহার রূপামৃত তিনি নয়নচষকে পান করিতে লাগিলেন। (৭২) এবম্বিধ সুন্দর দেহ লাভ করিয়া শ্রীহরির পদযুগল যে ভজন করিতে পারে, সেই মহাভাগ্যবান্—এই কথা বলিয়া তিনি সহচরগণকে পুনঃ পুনঃ জিজ্ঞাসা করিলেন—"ইহার নাম কি? বাসস্থান কোথায় হে?" (৭৩) তখন তাঁহাদের মুখে ইনি শুনিলেন যে তাঁহার নাম শ্রীরামচন্দ্র কবিরাজ, তিনি পণ্ডিত—বৃহস্পতি বলিলেই হয়। বেদাচূড়ামণি, ভেষজ বিদ্যায় ইনি যশস্বী, সভাতেও ইনি দিগ্বিজয়ী। দিগ্বিখ্যাত কীর্ত্তি ইঁহার বাড়ী সরজান নগরে (কুমার

পূরে)—এই কথা শুনিয়া শ্রীনিবাস প্রভু অতি আনন্দিত হইলেন। (৭৪) আচার্য প্রভুর মুখে সেই সুদৃঢ় নিষ্ঠাযুক্ত মতিমান্ রামচন্দ্র নিবিষ্ট কর্ণে এই কথা শুনিয়া কিছুই না বলিয়া চিন্তা করিতে করিতে নিজ গৃহে গেলেন বটে, কিন্তু অতি কষ্টে দিনটি অতিবাহিত করত রাত্রিযোগে দ্রুতগতিতে আসিয়া তাঁহারই চরণাশ্রয় করিলেন। (৭৫) রাত্রিতে প্রভুর বাটীর সমীপবর্তী একজনের গৃহে থাকিয়া পরদিন প্রত্যুষে তাঁহার চরণে ছিন্নমূল বৃক্ষের ন্যায় নিপতিত হইয়া ক্রন্দন করিতে করিতে সেই সুকৃতী রামচন্দ্র পুনঃ পুনঃ বলিতে লাগিলেন—'হে প্রভো! আমাকে পাদপদ্ম দান করুন।' রামচন্দ্রের মুখে এই বাক্য শুনিয়া আচার্য পরমানন্দিত হইলেন। (৭৬) স্ববাহুলতায় রামচন্দ্রের করে ধরিয়া তাঁহাকে উঠাইয়া আনন্দে আলিঙ্গন করিলেন এবং মস্তকে হস্তার্পণ করত আশীর্বাদপূর্বক বলিলেন—'হে বান্ধব! তুমি জন্মে জন্মে আমারই (দাস), বিধাতা অদ্য আমার আনন্দের জন্য মিলাইয়া দিলেন।' (৭৭) শ্রীরাধা-গিরিধারীর শ্রীপাদপদ্মাশ্রয় দান করিয়া, যুগলকিশোরের বিবিধ লীলাও তাঁহাকে পুনঃ পুনঃ শ্রবণ করাইলেন, গোস্বামি-গ্রন্থ পড়াইয়া আবার আশীর্বাদ করিতে করিতে বলিলেন—'তুমি আমার সর্বস্বই হও।' (৭৮) বৃন্দাবনে তোমার তুল্য আর এক চক্ষু বিধাতা আমাকে পূর্বে দিয়াছিলেন, বহুদিন আমি একচক্ষুই (কাণা) ছিলাম, কিন্তু সেই বিধাতা আবার অদ্য তোমাকে দিয়া আর এক চক্ষুও সমর্পণ করিলেন!!' (৭৯) এইভাবে তাঁহাকে বহু শিক্ষা দিয়া বহুজনকে শিষ্য করিলেন। গুণনিধি গোবিন্দ কবিরাজকে স্বচরণাশ্রয় দিয়া শ্রীরাধাকৃষ্ণ বিলাস-গীত-প্রণয়নে আজ্ঞা দিয়াছিলেন।

(৮০) নিজকান্তা শ্রীমদ্ ঈশ্বরী দেবীকে ও শ্রীগৌরাঙ্গপ্রিয়াকে স্বচরণাশ্রয় (দীক্ষা) দিয়া নিজ কন্যা শ্রীমতী হেমলতা, কৃষ্ণপ্রিয়া ও কাঞ্চনলতিকা এবং পুত্র গোবিন্দগতিকেও দীক্ষা দিলেন। (৮১) করুণা করিয়া শ্রীদাস ও শ্রীগোকুল মহাশয়কে, শ্রীমন্ত (চক্রবর্তী ও ঠাকুর), নৃসিংহ কবিরাজ, শ্রীমদ্রঘুনাথ চক্রবর্তী (শ্বশুর অথবা রঘুনাথ কর), মালতী দেবী এবং গোপীরমণ, জয়রাম, ঠাকুরদাস, নারায়ণ ও গোকুলকে এবং (৮২) আচার্য ব্যাসকেও পরম দয়ার শ্রীচরণ প্রাপ্তি করাইলেন। শ্রীগোবিন্দের প্রিয় পরিজন শ্রীজ

গোবিন্দ দাস নামক ব্রাহ্মণকে দেখিয়াই তিনি পরম দয়া করিয়া আত্মস করিয়াছেন—এই গোবিন্দদাস আবাল্য প্রবল ভজন করিয়া প্রেমমূর্তি হই ভাবক-আখ্যা লাভ করিয়াছেন। (৮৩) বৈদ্য বনমালী ও মোহন এবং শ্রীরূপ দাস ঘটককে প্রেমে স্বপাদপদ্ম দান করিয়াছেন। শ্রী পু সহিত সুধাকর মণ্ডলকে ও আট নয় জন গোপালকে তিনি বিধিবো মতে দীক্ষা দিয়াছেন। (৮৪) তিনি রামকৃষ্ণ চট্টরাজ ও তদীয় ক কুমুদচট্টকে এবং তদীয় পুত্র চৈতনচট্টকে কৃপা করেন। ঐ বংশের প্রিয় কলানিধি ও বৃন্দাবনকেও শ্রীপাদপদ্ম দান করিয়াছেন। (৮৫) কর্ণপুরকে, বংশী ও গোপালকে, রাধাবল্লভ, মথুরাদাস, রাধাকৃষ্ণ রামদাস (বনবিষ্ণুপুরবাসী, কবিবল্লভ ও ঠাকুর—তিনজন) ও দাসকে স্বচরণ দান করিয়াছেন। (৮৬) কবিবল্লভ ও তাঁহার অ শ্যামভট্টকে, আত্মারাম দাসকে ও শ্রীনাড়ুককে, বৈদ্য শ্রীগোপীরমণ দা তদনুজ প্রিয় দুর্গাদাসকে কৃপা করিলেন। (৮৭) বনপথে পুরে (বনবিষ্ণুপুরে ?) যাওয়ার কালে গ্রন্থগুলি চুরি হইলে তিনি রাজসভায় গিয়া ব্রাহ্মণের মুখে শ্রীমদ্ভাগবতীয় ভ্রমর গীতের পাঠে অতিশয় হাস্য করিলেন, (৮৮) পরে রাজা নিবেদন করিলে ইনি ঋষি-সম্মত প্রিয়া ব্যাখ্যাই আনন্দভরে করিলেন, তাহাতে রাজা বীরহ কাকু করিয়া তাঁহার চরণে পড়িলেন। (৮৯) মল্লরাজকে ঐ ভ দেখিয়া স্বচরণাশ্রয় এবং শ্রীহরির পদে নৈষ্ঠিকী ভক্তি করিলেন। অহো! তাঁহার পাদপদ্মযুগলের মহিমা কি মানুষ বর্ণিতে পারে? (৯০) সেই দেশে বহুলোককে আনন্দে শিষ্য আবার নানা দেশবিদেশ হইতে সমাগত বহু ব্যক্তিকেও শিষ্যত্বে অঙ্গীকা স্বচরণাশ্রয় দিয়াছেন। (৯১) রাঢ়, বঙ্গ, ব্রজ, মগধ, [illegible] গঙ্গাপারের বরেন্দ্রভূমি, পাশ্চাত্য বুন্দেলখণ্ড এবং গঙ্গাতটবর্তী মহ যাঁহার প্রশিষ্যে ব্যাপ্ত হইয়াছে, অনন্ত-দেশদেশ হইতেও, কেহ আচার্যপ্রভু শ্রীনিবাসের শাখা বর্ণনা করিতে পারেন ?

ইতি শ্রীকর্ণপুর-কবিরাজ-কৃত গুণলেশ-সূচকের অনুবাদ

প্রাপ্তিস্থান —

১। শ্রীহরিবোল কুটীর
শ্রীধাম নবদ্বীপ, (নদীয়া)

২। ডাঃ ইন্দুভূষণ সাহা
বড়াল ঘাট্, নবদ্বীপ।

৩। সংস্কৃত পুস্তক ভাণ্ডার
৩৮, বিধান সরণী, কলিঃ—৬

[ভিক্ষা—তিন টাকা]

প্রিণ্টার—
শ্রীবিমল কুমার মিশ্র
শঙ্কর প্রিন্টিং ওয়ার্কস্
নবদ্বীপ, নদীয়া